# इकाई 1 जल तत्व परिचय, जल चिकित्सा की अवधारणा, महत्व एवं सावधानियॉ

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 जल तत्व परिचय
1.4 जल चिकित्सा की अवधारणा
1.5 जल चिकित्सा का महत्व
1.6 जल चिकित्सा की सावधानियॉ
1.7 सारांश
1.8 पारिभाषिक शब्दावली
1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

## 1.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठकों, इस प्रकृति का निर्माण पँच तत्वों से होता है। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी नामक पँच तत्व मिलकर प्रकृति की रचना करते हैं। इन पँचतत्वों में आकाश तत्व सबसे सॅूक्ष्म तत्व है। आकाश तत्व से स्थूलता के क्रम में बढते हुए क्रमश वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी तत्व का वर्णन आता है। यह पँचतत्व समयोग में संयुक्त होकर संसार की रचना करते हैं। संसार की रचना के साथ साथ मानव शरीर की रचना भी उपरोक्त पँच तत्व ही करते हैं। मानव शरीर की उत्पत्ति में पँचतत्वों के योग का वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं –

क्षितिज पावक जल गगन समीरा
पँचतत्व रचित अधम शरीरा।

इस प्रकार मानव शरीर उपरोक्त पँच तत्वों के समयोग का परिणाम है। ईश्वर के वाचक शब्द भगवान के अक्षरों का विश्लेषण करें तो भ अर्थात भूमि (पृथ्वी), ग अर्थात गगन (आकाश), व अर्थात वायु, अ अर्थात अग्नि तथा न अर्थात नीर (जल) भी पँच तत्वों की ओर संकेत करता है। इन पाँच तत्वों में एक प्रधान तत्व जल है जो प्रकृति के साथ साथ मानव शरीर में प्रमुखता से विद्यमान रहता है। शरीर चिकित्सकों के अनुसार मानव शरीर का 70 प्रतिशत भाग जल तत्व ही है। शरीर में इस जल तत्व का समयोग स्वास्थ्य एवं इस तत्व की विषम अवस्था रोगों को उत्पन्न करती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि जल तत्व हमारे शरीर का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व है लेकिन यह जल तत्व क्या होता है ? इस तत्व का शरीर में क्या महत्व है ? इस तत्व के प्रयोग में क्या क्या सावधानियों का पालन करना चाहिए ? ऐसे प्रश्न है जो इस विषय को सुनते ही आपके मन में उपस्थित हुए होगें। प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई में

आप इस विषय को अच्छी प्रकार एवं सुव्यवस्थित रुप में समझकर उपरोक्त प्रश्नों के उत्तरों को जान पाएगें।

## 1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- जल तत्व का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- जल तत्व की अवधारणा का ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।
- जल तत्व का सामान्य परिचय प्राप्त करोगें।
- जल तत्व को समझाने में सक्ष्म हो सकेगें।
- जल तत्व के महत्व को जान पाओगें।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में दिए गये प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे।

## 1.3 जल तत्व का परिचय

प्रिय पाठकों, पँच तत्व और पँच महाभूत एकार्थी शब्द है अर्थात पँचतत्वों को पँच महाभूतों के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। भूत शब्द संस्कृत की भू धातु से उत्पन्न होता है। संस्कृत भाषा में भू धातु विद्यमान होने अथवा सत्तावान होने के अर्थ में प्रयुक्त होती है। इस प्रकार जो विद्यमान होता है अथवा उपस्थित रहता है, भूत कहलाता है और जो प्रबलता के साथ अथवा प्रमूखता से उपस्थित रहता है उसे महाभूत कहा जाता है। वह पाँच तत्व जो प्रकृति में प्रमुखता से विद्यामान रहते हैं पँच तत्व कहलाते हैं। सृष्टि की रचना करने वाले आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी नामक पाँच तत्वों को सम्मिलित रुप से पँचतत्वों की संज्ञा दी जाती है। इन पाँच तत्वों का परिचय प्राप्त करने के पश्चात आपके मन में इन तत्वों की उत्पत्ति के विषय के जानने की इच्छा भी अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी। इसके साथ साथ किस तत्व से किस तत्व का निर्माण होता है, यह प्रश्न भी आपके मन में अवश्य ही उत्पन्न हुआ होगा।

जिज्ञासु पाठकों, इस सृष्टि में सर्वप्रथम ईश्वरीय शक्ति से शब्द तन्मात्रा उत्पन्न हुई। इस शब्द तन्मात्रा से सर्वप्रथम आकाश तत्व की उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात शान्त आकाश में कालगति से विकार उत्पन्न होने पर वायु तत्व उत्पन्न हुआ। वायु शब्द एवं र्स्पश तन्मात्रा से युक्त तत्व था जिसमें विकार उत्पन्न होने से अग्नि तत्व की उत्पत्ति हुई। अग्नि तत्व शब्द, र्स्पश एवं रुप गुण से युक्त था। इस अग्नि तत्व में विकार उत्पन्न होने पर जल तत्व की उत्पत्ति हुई। जल तत्व शब्द, र्स्पश, रुप एवं रस गुण युक्त था। जल तत्व में विकार उत्पन्न होने से गन्ध तन्मात्रा युक्त पृथ्वी तत्व की उत्पत्ति हुई। पृथ्वी तत्व पँचतत्वों में अन्त में उत्पन्न होने वाला सबसे स्थूल तत्व था जो शब्द, र्स्पश, रुप, रस एवं गन्ध गुण से युक्त था। जल तत्व अग्नि के विकार से उत्पन्न होता है एवं जल तत्व के विकार से पृथ्वी तत्व की उत्पत्ति होती है। इस तथ्य को यदि हम प्रयोग के रुप में समझे तो सागर का जल अग्नि के सर्म्पक में आकर वाष्प रुपी बादल के रुप में उड जाता है एवं शेष रुप में नमक (पृथ्वी तत्व) रह जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि जल तत्व के विकार से पृथ्वी तत्व की उत्पत्ति होती है।

प्रिय विधार्थियों, इस इकाई में अध्ययन का प्रमुख विषय जल तत्व है जिसकी उत्पत्ति वायु एवं अग्नि तत्वों से होती है। आधुनिक वैज्ञानिक एक वैज्ञानिक प्रयोग के आधार पर इस तथ्य को सिद्व भी करते हैं। इसके लिए एक बीकर में निश्चित अनुपात में

हाइड्रोजन एवं आक्सीजन गैस मिलाकर बैटरी से र्स्पाक करने पर जल उत्पन्न होता है। वैज्ञानिकों का यह प्रयोग इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि जल तत्व वायु एवं अग्नि तत्व के संयोग से उत्पन्न होता है।

आधुनिक वैज्ञानिक पृथ्वी पर जीवन का प्रारम्भ जल तत्व में ही स्वीकार करते हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार पृथ्वी पर जीवन का प्रारम्भ जल में ही हुआ। सर्वप्रथम जलीय जीवों की उत्पत्ति के बाद थलीय जीवों की उत्पत्ति हुई। यह जल तत्व जलीय एवं स्थलीय दोनों ही प्रकार के जीवों के लिए समान रुप से आवश्यक तत्व है। इस तत्व की महिमा का वर्णन प्राचीन ऋषि मुनियों से लेकर आधुनिक वैज्ञानिको तक ने किया है। अनेक वैदिक कर्मकाण्डों में जल को अमृत रुप मानक जल से प्रक्षालन, आचमन एवं संकल्प धारण आदि क्रियाओं का उपदेश किया गया है। वैदिक दैनिक अग्निहोत्र में दाहिनी हाथ की हथेली में जल लेकर निम्न मंत्र से तीन बार आचमन करने का विधान है –

ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा।
ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा।
ओ३म् सत्यं यशः श्रीर्मयी श्रीः श्रयतां स्वाहा।।

(तैत्तिरीय अरण्यक)

अर्थात हे अविनाशी परमेश्वर ! आप सबके रक्षक हैं। आन्तरिक एवं बाह्य दुखों से हमारी रक्षा कीजिए। हे परम दाता प्रभों ! हम आपकी कृपा से सच्चा ज्ञान, विमल कीर्ति, भौतिक सम्पननता एवं आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करें। हम आपके उदार स्वाभाव से परिचित हैं और अपने साथियों को परिचित कराते हैं।

## 1.4 जल चिकित्सा की अवधारणा

पाठकों, पँच तत्वों में जल तत्व का अपना एक विशिष्ट स्थान है। स्थूलता के आधार पर जल तत्व दूसरा स्थूलतम् तत्व है जिसे सामान्य भाषा में पानी, वारि, नीर, तोय, अम्बु, सलिल, आप, उदक तथा अमृत आदि नामों से जाना जाता है। यह जल तत्व पृथ्वी पर प्रर्याप्त मात्रा में उपस्थित है। वैज्ञानिकों के अनुसार सम्पूर्ण पृथ्वी का 70 प्रतिशत जल तत्व से र्निमग्न है। जिस प्रकार पृथ्वी का 70 प्रतिशत भाग जल तत्व से परिपूर्ण है ठीक उसी प्रकार मानव शरीर का भी 70 प्रतिशत भाग जल तत्व ही है। यह जल तत्व जीवधारियों के जीवन का आधार होता है। इस तत्व के अभाव में जीवन की कल्पना ही नही की जा सकती है। मनुष्य के जीवन का आधार भी यह जल तत्व ही है। इन तत्व के द्वारा मनुष्य विभिन्न दैनिक एवं निमेतिक कार्यों के करने में सक्षम होता है। इस तत्व के अभाव में मनुष्य के दैनिक एवं निमैतिक कार्यों में अवरोध उत्पन्न हो जाता है।

यद्यपि सामान्य रुप से मनुष्य इस तत्व का प्रयोग पीने के रुप में, स्नान के रुप में एवं अन्य शरीर शोधक क्रियाओं के रुप में प्रतिदिन प्रातःकाल से लेकर रात्रिकाल तक करता रहता है किन्तु जब जल तत्व का प्रयोग एक चिकित्सक द्वारा वैज्ञानिक विधिनुसार रोगों क उपचार के उद्देश्य से किया जाता है तब वह जल चिकित्सा कहलाती है। जल चिकित्सा के अन्तर्गत उषापान, एनीमा क्रिया, विभिन्न प्रकार के स्नान एवं अंगों की लपेट का वर्णन आता है। यद्यपि जल चिकित्सा प्राचीन काल से प्रचलित चिकित्सा है। परन्तु मध्य काल में इस चिकित्सा का प्रचलन कम हो गया था। इस चिकित्सा के पुनरुथान में पश्चिमी चिकित्सकों ने अपना विशेष योगदान देकर इसको समाज में पुनः प्रचलित करने में

विशेष भूमिका वहन की। इस क्रम में विनसेंज प्रिस्निज, सेबस्टियन नीप एवं लुई कूने आदि प्राकृतिक चिकित्सकों ने जल चिकित्सा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। फादर सेबस्टियन नीप द्वारा रचित पुस्तक My Water Cure जल चिकित्सा की एक श्रेष्ठ पुस्तक है। इन चिकित्सकों के प्रयोगों से प्रभावित होकर भारतीय चिकित्सकों एवं विद्वानों ने जल चिकित्सा के महत्व को समझकर इसका अनुप्रयोग स्वमं पर किया तथा स्वंम पर इसके सकारात्मक परिणाम प्राप्त होने पर इन्होने इस अपना जीवन इस चिकित्सा पद्धति के प्रचार प्रसार में लगाया। इस प्रकार वर्तमान समय में सम्पूर्ण भारत वर्ष में जगह जगह अनेकों स्थानों पर जल चिकित्सा (प्राकृतिक चिकित्सा) केन्द्र खुले हुए हैं जहाँ नियमित रुप से जल तत्व के प्रयोग द्वारा अच्छे स्वास्थ को प्राप्त किया जाता है।

जल तत्व शरीर शुद्धिकरण का सबसे प्रमुख एवं मूल साधन है। जल तत्व के भलिभांति प्रयोग करने से शरीर में शुद्धता एवं स्वच्छता बनी रहती है जबकि इस तत्व के भलि भांति प्रयोग नही करने पर शरीर में इस तत्व का योग विषम हो जाता है तथा इस तत्व का विषम योग होने पर अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति होती है। मानव शरीर में जल तत्व को सम बनाने हेतु अनेक विधियों का प्रचलन है। जल तत्व से चिकित्सा को प्राकृतिक चिकित्सा में जल चिकित्सा के नाम से जाना जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा में जल तत्व को एक महाऔषधि के रुप में प्रयोग किया जाता है। वास्तव में जल तत्व का प्रयोग करने से शरीर को एक विशेष प्रकार ताजगी एवं स्फूर्ति प्राप्त होती है। प्रायः हम अनुभव करते हैं कि कार्य की गहरी थकान होने पर ठंडे जल से स्नान करने पर जो ताजगी प्राप्त होती है वह ताजगी एवं स्फूर्ति संसार की किसी अन्य दवाई से प्राप्त नही की जा सकती है। जल तत्व के इस गुण का प्रयोग प्राकृतिक चिकित्सा में किया जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा में जल तत्व का प्रयोग विभिन्न रोगों के उपचार में विशेष लाभकारी प्रभाव रखता है। विदेशों में प्रमुख रुप से जर्मनी एवं इग्लैण्ड आदि देशों में प्राकृतिक चिकित्सा के नाम से विभिन्न जल केन्द्र खुले हुए हैं जहां पर जल को एक सुपर मैडिसन के रुप में प्रयोग किया जाता है। प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक डॉ0 लिण्डलहार के अनुसार बुखार ठीक करने में अन्य औषधियों की तुलना में जल 1/10 समय लेता है अर्थात औषधियों का प्रयोग करने से यदि बुखार दस दिनों में ठीक होता है तो वहीं जल के प्रयोग (गीली चादर, एनीमा एवं अन्य प्रयोगों द्वारा) से बुखार एक दिन में ही ठीक हो जाता है। प्रायः तेज बुखार होने पर माथे पर ठंडे जल की गीली पट्टी देने से बुखार में तुरन्त लाभ मिलता है एवं शरीर का तापक्रम सामान्य हो जाता है। वर्तमान समय में जल चिकित्सा एक वृहद्ध शास्त्र के रुप में विकसित हो चुकी है। विश्व के अन्य देशों के साथ साथ भारत वर्ष के अनेक भागों में जल चिकित्सा के केन्द्र हाइड्रोथेरेपी सेंटर के रुप में एवं वाटर किंगडम के रुप में विकसित हो रहे हैं। इन केन्द्रों में जल को आधार मानकर विभिन्न ऐसी क्रियाएं अथवा कार्य कराए जाते हैं जिनका मानव के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर अनुकूल एवं सकारात्मक प्रभाव पडता है।

प्रिय पाठकों, मानव शरीर का निर्माण कोशिकाओं से हाता है। शरीर की कोशिकाओं का प्रमुख घटक द्रव्य जल तत्व ही होता है। कोशिकाओं में उपस्थित कोशिका द्रव्य का मूल आधार जल तत्व ही होता है। शरीर की कोशिका जल तत्व के माध्यम से ही पोषण प्राप्त करती है एवं अपने अन्दर उपस्थित विषाक्त विजातीय पदार्थों को जल तत्व के माध्यम से अर्थात द्रवीय रुप में निष्कासित करती है। उम्र बढने पर कोशिकाओं के जल ग्रहण करने की क्षमता एवं निष्कासन की क्षमता धीमी पड जाती है जिसके परिणामस्वरुप

अंगों की कियाशीलता कम हो जाती है, त्वचा पर झुर्रियॉं पडने लगती हैं एवं बुढापे के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। मानव शरीर की सबसे प्रमुख धातु रक्त का प्रमुख घटक द्रव्य भी जल तत्व ही होता है। जल तत्व की उपस्थिति के कारण रक्त शरीर में पोषक तत्वों के परिवहन एवं शरीर शोधन में प्रमुख भूमिका वहन करता है। जल चिकित्सा के माध्यम से शरीर की कोशिकाओं की जल ग्रहण करने की क्षमता को बढाया जाता है। जल चिकित्सा के द्वारा शरीर में जल तत्व को अधिक मात्रा में प्रदान करते हुए इस तत्व की विषमता से उत्पन्न रोगों का उपचार किया जाता है।

इस प्रकार उपरोक्त तथ्य स्पष्ट करते हैं कि जल तत्व मानव शरीर के लिए अत्यन्त उपयोगी एवं महत्वपूर्ण तत्व है जिसके अभाव में जीवन की कल्पना नही की जा सकती है। सामान्य रुप से एक स्वस्थ मानव प्रतिदिन लगभग ढाई लीटर जल का उत्सर्जन मूत्र, स्वेद एवं प्रश्वास आदि के रुप करता है। जल की इस मात्रा को प्रतिदिन ग्रहण करना भी अनिवार्य हाता है इसीलिए शरीर चिकित्सक प्रतिदिन तीन लीटर शुद्ध जल के सेवन का निर्देश देते हैं। इससे कम मात्रा में जल तत्व का सेवन करने से शरीर की आन्तरिक कियाओं में बाधाएं उत्पन्न होने लगती हैं एवं विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होने लगते हैं। जल चिकित्सा के माध्यम से जल तत्व का प्रयोग करते हुए रोगों का उपचार किया जाता है।

## 1.5 जल चिकित्सा का महत्व

प्रिय विद्यार्थियों, वर्तमान काल में जल चिकित्सा एक प्रमुख एवं महत्वपूर्ण चिकित्सा पद्धति के रुप में विकसित हो चुकी है। चूंकि आधुनिक समय चारों ओर प्रदूषण का स्तर बहुत तेजी से बढा है एवं मानव के खान पान में रासायनिक पदार्थों एवं परिरक्षक पदार्थों (Preservative) के सेवन की मात्रा बढी है जिनके परिणाम स्वरुप शरीर में विजातीय विष अधिक मात्रा में एकत्र होते हैं। शरीर को इन विताजीय विषों से मुक्त बनाने में जल चिकित्सा महत्वपूर्ण भूमिका वहन करती है। दिनचर्या के अपालन, भोजन की अनियमितता एवं मानसिक तनाव आदि कारक भी शरीर में विजातीय विषों के बोझ का बढा देते है इस अवस्था में शरीर शोधन की विशेष आवश्यक्ता होती है। शरीर शोधन में जल चिकित्सा एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका का वहन करती है। वास्तव में जल चिकित्सा एक ओर जहॉं शरीर शोधन का कार्य करती है तो वहीं दूसरी ओर अंगों की कियाशीलता को बढाने में भी महत्वपूर्ण योगदान देती है। जल चिकित्सा के प्रयोग से शरीर स्वच्छ, कियाशील, रोग रहित एवं स्वस्थ बनता है। शरीर के विभिन्न तंत्रों पर जल चिकित्सा लाभकारी प्रभाव रखती है। मानव शरीर के तंत्रो पर जल चिकित्सा के लाभकारी प्रभाव इसके महत्व को सिद्ध करता है। मानव शरीर के तंत्रों पर लाभकारी प्रभावों के आधार पर जल चिकित्सा के महत्व को निम्न लिखित बिंदुओं द्वारा आसानी से समझा जा सकता है –

**(क) रक्त परिसंचरण तंत्र पर जल चिकित्सा का प्रभाव :**

प्रिय विधाथियों, जैसा कि आपने पूर्व में जाना कि जल तत्व का शरीर के रक्त के साथ सीधा सम्बन्ध होता है। शरीर में जल तत्व की कमी होने पर रक्त गाढा हाने लगता है। रक्त के गाढा हाने के कारण रक्त वाहिनीयों में इसके संचरण में बाधा उत्पन्न हाने लगती है जिससे रक्त चाप सम्बन्धी रोग उत्पन्न होने लगते हैं। इसके अतिरिक्त शरीर में जल तत्व के अभाव से विषाक्त पदार्थों की मात्रा बढने लगती है जिसका हृदय पर

प्रतिकूल प्रभाव पडता है एवं इसके परिणाम स्वरुप हृदय से सम्बन्धित रोग उत्पन्न होने लगते हैं।

उपरोक्त अवस्था में जल चिकित्सा लाभकारी प्रभाव रखती है। जल चिकित्सा के अन्तर्गत उषापान, एनीमा, स्नान एवं लपेट आदि क्रियाओं का अभ्यास रोगी को विधिपूर्वक एवं नियमित रुप से करने से रक्त शुद्धिकरण की क्रिया ृीव होती है, रक्त परिसंचरण में स्वभाविक रुप से ृीवता उत्पन्न होती है, रक्तचाप नियमित होता है एवं हृदय स्वस्थ, शक्तिशाली एवं ऊर्जावान बनता है। जल चिकित्सा के प्रभाव से रक्त हिमोग्लोबिन से परिपूर्ण बना रहता है एवं रक्त में ऑक्सीजन व कार्बन डाई ऑक्साइड को ग्रहण करने एवं छोडने की क्षमता अच्छी बनी रहती है। यद्यपि जल चिकित्सा का प्रयोग रक्त परिसंचरण तंत्र को स्वस्थ एवं रोग मुक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका वहन करता है किन्तु एक ध्यान देने योग्य प्रमुख तथ्य यह है कि उच्च रक्तचाप रोगी को गर्म जल से उपचार नही देना चाहिए अथवा अत्यन्त सावधानी पूर्वक देना चाहिए एवं गर्म जल से उपचार के बाद ठण्डे जल से उपचार अवश्य देना चाहिए।

**(ख) पाचन तंत्र पर जल चिकित्सा का प्रभाव :**

जिज्ञासु पाठकों, मानव शरीर जल तत्व को पाचन तंत्र के माध्यम से ग्रहण करता है। जिस कारण पाचन तंत्र का जल तत्व के साथ सीधा सम्बन्ध होता है। जल संसार का एक श्रेष्ठ घोलक द्रव्य है, इस द्रव्य में घोलकर विभिन्न पोषक तत्वों एवं लाभकारी पदार्थों को हम भोजन के रुप में ग्रहण करते हैं। जिस प्रकार शरीर में जल तत्व की मात्रा को सम एवं विषम बनाने में पाचन तंत्र महत्वपूर्ण भूमिका वहन करता है उसी प्रकार शरीर में जल तत्व की मात्रा सम एवं विषम होने का इस तंत्र पर भी अनुकूल एवं प्रतिकूल प्रभाव पडता है। शरीर में जल तत्व की मात्रा विषम अथवा कम होने से कब्ज नामक रोग की उत्पत्ति होती है। इसके साथ साथ जल तत्व शरीर में भोजन के पाचन, अवशोषण एवं उत्सर्जन की क्रिया में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस तत्व के अभाव में भोजन के पाचन, अवशोषण उवं उत्सर्जन की क्रिया पर नकारात्मक प्रभाव पडता है। जल तत्व की विषमता पाचन तंत्र में अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति होती है। पाचन तंत्र के इन रोगों में आँतों की शुष्कता, कब्ज, अपच, भूख नही लगना, पेट दर्द, गैस, यकृत विकार एवं मधुमेह आदि रोगों का वर्णन प्रमुख रुप से आता है।

उपरोक्त सभी रोगों में जल चिकित्सा लाभकारी प्रभाव रखती है। जल चिकित्सा की विभिन्न प्रविधियों द्वारा उपचार करने से इन रोगों में शीघ्र अतिशीघ्र लाभ प्राप्त होता है। इसके साथ साथ पाचन तंत्र को स्वस्थ एवं सक्रिय बनाने में भी जल चिकित्सा लाभकारी प्रभाव रखती है। पाचन तंत्र के रोगों में जल चिकित्सा के अन्तर्गत प्रायः गर्म जल का प्रयोग अधिक लाभकारी प्रभाव रखता है। इसके साथ साथ गर्म के साथ साथ ठण्डे जल का प्रयोग करने से तंत्र की क्रियाशीलता बढती है एवं रोगों से मुक्ति मिलती है।

**(ग) उत्सर्जन तंत्र पर जल चिकित्सा का प्रभाव :**

जल तत्व में शुद्धिकरण का अत्यन्त विशिष्ट गुण होता है। शरीर जल तत्व के माध्यम से अपने अन्दर स्थित विषाक्त अथवा उत्सर्जी पदार्थों को निष्कासित करते हुए शुद्धता एवं स्वच्छता को धारण करता है। सरल शब्दों में शरीर के अन्दर के विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालने में जल तत्व महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसीलिए शरीर में जल तत्व विषम होने पर अथवा जल तत्व की कमी होने पर विजातीय पदार्थों का शरीर से भलिभांति निष्कासन नही हो पाता है एवं विजातीय विषों की मात्रा शरीर में ही बढने लगती है। शरीर

में जल तत्व की प्रर्याप्त मात्रा होने पर वृक्कों की क्रियाशीलता भलिभांति बनी रहती है जबकि जल तत्व की कमी होने पर वृक्कों की कियाशीलता कम होने के साथ साथ वृक्कों में पथरी आदि रोग उत्पन्न होने लगते हैं। इसके अतिरिक्त वृक्क भलि भांति रक्त को साफ भी नही कर पाते हैं जिसके कारण अलग अलग प्रकार के त्वचा विकार भी उत्पन्न होते हैं।

**(घ) शरीर की अस्थियों एवं पेशीय तंत्र पर जल चिकित्सा का प्रभाव :**

प्रिय पाठकों, मानव शरीर की अस्थियों के अन्दर जल तत्व प्रमुख रुप से विद्यमान रहता है। चिकित्सा वैज्ञानिकों के अनुसार मानव अस्थि का 25 प्रतिशत भाग जल तत्व होता है। जल तत्व की उपस्थिति के कारण अस्थियों में लचीलापन एवं दृढता बनी रहती है। इसके अतिरिक्त शरीर की उपास्थियों में भी जल तत्व की उपस्थिति के कारण ही अधिक लचीलापन पाया जाता है।

शरीर में जल तत्व की कमी के कारण अस्थियों एवं उपास्थियों में कडापन एवं भंगुरता उत्पन्न हो जाती है। जल तत्व की कमी से अस्थियों एवं जोडों में अनेक प्रकार के दर्द एवं सूजन उत्पन्न होकर गठिया एवं आर्थाराइटिस आदि रोगों को जन्म देते हैं। अस्थियों में जल तत्व की कमी होने पर अस्थि मज्जा में रक्त कणों के निर्माण की क्रिया भी धीमी पड जाती है। अस्थियों के समान मॉसपेशियों की क्रियाशीलता में भी जल तत्व महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शरीर में जल तत्व की पर्याप्त मात्रा होने पर मॉसपेशियों की क्रियाशीलता बनी रहती है। इसके साथ साथ मॉसपेशियों के लचीलेपन एवं शक्ति में भी जल तत्व का महत्वपूर्ण योगदान होता है। जल तत्व की कमी होने पर मॉसपेशियों में शक्तिहीनता, कडापन एवं पेशियों सम्बन्धी अन्य रोगों की उत्पत्ति होती है। विभिन्न प्रकार के पेशियों में होने वाले दर्द में भी जल तत्व की कमी प्रमुख कारण होती है। इस प्रकार के रोगों में जल चिकित्सा के प्रयोग से शीघ्र लाभ प्राप्त होता है।

**(ङ) शरीर के तंत्रिका तंत्र पर जल चिकित्सा का प्रभाव :**

मानव तंत्रिका तंत्र में जल तत्व प्रमुख रुप से उपस्थित तत्व है। यह तंत्र मकडी के जाले के समान सम्पूर्ण शरीर में फैला रहता है जिसके अन्तर्गत विभिन्न तंत्रिकाएं जल तत्व के माध्यम से बाह्य वातावरण से संवेदनाओं एवं प्रेरणाओं को ग्रहण करती हैं। जल तत्व के अभाव में तंत्रिकाओं की कार्यकुशलता एवं क्षमता कम हो जाती है। मानव मस्तिष्क में भी जल तत्व प्रमुख रुप से उपस्थित तत्व है। शरीर में जल तत्व के अभाव में विभिन्न प्रकार मस्तिष्क संम्बन्धी रोगों की उत्पत्ति होती है।

जल चिकित्सा के अन्तर्गत ठण्डे जल के प्रयोग से तंत्रिकाओं को बल मिलता है जबकि गर्म जल के प्रयोग से रक्त संचार व्रीव होने से तंत्रिकाओं की क्रियाशीलता बढती है। विभिन्न प्रकार के तंत्रिकाओं से सम्बन्धित रोगों में जल चिकित्सा का प्रयोग विशेष रुप से लाभकारी प्रभाव रखती है। मस्तिक विकारों में भी जल चिकित्सा के प्रयोग से लाभ मिलता है।

इस प्रकार उपरोक्त तथ्य के आधार पर स्पष्ट होता है कि जल चिकित्सा शरीर के विभिन्न अंगों एवं संस्थानों पर लाभकारी प्रभाव रखती है जो जल चिकित्सा के महत्व को प्रकट करता है। वास्तव में जल में शोधन अथवा शुद्धिकरण का विशिष्ट गुण होता है। जल तत्व का यह गुण चिकित्सा के क्षेत्र में विशेष महत्वपूर्ण होता है। सामान्य रुप से विकृत आहार विहार के सेवन, अनियमित दिनचर्या एवं बाह्य प्रदूषण आदि कारकों के परिणामस्वरुप शरीर में विषाक्त पदार्थों की मात्रा बढती चली जाती है इन विषाक्त तत्वों की बढी हुई मात्रा अंगों की क्रियाशीलता में बाधा उत्पन्न करती है जिसके परिणामस्वरुप

अगों से सम्बन्धित तंत्र रोग से ग्रस्त हो जाता है। तंत्र की रोगावस्था को ठीक करने में एवं अंगों की क्रियाशीलता बढाने में जल चिकित्सा बहुत महत्वपूर्ण भूमिका का वहन करती है। जल चिकित्सा का प्रयोग शरीर के समस्त आन्तरिक बाह्य अंगों का शोधन करते हुए उन्हे स्वस्थ एवं क्रियाशील बनाता है।

जिज्ञासु पाठकों, जल चिकित्सा के लाभकारी प्रभाव एवं महत्व को जानने एवं समझने के उपरान्त अब आपके मन में यह जिज्ञासा भी अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी कि जल चिकित्सा के प्रयोग में किन किन सावधानियों को ध्यान में रखना चाहिए। चूंकि यहाँ पर जल चिकित्सा का प्रयोग रोगी पुरुषों पर किया जा रहा है अतः सावधानियों का ज्ञान होना अत्यन्त अनिवार्य है। अतः अब जल चिकित्सा की प्रमुख सावधानीयों पर विचार करते हैं –

## 1.6 जल चिकित्सा की सावधानियॅा

जल चिकित्सा की प्रमुख सावधानियॅा इस प्रकार हैं –

(1) शरीर में कफ दोष की विकृत अवस्था में ठण्डे जल का अधिक प्रयोग रोगी पर नही करना चाहिए। त्रीव सर्दी, खाँसी, बुखार, जुकाम, टॉसिल्स, टी0 बी0, दमा, जोडों में दर्द व सूजन, कमर दर्द, गठिया व आर्थाराइटिस आदि रोगों की त्रीव अवस्था में रोगी पर ठण्डे जल का प्रयोग करने से रोग ओर अधिक त्रीव अवस्था को प्राप्त हो जाता है। अतः इन रोगों में ठण्डे जल का प्रयोग अत्यन्त सावधानिपूर्वक अथवा नही करना चाहिए। दठण्डे जल के प्रयोग से गठिया एवं आर्थाराइटिस रोगी के जोडों में दर्द एवं सूजन बढ जाती है।

(2) उच्च रक्तचाप, ह्रदय रोगी, मिर्गी एवं मानसिक तनाव से ग्रस्त रोगी को गर्म जल का उपचार अत्यन्त सावधानीपूर्वक अथवा नही देना चाहिए। इस प्रकार के रोगियों को गर्म जल का उपचार देने से रक्तचाप, ह्रदय गति एवं चयापचय दर असामान्य रुप से बढ जाती है जिसके परिणाम स्वरुप रोग की त्रीवता बढ जाती है एवं रोगी स्वमं को अधिक असहज अनुभव करने लगता है अतः इन रोगियों को गर्म जल का उपचार नही देना चाहिए।

(3) यदि गर्म जल के उपचार के तुरन्त बाद ठण्डे जल का उपचार भी रोगी को देना है तो सदैव उपचार का प्रारम्भ गर्म जल के साथ करना चाहिए एवं ठण्डे जल के उपचार पूर्ण करना चाहिए। अर्थात गर्म जल से उपचार प्रारम्भ करते हुए ठण्डे जल के प्रयोग के साथ उपचार समाप्त करना चाहिए।

(4) गर्म जल का उपचार देने अत्यन्त सावधानी रखनी चाहिए। गर्म जल का उपचार देने से पूर्व रोगी को एक से दो गिलास सामान्य तापक्रम का जल पीलाकर ही उपचार देना चाहिए। इसके साथ साथ रोगी के सिर को ठण्डे जल में अच्छी प्रकार भिगो लेने के उपरान्त ही गर्म उपचार जैसे भाप स्नान, गर्म कटि स्नान, गर्म रीढ स्नान आदि देने चाहिए। गर्म जल के उपचार के उपरान्त रोगी को कुछ समय शवासन में आराम करना चाहिए।

(5) गर्म जल का प्रयोग गर्दन से ऊपर के भाग पर नही करना चाहिए। विशेष रुप से सिर एवं आँखों पर गर्म जल का प्रयोग कदापि नही करना चाहिए। भाप स्नान जैसे गर्म उपचार में भी सिर को बाहर रखते हुए इसे गर्मी से बचाना चाहिए।

(6) रोग की अति त्रीव अवस्था, गंभीर जीर्ण रोग से ग्रस्त कमजोर रोगी, वृद्ध रोगी एवं गर्भवती स्त्री पर अधिक गर्म एवं अधिक ठण्डे जल का प्रयोग अत्यन्त

सावधानीपूर्वक करना चाहिए। इस प्रकार की अवस्था में एकदम से गर्म एवं ठण्डे जल का प्रयोग रोगी पर नही करना चाहिए। ठण्डे जल के प्रयोग करने से पूर्व शरीर को थोडा गर्म अथवा ऊर्जावान बनाकर ही ठण्डे जल का प्रयोग करना चाहिए। ठण्डे जल के उपचार के उपरान्त रोगी को एकदम से आराम नही करना चाहिए अपितु रोगी को कछ समय टहलना अथवा भ्रमण करना चाहिए।

(7) जल चिकित्सा के अन्तर्गत भाप एवं बर्फ के प्रयोग में अत्यन्त सावधानी रखनी चाहिए। बर्फ एवं भाप का प्रयोग तंत्रिका तंत्र की तंत्रिकाओं कर सीधा प्रभाव रखता है अतः इनका प्रयोग अत्यन्त सावधानीपूर्वक करना चाहिए।

(8) रक्त स्रव की अवस्था में गर्म जल का प्रयोग नही करना चाहिए। आँतों में घाव एवं आँतों में अल्सर की अवस्था में गर्म जल का आन्तरिक प्रयोग जैसे कुँजल एवं एनीमा आदि नही करने चाहिए।

(9) गर्म जल के अधिक लम्बे समय तक प्रयोग करने से त्वचा की सबसे बाहरी परत को हानि पहुँचने लगती है। अधिक गर्म जल के लम्बे समय तक प्रयोग करने से त्वचा में उपस्थित संवेदी तंत्रिकाएं मृत होने लगती है जिसके कारण त्वचा एवं शरीर में संवेदन हीनता की अवस्था उत्पन्न होने लगती है। इसके साथ साथ गर्म जल का अधिक लम्बे समय तक प्रयोग करने से मॉसपेशियों का स्वाभाविक बल (Muscle tone) भी कम होने लगता है एवं त्वचा लटकने लगती है।

(10) जल चिकित्सा सदैव खाली पेट ही देनी चाहिए तथा जल चिकित्सा के तुरन्त बाद कुछ नही खाना चाहिए अपितु कम से कम आधा से एक घटें के उपरान्त ही कुछ आहार ग्रहण करना चाहिए।

(11) जल चिकित्सा में स्वच्छता का विशेष ध्यान रखना चाहिए एवं सदैव साफ स्वच्छ जल का ही चिकित्सा में प्रयोग करना चाहिए।

इस प्रकार उपरोक्त सावधानीयों को ध्यान में रखकर चिकित्सा करने से विभिन्न सामान्य एवं गंभीर रोगों के उपचार में जल चिकित्सा लाभकारी प्रभाव देती है। इन सावधानियों के अनुसार चिकित्सा करने से रोग में शीघ्र प्रभावकारी लाभ प्राप्त होते हैं एवं इसके साथा साथ सभी प्रकार के दुष्प्रभावों एवं हानियों से भी रोगी मुक्त रहता है।

**अभ्यास हेतु प्रश्न –**

1– **सत्य असत्य**

**(क)** जल तत्व वायु एवं अग्नि तत्व के संयोग से उत्पन्न होता है।

**(ख)** जल चिकित्सा सदैव रोगी को भोजन कराने के उपरान्त ही देनी चाहिए।

**(ग)** गर्म जल का अधिक लम्बे समय तक प्रयोग करने से मॉसपेशियों का स्वाभाविक बल (Muscle tone) भी बढने लगती है।

**(घ)** गर्म जल से उपचार के बाद ठण्डे जल से उपचार अवश्य देना चाहिए।

**(ङ)** जल चिकित्सा के अन्तर्गत ठण्डे जल से उपचार प्रारम्भ करते हुए गर्म जल के प्रयोग के साथ उपचार समाप्त करना चाहिए।

**2– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए** :

**(क)** इस सृष्टि में सर्वप्रथम ईश्वरीय शक्ति से ––––––––– तन्मात्रा उत्पन्न हुई।

**(ख)** जल तत्व में ––––––––– का अत्यन्त विशिष्ट गुण होता है।

**(ग)** भोजन के पाचन, अवशोषण एवं उत्सर्जन की क्रिया में ——————— तत्व महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

**(घ)** फादर सेबस्टियन नीप द्वारा रचित पुस्तक ———————— जल चिकित्सा की एक श्रेष्ठ पुस्तक है।

**(ड)** जल चिकित्सा के अन्तर्गत ——————— के प्रयोग से तंत्रिकाओं को बल मिलता है।

3– **एक शब्द में उत्तर दीजिए –**

**(क)** शरीर किस तत्व के माध्यम से अपने अन्दर स्थित विषाक्त पदार्थों को निष्कासित करते हुए शुद्धता एवं स्वच्छता को धारण करता है ?

**(ख)** भूत शब्द संस्कृत की किस धातु से उत्पन्न होता है ?

**(ग)** शरीर चिकित्सकों के अनुसार मानव शरीर का कितने प्रतिशत भाग जल तत्व ही है ?

**(घ)** स्थूलता के आधार पर जल तत्व कौन सा स्थूलतम् तत्व है ?

**(ड)** गर्म जल का प्रयोग शरीर के किस भाग पर नही करना चाहिए ?

**3–बहुविकल्पीय प्रश्न –**

**(क)** प्राकृतिक चिकित्सा में जल को किस रुप में प्रयोग किया जाता है –

(a) सुपर मेडिसन (b) एंटी बायोटिक मेडिसन

(c) स्टीरॉइड मेडिसन (d) एनल्जेसिक मेडिसन।

**(ख)** जल तत्व की उत्पत्ति किस तत्व के विकार का परिणाम है –

(a) पृथ्वी तत्व (b) वायु तत्व

(c) अग्नि तत्व (d) आकाश तत्व ।

**(ग)** जल तत्व में किस गुण का अभाव होता है –

(a) शब्द (Sound) (b) गन्ध (Smell)

(c) स्पर्श (Touch) (d) रस (Taste) ।

**(घ)** चिकित्सा वैज्ञानिकों के अनुसार मानव अस्थि का कितना प्रतिशत भाग जल तत्व होता है –

(a) 25 (b) 50

(c) 70 (d) 10 ।

**(ड)** किस प्रकार के रोगियों को गर्म जल का उपचार नही देना चाहिए –

(a) हृदय रोगियों (b) उच्च रक्तचाप रोगियों

(c) मानसिक तनाव से ग्रस्त (d) उपरोक्त सभी

## 1.7 सारांश–

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई का प्रारम्भ पँचतत्वों (पँचमहाभूतों) के परिचय से किया गया है। इकाई के प्रारम्भ में ही पँचतत्वों की उत्पत्ति के क्रम को समझाते हुए इनकी तन्मात्राओं को स्पष्ट किया गया है। यहां पर स्पष्ट किया गया है कि जल तत्व अग्नि तत्व के विकार का परिणाम है जिसकी उत्पत्ति वायु तत्व एवं अग्नि तत्व के संयोग से होती है। इस संदर्भ में

वैज्ञानिक प्रयोग का उदाहरण भी दिया गया है। इकाई में आगे जल तत्व का परिचय वैदिक कर्मकाण्ड के ग्रन्थों अर्थात वेदों एवं उपनिषदों के आधार पर दिया गया है। तत्पश्चात जल तत्व की अवधारण को स्पष्ट करते हुए समझाया गया है कि जिस प्रकार जल तत्व पृथ्वी के 70 प्रतिशत भाग में फैला होता है उसी प्रकार मानव शरीर का 70 प्रतिशत भाग यह जल तत्व ही होता है। शरीर में इस तत्व की सम अवस्था स्वास्थ्य एवं इस तत्व की विषम अवस्था रोग कहलाती है।

इकाई में स्पष्ट किया गया है कि आधुनिक काल में जल चिकित्सा के अन्तर्गत जल को एक महाऔषधि के रुप में प्रयोग किया जाता है। शरीर के तंत्रों से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के रोगों को दूर करने में जल तत्व का प्रयोग लाभकारी भूमिका वहन करता है। रोगोपचार में यह तत्व विशेष लाभकारी प्रभाव रखता है। जिससे इस तत्व के महत्व का ज्ञान प्राप्त होता है। अन्त इस तत्व के प्रयोग अर्थात जल चिकित्सा के अन्तर्गत ध्यान रखने योग्य प्रमुख सावधानियों एवं महत्वपूर्ण तथ्यों को स्पष्ट करते हुए इकाई को पूर्ण किया गया है।

## 1.8 पारिभाषिक शब्दावली–

| | |
|---|---|
| तन्मात्रा | तत्व का अपना विशिष्ट अथवा मूल गुण |
| अवधारणा | विषय का आधार |
| पुनरुथान | एक बार लुप्त हाने के पश्चात पुन व्यवहार अथवा प्रचलन में आना |
| परिरक्षक | खाने के पदार्थों में सडन को रोकने के लिए प्रयुक्त होने वाला द्रव्य |
| विकार | रोग अथवा बिमारी |
| वृहद शास्त्र | विशाल ज्ञान विज्ञान के ग्रन्थ |

## 1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

| | | |
|---|---|---|
| क. सत्य | क. शब्द | क. जल |
| क. a | | |
| ख. असत्य | ख. शुद्धिकरण | ख. भू |
| ख. c | | |
| ग. असत्य | ग. जल | ग. 70 |
| ग. b | | |
| घ. सत्य | घ. My Water Cure | घ. दूसरा |
| घ. a | | |
| ड. असत्य | ड. ठण्डे जल | ड. गर्दन के ऊपर |
| ड. d | | |

## 1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची


1. प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – डॉ0 राकेश जिन्दल, आरोग्य सेवा प्रकाशन, मोदी नगर (उ0प्र0) ।
2. प्राकृतिक चिकित्सा – डॉ0 टी0 एन0 श्रीवास्तव, मैत्रेयी प्रकाशन, नई दिल्ली।

3. प्राकृतिक चिकित्सा – रामगोपाल शर्मा, प्रभात पेपरबैक्स , नई दिल्ली।
4. प्राकृतिक उपचार की विधियाँ – डॉ0 राजीव रस्तोगी, पापुलर बुक डिपो जयपुर।
5. जल चिकित्सा – डा0 आर0 एस0 अग्रवाल, डा0 एन0 के अग्रवाल, मनोज पब्लिकेशन्स, दिल्ली 6।
6. Naturopathy the Holistic Healer – Dr. Satish Bajaj, Nirmaya Naturopathy, Delhi.


## 1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. जल तत्व की सविस्तार व्याख्या किजिए।
2. जल तत्व कीअवधारणा को स्पष्ट करते हुए इसकेमहत्वपरप्रकाश डालिए।
3. वर्तमान काल में जल चिकित्सा के महत्व एवं इसके प्रयोग की प्रमुख सावधनियॉ सविस्तार लिखिए।

# इकाई 2 जल चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न स्नान

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 जल चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न स्नानों के प्रकार
2.4 कटि स्नान
2.5 रीढ स्नान
2.6 पाद स्नान
2.7 बॉह स्नान
2.8 पूर्ण डूब स्नान
2.9 घर्षण मेहन स्नान
2.10 भाप स्नान
2.11 सारांश
2.12 पारिभाषिक शब्दावली
2.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.15 सहायक पाठ्य सामग्री
2.16 निबन्धात्मक प्रश्न

## 2.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठकों, पूर्व की इकाई में आपने जल तत्व का परिचय एवं जल चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त किया और जाना कि जल चिकित्सा वर्तमान समय में प्रचलित चिकित्सा पद्धति है जो विभिन्न रोगों में लाभकारी प्रभाव रखती है। आपने पूर्व की इकाई में जल चिकित्सा का मानव शरीर के तंत्रों पर लाभकारी प्रभाव का भी अध्ययन किया। इस अध्ययन के उपरान्त आपके मन में इस विषय को अधिक अच्छे प्रकार से जानने की जिज्ञासा अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी विशेष रुप से यह जिज्ञासा तो अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी कि जल चिकित्सा में किस किस स्नान का वर्णन आता है ? किस स्नान के क्या क्या लाभ एवं सावधनियॉ होती है ? कौन सा स्नान किस रोग में विशेष लाभकारी अथवा प्रभावी सिद्ध होती है ? प्रस्तुत इकाई में प्राकृतिक चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न स्नानों की विधि, लाभ एवं सावधानियों पर प्रकाश डाला गया है।

प्रिय विधार्थियों, स्नान एक अत्यन्त व्यव्हारिक एवं दैनिक प्रयोग में आने वाली क्रिया है जिससे हम अपनी दिनचर्या में प्रतिदिन व्यव्हार में लाते हैं। यह प्रतिदिन प्रातःकाल किए जाने वाला दैनिक एवं अनिवार्य कार्य है। प्रातःकाल पूजा अर्चना से लेकर अन्य महत्वपूर्ण एवं सामान्य कार्यों का प्रारम्भ इस कर्म के साथ होता है। स्नान करने से जो शुद्धता एवं पवित्रता आती है उस अनुभुति को शब्दों में व्यक्त करना कठिन है किन्तु इतना अवश्य ही है कि कार्य की थकान होने पर ठंडे जल से स्नान करने से जो ताजगी एवं

स्फूर्ति प्राप्त होती है उसे संसार की अन्य किसी औषधि अथवा दवाई से प्राप्त करना कठिन है। प्रतिदिन के सामान्य स्नान के अतिरिक्त विविध प्रकार के स्नान प्राकृतिक चिकित्सा में जल चिकित्सा की रीढ का कार्य करते है। चूंकि प्राकृतिक चिकित्सा मूल रुप से शरीर शोधन पर आधारित चिकित्सा पद्धति है जिसमे स्नान अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका वहन करते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत भाप स्नान एवं कटि स्नान इतने व्यवहारिक एवं प्रचलित स्नान है कि इनके नामों से आप पूर्व में परिचित अवश्य ही होगें। किन्तु इनकी विधि, लाभ एवं सावधानियों के विषय में ज्ञान होना भी अत्यन्त आवश्यक है। इसके साथ साथ प्राकृतिक चिकित्सा में प्रयोग में आने वाले अन्य स्नानों के को जानने की जिज्ञासा भी आपके मन में अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी। प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई में इन स्नानों के विषय में विस्तारपूर्वक एवं सुव्यवस्थित रुप से समझाया गया है।

## 2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- जल चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न प्रकार के स्नानों का परिचय प्राप्त कर सकेगें।
- जल चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न प्रकार के स्नानों की विधि का ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।
- जल चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न प्रकार के स्नानों के लाभों को समझाने में सक्षम हो सकेगें।
- विभिन्न रोगों की जल चिकित्सा में स्नानों के महत्व का वर्णन कर सकेंगे।
- जल चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न प्रकार के स्नानों की सावधानियों को समझाने में सक्ष्म हो सकेगें।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में दिए गये प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे।

## 2.3 जल चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न स्नानों के प्रकार

जल चिकित्सा में प्रमुख रुप से कटि स्नान, रीढ स्नान, बॉह स्नान, पैर स्नान, भाप स्नान एवं सम्पूर्ण स्नान का वर्णन आता है। इन स्नानों में भाप स्नान में भाप का एवं अन्य सभी स्नानों में मूल रुप से साफ–स्वच्छ जल का प्रयोग किया जाता है। इन स्नानों में प्रयुक्त जल के तापक्रम के आधार पर इन्हें निम्न लिखित तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है –

(क) सामान्य तापक्रम एवं ठण्डे जल के स्नान :

इस वर्ग के स्नानों में सामान्य तापक्रम (मानव शरीर के तापक्रम 98.4 डिग्री फेरेहनाइट) अथवा इससे कुछ ठण्डे जल को स्नान में प्रयुक्त किया जाता है। इस वर्ग के स्नानों से शरीर की कोशिकाओं, तंत्रिकाओं, अंगों एवं तंत्रों को बल तथा शक्ति प्राप्त होती है। ठंडे जल के स्नानों का प्रयोग अंगों की शक्ति एवं बल को बढाने के लिए एवं थकान को दूर करने के उद्देश्य से किया जाता है। ठण्डा कटि स्नान, रीढ स्नान, पैर स्नान, बॉह स्नान एवं सम्पूर्ण शरीर का स्नान इस वर्ग के प्रमुख स्नान हैं।

(ख) गर्म जल के स्नान :

स्नान की क्रिया में जब गर्म जल का प्रयोग किया जाता है तब उसकी शोधन क्षमता और अधिक बढ जाती है अर्थात इस वर्ग के स्नानों से अंगों एवं शरीर का शोधन

और अच्छी प्रकार से होता है। इसके साथ साथ गर्म जल के प्रयोग से रक्त संचार में त्रीवता उत्पन्न होती है जिससे रोगी को दर्द में आराम मिलता है। इसीलिए इस वर्ग के स्नानों का प्रयोग अच्छी प्रकार शरीर शोधन एवं त्रीव दर्द से आराम प्राप्त करने के उद्देश्य से किया जाता है। गर्म कटि स्नान, गर्म रीढ स्नान, गर्म पैर स्नान गर्म बॉह स्नान एवं गर्म सम्पूर्ण शरीर का स्नान इस वर्ग के प्रमुख स्नान हैं।

**(ग) गर्म–ठण्डे जल के स्नान :**

स्नानों के अन्तर्गत यह वर्ग एक विशिष्ट प्रकार का किन्तु सर्वाधिक लाभकारी एवं प्रभावशाली वर्ग है जिसके प्रयोग से रोगी को शीघ्र अतिशीघ्र लाभ प्राप्त होता है। इस प्रकार के स्नानों में ठण्डे एवं गर्म तापक्रम के जल को दो अलग अलग पात्रों अर्थात टबों में प्रयोग किया जाता है। इन स्नानों का प्रारम्भ सदैव गर्म जल के तापक्रम वाले टब से होता है एवं स्नान की पूर्णता अथवा समाप्ति ठण्डे जल के टब से की जाती है। गर्म–ठण्डे जल के प्रभाव से रक्त संचार बहुत त्रीवता से बढता है जिसके परिणाम स्वरुप रोगी को रोग विशेष रुप से दर्द से शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। गर्म–ठण्डा कटि स्नान, गर्म–ठण्डा रीढ स्नान, गर्म–ठण्डा पैर स्नान इस वर्ग के प्रमुख स्नान हैं।

इस प्रकार स्नान के तीन वर्गो का ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त आपके मन में इन स्नानों के विषय में गहराई से जानने की इच्छा ओर अधिक बलवती हो गयी होगी। अतः अब इन स्नानों के विषय में सविस्तार विचार करते हैं एवं विषय का प्रारम्भ जल चिकित्सा में प्रयुक्त स्नानों के राजा अर्थात कटि स्नान से करते हैं –

## 2.4 कटि स्नान

प्रिय पाठकों, जर्मनी देश के लिपजिंग नामक स्थान के निवासी डॉ0 लुई कूने के नाम से आप अवश्य ही परिचित होगें। प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में डा0 लुई कूने इतने प्रसिद्ध चिकित्सक हुए कि कुछ विद्धान लुई कूने को आधुनिक जल चिकित्सा के जनक के रुप में स्वीकार करते हैं। लुई कूने अपनी चिकित्सा में कटि स्नान को विशेष महत्व देते हुए इसका अधिकतम प्रयोग करते थे इस कारण कटि स्नान को कूने के हिप बाथ के नाम से भी जाना जाता है। यह जल चिकित्सा का सबसे प्रमुख स्नान है। इस स्नान को स्नानों के राजा की पदवी भी प्राप्त है अर्थात प्राकृतिक चिकित्सा में कटि स्नान को स्नानों के राजा के नाम से भी जाना जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा प्रकृति के अनुकूल व्यवहार एवं प्रकृति के समीप रहने का उपदेश देती है। प्राकृतिक चिकित्सकों ने देखा कि गर्मी के समय में जंगली जीव जन्तु अपने उदर प्रदेश को ठण्डा बनाने के लिए उसे जल में डूबाकर रखते हैं एवं बिमारीयों से बचे रहते हैं। यहीं से कटि स्नान का जन्म हुआ। मानव के प्रमुख अंग जैसे आँते, यकृत, पैन्क्रियाज और वृक्क आदि उदर प्रदेश में स्थित होते हैं। अतः इन अंगों को स्वस्थ, सक्रिय एवं विषमुक्त बनाने के उद्देश्य से कटि स्नान को विकसित किया गया। कटि स्नान के तीन प्रकार होते हैं –

**(क) ठण्डा कटि स्नान :**

**आवश्यक सामग्री :** निश्चित तापक्रम का जल, कटि स्नान हेतु तैयार विशेष आकार का टब, पैर रखने के लिए फायबर अथवा लकडी की चौंकी आदि।

**जल का तापक्रम :** 55 डिग्री फे0 से 84 डिग्री फे0 तक।

**समयावधि :** 5 मिनट से प्रारम्भ करते हुए 20 मिनट तक।

**विधि :** कटि स्नान के लिये तैयार किये गये विशेष आकार के टब में जल भर देते है। तत्पश्चात् रोगी को टब में इस प्रकार बैठाते हैं कि रोगी के उदर प्रदेश का नाभि तक का भाग जल में डूब जाये। यदि रोगी को टब में बैठने से पूर्व ठंड की अनुभूति हो तो शरीर पर सूखी मालिश कर शरीर को हल्का गर्म कर रोगी को टब में बैठाना चाहिये। स्नान देते समय रोगी को ठंड अथवा कपकपी होने की अवस्था में रोगी के पैरों के नीचे 105 से 110 डिग्री फे0 की गर्म पानी की बोतल रख देनी चाहिए। टब में बैठाने के उपरान्त रोगी के दोनो पैर लकडी की चौकी पर रख देते है। तत् पश्चात् रोगी को छोटा रोयेदार तोलिया देकर नाभि के चारों ओर गोलाई में घर्षण अथवा मर्दन करने का र्निदेश देते हैं। निर्धारित समय अवधि पूर्ण होने पर रोगी को टब से निकाल कर गीले उदर प्रदेश को सूती तोलिया से अच्छी प्रकार पोछने के उपरान्त रोगी को कुछ समय भ्रमण का र्निदेश देते है।

**रोगों में लाभकारीः** कटि स्नान कब्ज रोग में लाभकारी प्रभाव रखता है। इस स्नान से आतों की लहरदार गतियां बढती है जिससे आँतों की क्रियाशीलता बढती है और कब्ज रोग दूर होता है। इसके साथ–साथ हायपर एसिडिटी (अम्लता), अल्सर, अर्जीण, भूख न लगना, मंदाग्नि, मधुमेह, पीलिया, आँतशोथ, ज्वर, वृक्क प्रदाह, नपुसंकता, श्वेत प्रदर, पेट की मांस पेशियों का लटक जाना, बांझपन आदि रोगों में लाभकारी प्रभाव पडता है। चूंकि इस स्नान से उदर की तंत्रिकाओं (नाडियों) की क्रियाशीलता बढती है अतः जो बच्चे बडे होकर भी बिस्तर में पेशाब करने के रोग से ग्रस्त रहते हैं उन्हें कटि स्नान देने से रोग में लाभ मिलता है।

**रोगों में निषेध अथवा सावधानियॉ :** कफ दोष की विकृत अवस्था में ठण्डा कटि स्नान नही देना चाहिए। सर्दी–जुकाम, अस्थमा, गठिया, निम्न रक्तचाप, सियाटिका दर्द एवं ह्रदय रोगी को ठण्डा कटि स्नान नही देना चाहिए।

**(ख) गर्म कटि स्नान :**

**आवश्यक सामग्री :** निश्चित तापक्रम का जल, कटि स्नान हेतु तैयार विशेष आकार का टब, पैर रखने के लिए लकडी की चौंकी आदि।

**जल का तापक्रम :** 100 से 104 डिग्री फेरेहनाइट।

**समयावधि :** 5 मिनट से प्रारम्भ करते हुए 20 मिनट तक।

**विधि :** पूर्व वर्णित विधिनुसार रोगी को स्नान देते हैं किन्तु गर्म कटि स्नान में रोगी को स्नान देने से पूर्व एक से दो गिलास जल पिलाने अनिवार्य रुप से पिलाकर ही स्नान देते हैं एंव स्नान काल में रोगी के सिर पर जल से भिगा तौलिया रखते हैं।

**रोगों में लाभकारीः** गर्म कटि स्नान पुराने मल का शोधन करने में अधिक सक्ष्म होता है अतः पुरानी कब्ज रोग में अधिक लाभकारी होता है। इसके प्रभाव से जठराग्नि बढती है एवं मंदाग्नि, अर्जीण, भूख न लगना, मधुमेह, पीलिया आदि पाचन तंत्र के रोगों में लाभकारी प्रभाव पडता है। गर्म कटि स्नान से पेट दर्द में शीघ्र लाभ मिलता है। इसके अतिरिक्त सूजन में भी इस स्नान से लाभ मिलता है।

**रोगों में निषेध अथवा सावधानियॉ** : पेट में घाव, अल्सर, अति अम्लता, बावासीर, दस्त एवं हैजा रोग में गर्म कटि स्नान पूर्ण रुप से निषेध रखना चाहिए। विशेष रुप से आँतो में घाव अथवा रक्त स्राव की अवस्था में गर्म कटि स्नान नही देना चाहिए।

**(ग) गर्म– ठण्डा कटि स्नान :**

**आवश्यक सामग्री :** दो निश्चित तापक्रम के जल, कटि स्नान हेतु तैयार विशेष आकार के दो टब, पैर रखने के लिए लकडी की चौंकी आदि।

**जल का तापक्रम :** एक टब में 55–84 डिग्री फे0 तक का जल एवं दूसरे टब में 100 से 104 डिग्री फे0 का जल ।

**समयावधि :** 15 मिनट से प्रारम्भ करते हुए 30 मिनट तक।

**विधि :** रोगी को स्नान देने से पूर्व एक से दो गिलास जल पिलाने के उपरान्त सिर पर जल से भिगा तौलिया रखकर तीन मिनट के लिए गर्म जल वाले टब में बैठा देते हैं। समयावधि पूरी होने पर रोगी को गर्म जल के टब से निकालकर दो मिनट के लिए ठण्डे जल वाले टब में बैठाते हैं। गर्म एवं ठण्डे जल के इस क्रम को तीन बार दोहराते हैं। स्नान को गर्म जल से प्रारम्भ करते हुए ठण्डे जल पर पूर्ण करते हैं।

**रोगों में लाभकारीः** गर्म ठण्डा कटि स्नान उदर प्रदेश में रक्त संचार में तेजी से वृद्धि करता है। इस स्नान के प्रभाव से पाचन तंत्र की क्रियाशीलता बहुत तेजी से बढती है। इसके प्रभाव से जठराग्नि बढती है एवं मधुमेह, पीलिया, यकृत विकार, पेट का मोटापा जैसे गंभीर रोगों में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है।

**रोगों में निषेध अथवा सावधानियॉ :**

गर्म–ठण्डा कटि स्नान एक अत्यन्त लाभकारी स्नान है किन्तु पेट में घाव, अल्सर, अति अम्लता, बावासीर, दस्त आदि रोग में गर्म ठण्डा कटि स्नान नही देना चाहिए।

## 2.5 रीढ स्नान

प्रिय पाठकों, रीढ मानव शरीर का मूल आधार अंग होता है जिसका सम्बन्ध कशेरुकाओं के साथ साथ विभिन्न नस नाडियों के साथ होता है। इस रीढ को स्वस्थ, सक्रिय एवं रोग मुक्त बनाने के उद्देश्य से रीढ स्नान का आविष्कार किया गया । इस स्नान के प्रभाव से

रीढ के विभिन्न रोग आसानी से दूर होते हैं एवं रीढ स्वस्थ व शक्तिशाली बनती है। कटि स्नान के समान रीढ स्नान के भी तीन प्रकार होते हैं –

**(क) ठण्डा रीढ स्नान :**

**आवश्यक सामग्री :** निश्चित तापक्रम का जल, रीढ स्नान हेतु तैयार विशेष आकार का टब, पैर रखने के लिए लकडी की चौंकी आदि।

**जल का तापक्रम :** 55 डिग्री फे0 से 84 डिग्री फे0 तक।

**समयावधि :** 5 मिनट से प्रारम्भ करते हुए 20 मिनट तक।

**विधि :** रीढ स्नान के लिये तैयार किये गये विशेष आकार के टब में जल भर देते है। तत्पश्चात् रोगी को टब में इस प्रकार लिटाते है कि रोगी की रीढ भलि प्रकार जल में डूब जाये एवं रोगी के हाथ–पैर एवं सिर जल से बाहर रहे। यदि रीढ स्नान लेते समय रोगी को ठण्डे जल के टब में बैठने में ठंड की अनुभूति हो तो शरीर पर सूखी मालिस कर शरीर को हल्का गर्म करते हुए स्नान देना चाहिये एवं टब में बैठाने के उपरान्त रोगी के दोनो पैर लकडी की चौकी पर रख देते है। रोगी को ठंड अथवा कपकपी होने की अवस्था में रोगी के पैरों के नीचे 105 से 110 डिग्री फे0 की गर्म पानी की बोतल रख देनी चाहिए। निर्धारित समय अवधि पूर्ण होने पर रोगी को टब से निकाल कर रीढ एवं कमर को सूती तोलिया से अच्छी प्रकार पोछने के उपरान्त रोगी को कुछ समय भ्रमण अथवा हल्के व्यवयाम करने का र्निदेश देते है।

**रोगों में लाभकारी:** ठण्डा रीढ स्नान रीढ के स्नायुओं एवं तंत्रिकाओं को बल प्रदान करता है। यह विशेष रुप से केन्द्रिय तंत्रिका तंत्र पर विशेष लाभकारी प्रभाव रखता है। इस स्नान से रीढ स्वस्थ एवं शक्तिशाली बनती है। इसके साथ–साथ शरीर में सुन्नपन, तंत्रिकाओं में सवेंदनहीनता, शरीर में आलस्य की अधिकता, भारीपन एवं अवसाद आदि रोगों में लाभकारी प्रभाव पडता है।

**रोगों में निषेध अथवा सावधानियॉं :** निम्न रक्तचाप, सियाटिका रोगी एवं गंभीर कमर दर्द रोगी को ठण्डा रीढ स्नान नही देना चाहिए।

**(ख) गर्म रीढ स्नान :**

**आवश्यक सामग्री :** निश्चित तापक्रम का जल, रीढ स्नान हेतु तैयार विशेष आकार का टब, पैर रखने के लिए लकडी की चौंकी आदि।

**जल का तापक्रम :** 100 से 104 डिग्री फेरेहनाइट।

**समयावधि :** 5 मिनट से प्रारम्भ करते हुए 20 मिनट तक।

**विधि :** ठण्डे रीढ स्नान में वर्णित विधिनुसार रोगी को गर्म रीढ स्नान देते हैं। गर्म रीढ स्नान में रोगी के लिए सहन करने योग्य गर्म तापक्रम का जल प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त गर्म रीढ स्नान में रोगी को स्नान देने से पूर्व एक से दो गिलास ठण्डा जल पिलाकर एवं सिर को ठंडे जल से भिगोकर (सिर पर जल से भिगा तौलिया रखकर) टब में बैठाना चाहिए।

**रोगों में लाभकारी:** गर्म रीढ स्नान रुके अथवा बाधित रक्त संचार को व्रीव बनाता है। इसीलिए कमर दर्द में गर्म रीढ स्नान देने से दर्द में आराम मिलता है। गर्म रीढ स्नान कमर दर्द के साथ साथ स्लिप डिस्क, सर्वाइकल, गठिया, आर्थाराइटिस तथा सियाटिका रोग में लाभकारी प्रभाव रखता है। गर्म रीढ स्नान अनिन्द्रा रोग में अत्यन्त लाभकारी प्रभाव रखता है।

**रोगों में निषेध अथवा सावधानियॉ** : उच्च रक्तचाप, मिर्गी, मानसिक तनाव एवं हृदय रोग से ग्रस्त रोगियों को यह स्नान नही देना चाहिए।

**(ग) गर्म– ठण्डा रीढ स्नान :**

**आवश्यक सामग्री :** दो निश्चित तापक्रम के जल, रीढ स्नान के लिए तैयार विशेष आकार के दो टब, पैर रखने के लिए लकडी की चौंकी आदि।

**जल का तापक्रम :** एक टब में 55–84 डिग्री फे0 तक का जल एवं दूसरे टब में 100 से 104 डिग्री फे0 का जल ।

**समयावधि :** 15 मिनट से प्रारम्भ करते हुए 30 मिनट तक।

**विधि :** रोगी को गर्म–ठण्डे कटि स्नान में वर्णित विधिनुसार स्नान देना चाहिए।

**रोगों में लाभकारी:** गर्म ठण्डा रीढ स्नान पृष्ट प्रदेश (कमर क्षेत्र) में रक्त संचार बढाता है। इससे कमर की मॉसपेशियों के दर्द में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। इस स्नान के प्रभाव से रीढ का स्नायु मण्डल उत्तेजित एवं सक्रिय होता है। अतः स्नायु तंत्र के रोगों जैसे सुन्नपन, झनझनाहट, लकवा आदि रोगों में इस स्नान से लाभ प्राप्त होता है।

**रोगों में निषेध अथवा सावधानियॉ :**

गर्म–ठण्डा रीढ स्नान रीढ के लिए एक लाभकारी स्नान है किन्तु स्नायु विकृतियों की व्रीव अवस्था में इस स्नान को नही अथवा अत्यन्त सावधानीपूर्वक एवं चिकित्सक की देखरेख में ही देना चाहिए।

## 2.6 पाद स्नान

जिज्ञासु पाठकों, पैर मानव शरीर के अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग हैं जिन्हे स्वस्थ बनाने के लिए जल चिकित्सा में पाद स्नान का उल्लेख किया गया है। पाद स्नान का उद्देश्य पैरों को रोगरहित, स्वस्थ एवं सक्रिय बनाना होता है। पाद स्नान के भी तीन प्रकार होते हैं –

**(क) ठण्डा पाद स्नान :**

**आवश्यक सामग्री :** निश्चित तापक्रम का जल, बैठने के लिए स्टूल एवं पाद स्नान हेतु तैयार विशेष आकार का टब आदि।

**जल का तापक्रम :** 45 डिग्री फे0 से 60 डिग्री फे0 तक।

**समयावधि :** 5 मिनट से प्रारम्भ करते हुए 20 मिनट तक।

**विधि :** पाद स्नान के लिये तैयार किये गये विशेष आकार के टब में इतना जल भर देते है कि रोगी के घुटनों तक के पैर जल में भलि प्रकार डूब जाए। तत्पश्चात् रोगी को स्टूल अथवा कुर्सी पर इस प्रकार बैठाते हैं कि रोगी के घुटनों तक पैर जल में डूब जाए। निर्धारित समय अवधि पूर्ण होने पर रोगी के पैरों को टब से निकाल कर एवं सूती तौलिया से अच्छी प्रकार पोंछकर रोगी को कुछ समय भ्रमण अथवा हल्के व्यवयाम करने का र्निदेश देते हैं।

**रोगों में लाभकारीः** ठण्डा पाद स्नान पैरों की मॉसपेशियों को स्वस्थ एवं सक्रिय बनाता है। इस स्नान से पैरों की कमजोरी, कम्पन, फुटन, जलन आदि रोगों में लाभ प्राप्त होता है। पैरों के तलवों के गर्म रहने की अवस्था में भी यह स्नान देने से लाभ मिलता है। ठंडे पाद स्नान से मानसिक तनाव दूर होता है एवं मस्तिष्क को आराम मिलता है। महिलाओं में अतिरिक्त रक्तस्राव होने की अवस्था में भी यह स्नान लाभकारी प्रभाव रखता है।

**रोगों में निषेध अथवा सावधानियॉ :** पैरों के पँजों में सूजन एवं दर्द की ़्रीव अवस्था एवं सियााटिका रोगी को ठण्डा पैर स्नान नही देना चाहिए। फेफडों में संक्रमण, प्रदाह एवं संकुचन की अवस्था में भी यह स्नान निषेध है एवं महिलाओं को सामान्य ऋतुकाल में यह स्नान नही देना चाहिए।

**(ख) गर्म पाद स्नान :**

**आवश्यक सामग्री :** निश्चित तापक्रम का जल, बैठने के लिए स्टूल अथवा कुर्सी एवं पाद स्नान हेतु तैयार विशेष आकार का टब, ऊनी कम्बल, छोटे–बडे तौलिया आदि।

**जल का तापक्रम :** 110 से 120 डिग्री फेरेहनाइट।

**समयावधि :** 5 मिनट से प्रारम्भ करते हुए 20 मिनट तक।

**विधि :** ठण्डे पाद स्नान की भाति रोगी को गर्म पाद स्नान देते हैं। गर्म पाद स्नान में रोगी के पैरों को सहनीय गर्म तापक्रम के जल में डूबोते हैं। जल ठंडा होने पर पुनः अधिक तापक्रम का गर्म जल मिलाकर प्रयुक्त जल के तापक्रम को स्थिर बनाए रखते हैं। गर्म पाद स्नान में रोगी को स्नान देने से पूर्व एक से दो गिलास ठण्डा जल अनिवार्य रुप से पिलाकर एवं सिर को ठंडे जल से भिगोकर (सिर पर जल से भिगा तौलिया रखकर) ही पैरों को टब में डूबोते है। रोगी के पैरों को जल में डूबोने के उपरान्त रोगी को ऊपर से ऊनी कम्बल से इस प्रकार ढक देते है कि रोगी के शरीर पर बाहर की ठंडी हवा नही लग सके। रोगी के शरीर पर अच्छी प्रकार पसीना आने पर अथवा समयावधि पूर्ण होने पर रोगी के पैरों को जल से बाहर निकालकर ठंडे जल से धोकर रोगी को आराम कराते हैं।

**रोगों में लाभकारीः** गर्म पाद स्नान रुके अथवा बाधित रक्त संचार को त्रीव बनाता है इसीलिए इस स्नान के प्रभाव से पैर की एडी एवं पँजों में दर्द, सूजन एवं जकडन में आराम मिलता है। गर्म पाद स्नान फेफडों एवं श्वास नलिका सहित सम्पूर्ण श्वसन तंत्र पर सीधा सकारात्मक प्रभाव डालता है। लम्बी खाँसी में गर्म पाद स्नान से तुरन्त लाभ प्राप्त होता है। इसके साथ साथ उच्च रक्तचाप, सर्दी, जुकाम, बुखार, नाक बहना, सिर दर्द एवं महिलाओं में कष्टयुक्त मासिक धर्म में इस स्नान से लाभ प्राप्त होता है।

**रोगों में निषेध अथवा सावधानियॉं** : पैरों में जलन, पैरों के गर्म रहने एवं पैरों में अधिक पसीना बाने की अवस्था में यह स्नान नही देना चाहिए।

**(ग) गर्म– ठण्डा पाद स्नान :**

**आवश्यक सामग्री :** निश्चित तापक्रम का जल, बैठने के लिए स्टूल अथवा कुर्सी एवं पाद स्नान हेतु तैयार विशेष आकार का टब, ऊनी कम्बल, छोटे–बडे तौलिया आदि।

**जल का तापक्रम :** एक टब में 45–60 डिग्री फे0 तक का जल एवं दूसरे टब में 110 से 120 डिग्री फे0 का जल ।

**समयावधि :** 15 मिनट से प्रारम्भ करते हुए 30 मिनट तक।

**विधि :** रोगी को पूर्व वर्णित गर्म–ठण्डे कटि स्नान में वर्णित विधिनुसार स्नान देना चाहिए।

**रोगों में लाभकारीः** गर्म ठण्डा पाद स्नान पैरों में स्थित नाडियों के माध्यम से मस्तिष्क को प्रभावित करता है। इस स्नान के प्रभाव से मास्तिष्क की कार्य कुशलता एवं सक्रियता बढती है एवं सिर दर्द रोग में आराम मिलता है। पैरों में सूजन, पैर की हड्डी में विकार एवं दर्द, गैंग्रीन रोग, पँजे में दर्द, सूजन, सुन्नपन एवं झनझनाहट आदि रोगों में इस स्नान से लाभ प्राप्त होता है।

**रोगों में निषेध अथवा सावधानियॉं :**

गर्म–ठण्डा पाद स्नान उच्च रक्तचाप, मिर्गी एवं मानसिक तनाव की त्रीव अवस्था से ग्रस्त रोगी को नही अथवा अत्यन्त सावधानीपूर्वक एवं चिकित्सक की देखरेख में ही देना चाहिए।

## 2.7 बॉह स्नान

प्रिय पाठकों, जिस प्रकार पैरों को स्वस्थ बनाने के लिए पाद स्नान का वर्णन जल चिकित्सा के अन्तर्गत किया गया है ठीक इसी प्रकार हाथों को स्वस्थ एवं रोग रहित बनाने

के लिए बॉह स्नान का वर्णन जल चिकित्सा में किया जाता है। बॉह स्नान के भी तीन प्रकार होते हैं –

**(क) ठण्डा बॉह स्नान :**

**आवश्यक सामग्री :** निश्चित तापक्रम का जल, बैठने के लिए स्टूल अथवा कुर्सी एवं बॉह स्नान हेतु तैयार विशेष आकार का टब आदि।

**जल का तापक्रम :** 45 डिग्री फे0 से 60 डिग्री फे0 तक।

**समयावधि :** 5 मिनट से प्रारम्भ करते हुए 20 मिनट तक।

**विधि :** बॉह स्नान के लिये तैयार किये गये विशेष आकार के टब में जल भरकर रोगी को स्टूल अथवा कुर्सी पर इस प्रकार बैठाते हैं कि रोगी के कन्धों तक दोनों हाथ जल में डूब जाए। निर्धारित समय अवधि पूर्ण होने पर रोगी के हाथों को टब से निकाल कर सूती तौलिया से अच्छी प्रकार पोंछकर रोगी को कुछ समय भ्रमण अथवा हल्के व्यवयाम करने का निंदेश देते हैं।

**रोगों में लाभकारी:** ठण्डा बॉह स्नान हाथों की मॉसपेशियों को स्वस्थ एवं सक्रिय बनाता है। इस स्नान से कन्धों से हाथों में जाने वाली तंत्रिकाओं को बल मिलता है एवं हाथों में कम्पन, फुटन, जलन आदि रोगों में लाभ प्राप्त होता है। यह स्नान हृदय की मांसपेशी के बल प्रदान करता है। अल्सर रोगी के लिए भी लाभकारी स्नान है।

**रोगों में निषेध अथवा सावधानियॉ :** हाथों में सूजन एवं दर्द की त्रीव अवस्था एवं गठिया व आर्थाराइटिस रोगी को ठण्डा बॉह स्नान नही देना चाहिए। जाडों के समय में यह स्नान अधिक समय तक नही देना चाहिए।

**(ख) गर्म बॉह स्नान :**

**आवश्यक सामग्री :** निश्चित तापक्रम का जल, बैठने के लिए कुर्सी एवं बॉह स्नान हेतु तैयार विशेष आकार का टब, ऊनी कम्बल, छोटे–बडे तौलिया आदि।

**जल का तापक्रम :** 100 से 110 डिग्री फेरेहनाइट।

**समयावधि :** 5 मिनट से प्रारम्भ करते हुए 15 मिनट तक।

**विधि :** ठण्डे बॉह स्नान की भांति रोगी को गर्म बॉह स्नान देते हैं। गर्म बॉह स्नान में ठंडे जल के स्थान पर रोगी के सहन करने योग्य गर्म तापक्रम के जल का प्रयोग करते हैं। गर्म बॉह स्नान में रोगी को स्नान देने से पूर्व एक से दो गिलास ठण्डा जल अनिवार्य रुप से पिलाकर एवं सिर को ठंडे जल से भिगोकर (सिर पर जल से भिगा तौलिया रखकर) ही हाथों को टब में डूबोते है। रोगी के हाथों को जल में डूबोने के उपरान्त रोगी के शरीर को ऊनी कम्बल से अच्छी प्रकार ढक देते हैं। इस प्रकार स्नान काल में रोगी के शरीर पर अच्छी प्रकार पसीना आने पर अथवा समयावधि पूर्ण होने पर रोगी के हाथों को जल से

बाहर निकालकर ठंडे जल से धोकर एवं सूती तौलिया से पोंछकर रोगी को आराम कराते हैं।

**रोगों में लाभकारीः** गर्म बॉह स्नान देने से हाथों में रक्त संचार को त्रीव बनाता है जिसके प्रभाव से हाथों में दर्द, सूजन एवं जकडन में आराम मिलता है। इस स्नान के प्रभाव से हृदय एवं फेफडों को आराम मिलता है एवं इन अंगों से सम्बन्धित रोग दूर होते हैं। यह स्नान सर्दी, खाँसी, अस्थमा, ब्रोंकाइटिस, सायनोसाइटिस, न्यूमोनिया एवं टी0 बी0 रोगी के लिए लाभकारी होता है। इस स्नान के प्रभाव से डायस्टोलिक बी0 पी0 भी कम होता है।

**रोगों में निषेध अथवा सावधानियॉ** : अल्सर, वमन एवं हृदय रोगी को यह स्नान नही देना चाहिए। गर्म बॉह स्नान 15 मिनट से अधिक विशेष परिस्थितियों में ही देना चाहिए।

**(ग) गर्म– ठण्डा बॉह स्नान :**

**आवश्यक सामग्री :** निश्चित तापक्रम का जल, बैठने के लिए स्टूल अथवा कुर्सी एवं पाद स्नान हेतु तैयार विशेष आकार का टब, ऊनी कम्बल, छोटे–बडे तौलिया आदि।

**जल का तापक्रम :** एक टब में 50–60 डिग्री फे0 तक का जल एवं दूसरे टब में 100–110 डिग्री फे0 का जल ।

**समयावधि :** 15 मिनट से प्रारम्भ करते हुए 30 मिनट तक।

**विधि :** रोगी को पूर्व वर्णित गर्म–ठण्डे कटि स्नान में वर्णित विधिनुसार स्नान देना चाहिए।

**रोगों में लाभकारीः** गर्म–ठण्डा बॉह स्नान रक्त संचार को तेजी से बढाता है जिसके परिणामस्वरुप हाथों में दर्द, सुन्नपन, झनझनाहट एवं कम्पन आदि रोगों में आराम मिलता है। कन्धों की जकडन दूर होती है एवं फ्रोजन सोल्डर रोग में आराम मिलता है।

**रोगों में निषेध अथवा सावधानियॉ :**

गर्म–ठण्डा बॉह स्नान उच्च रक्तचाप, मिर्गी एवं मानसिक तनाव की त्रीव अवस्था से ग्रस्त रोगी को नही देना चाहिए।

## 2.8 पूर्ण डूब स्नान

प्रिय पाठकों, इस स्नान को फूल इर्मजन बाथ के नाम से भी जाना जाता है। इस स्नान के नाम से ही इसके स्वरुप का ज्ञान होता है। इसमें सम्पूर्ण शरीर को जल में डूबाकर स्नान किया जाता है। पूर्ण डूब स्नान के भी तीन प्रकार होते हैं –

**(क) ठण्डा डूब स्नान :**

**आवश्यक सामग्री :** ठंडा अथवा निश्चित तापक्रम का जल, मानव शरीर की लम्बाई का पूर्ण स्नान हेतु तैयार विशेष टब, रोयेंदार तौलिया आदि।

**जल का तापक्रम :** 55 डिग्री फे0 से 65 डिग्री फे0 तक।

**समयावधि :** 20 मिनट अधिक रोगी की स्थिति एवं आवश्यक्तानुसार।

**विधि :** पूर्ण डूब स्नान के लिये तैयार किये गये शरीर के लम्बाई के बराबर विशेष आकार के टब में जल भरकर रोगी को लिटा देते हैं। टब में रोगी को इस प्रकार लिटाते है कि रोगी के गर्दन के अतिरिक्त सम्पूर्ण शरीर जल में भलि भांति डूब जाता है। निर्धारित समय अवधि पूर्ण होने पर रोगी को टब से निकाल कर सम्पूर्ण शरीर को सूती तौलिया से अच्छी प्रकार पोंछकर रोगी को कुछ समय भ्रमण अथवा हल्के व्यवयाम करने का निंदेश देते हैं।

**रोगों में लाभकारीः** ठण्डा पूर्ण स्नान से सम्पूर्ण शरीर से विषाक्त पदार्थ बाहर निकलते हैं एवं तंत्रिकाओं को बल मिलता है। शराब आदि दुर्व्यसनों से ग्रस्त रोगियों के लिए यह सर्वाधिक लाभकारी स्नान है। यह स्नान विभिन्न प्रकार के त्वचा रोगों, जीर्ण उदर रोगों, वृक्क से सम्बन्धित विकारों एवं आमाश्य से सम्बन्धी रोगों में लाभ प्रदान करता है। इस स्नान के प्रभाव से मोटापा दूर होता है एवं हृदय स्वस्थ व सक्रिय बनता है। अनिन्द्रा रोग में लाभकारी स्नान है।

**रोगों में निषेध अथवा सावधानियॉ :** मूत्र विकारों में यह स्नान नही देना चाहिए। वृद्ध एवं कमजोर रोगियों एवं महिलाओं को गर्भावस्था में को यह स्नान नही देना चाहिए।

**(ख) गर्म डूब स्नान :**

**आवश्यक सामग्री :** गुनगुने अथवा गर्म तापक्रम का जल, मानव शरीर की लम्बाई का पूर्ण स्नान हेतु तैयार विशेष टब, रोयेंदार तौलिया आदि।

**जल का तापक्रम :** 92 डिग्री फे0 से 106 डिग्री फे0 तक।

**समयावधि :** 10 से 20 मिनट।

**विधि :** गर्म डूब स्नान के लिये रोगी को एक से दो गिलास जल पिलाकर सिर पर ठंडे जल से भीगा तौलिया रखकर टब में उपरोक्त तापक्रम का जल भरकर रोगी को लिटा देते हैं। टब में रोगी को इस प्रकार लिटाते है कि रोगी के गर्दन के अतिरिक्त सम्पूर्ण शरीर जल में भलि भांति डूब जाता है। निर्धारित समय अवधि पूर्ण होने पर रोगी को टब से निकाल कर ठंडे जल से स्नान कराकर एवं सम्पूर्ण शरीर को सूती तौलिया से अच्छी प्रकार पोंछकर रोगी को आराम करने का निंदेश देते हैं।

**रोगों में लाभकारीः** गर्म पूर्ण स्नान से शरीर की मॉसपेशियों का कडापन दूर होता है एवं शरीर में लचीलेपन का विस्तार होता है। वात विकारों जैसे गठिया आदि रोगों में यह लाभकारी स्नान है। इस स्नान से मोटापा दूर होता है।

**रोगों में निषेध अथवा सावधानियॉ :** मस्तिष्क विकारों, रक्त वाहीनियों में अवरोध, उच्च रक्तचाप, मानसिक तनाव से ग्रस्त एवं ह्रदय रोगियों को यह स्नान नही देना चाहिए। स्नान के मध्य में घबराहट, बैचेनी अथवा रोगी को असहज अनुभव होने पर रोगी को टब से निकालकर ठंडे जल से स्नान कराकर आराम कराना चाहिए।

**(ग) गर्म– ठण्डा डूब स्नान :**

**आवश्य क सामग्री :** निश्चित तापक्रम का जल, मानव शरीर की लम्बाई का पूर्ण स्नान हेतु तैयार विशेष टब, रोयेंदार तौलिया आदि।

**जल का तापक्रम :** 98 डिग्री फे0 से कम करते हुए 85 डिग्री फे0 तक।

**समयावधि :** 20 मिनट ।

**विधि :** रोगी को एक से दो गिलास जल पिलाकर सिर पर ठंडे जल से भीगा तौलिया रखकर 98 डिग्री फे0 तापक्रम के जल से भरे टब में लिटा देते हैं। पाँच मिनट के उपरान्त टब में जल का तापक्रम कम करना प्रारम्भ करते हैं। पुनः पाँच मिनट के उपरान्त जल का तापक्रम फिर कम करते हैं। इस प्रकार जल का तापक्रम कम करते हुए अंत में 85 डिग्री फे0 तक का तापक्रम होने पर रोगी को जल से निकलने का निर्देश देते हैं। तत्पचात रोगी के शरीर को सूती तौलिया से अच्छी प्रकार पोंछकर रोगी को भ्रमण अथवा हल्के आसन कराते हैं।

**रोगों में लाभकारीः** यह स्नान ज्वर रोग में लाभकारी है। विशेष रुप से टॉयफाइड बुखार में इस स्नान से रोगी को शीघ्र एवं स्थाई लाभ मिलता है।

**रोगों में निषेध अथवा सावधानियॉ :** वात रोगियों जिसमे प्रमुख रुप से गठिया एवं आर्थाराइटिस रोगियों का वर्णन आता है, को यह स्नान नही देना चाहिए।

## 2.9 घर्षण मेहन स्नान

प्रिय पाठकों, इस स्नान का सीधा सम्बन्ध प्रजनन इन्द्रिय से है अतः इस स्नान को इन्द्रिय स्नान, शिश्न स्नान, घर्षण मेहन स्नान एवं स्टिज बाथ आदि नामों से जाना जाता है। इस स्नान का प्रयोग डॉ0 लुई कूने द्वारा किया गया अतः डॉ0 लुई कूने को इस स्नान का जनक माना जाता है। घर्षण मेहन स्नान की विधि इस प्रकार है –

**आवश्यक सामग्री :** ठण्डे तापक्रम का जल, कटि स्नान टब, मेहन स्नान हेतु तैयार विशेष स्टूल, रोयेंदार तौलिया आदि।

**जल का तापक्रम :** 50 डिग्री फे0 से 60 डिग्री फे0 तक।

**समयावधि :** 5 मिनट से 20 मिनट तक।

**विधि :** कटि स्नान टब में मेहन स्नान के लिये तैयार किये गये विशेष आकार के स्टूल को रखकर रोगी को स्टूल पर बैठने का निर्देश देते हैं। तत्पश्चात शीतल जल से भरे जग में एक मुलायम सूती रोयेंदार तौलिया भीगाकर रोगी को दे देते हैं। इस स्नान में रोगी उपरोक्त स्टूल पर बैठकर अपनी प्रजनन इन्द्रिय के अग्र भाग का उक्त जल से भीगे रोगयेंदार तौलिया से घर्षण करता है।

**रोगों में लाभकारीः** प्रजनन इन्द्रिय का अग्र भाग अत्यन्त सवेंदनशील होता है एवं इस भाग में ऐसी संवेदन नाडिया स्थित होती हैं जिनका सम्बन्ध सीधा मेरुदण्ड एवं मस्तिष्क के साथ होता है। इस स्नान के माध्यम से इन स्नायु नाडियों का शोधन करने से अनेक प्रकार के मानसिक एवं तंत्रिका तंत्र से सम्बन्धित रोगों का उपचार होता है। इस स्नान के प्रभाव से

स्नायु मण्डल के विषाक्त तत्व बाहर निकलते हैं जिसके परिणाम स्वरुप स्नायु मण्डल स्वस्थ, सकिय एवं रोगरहित बनता है।

**रोगों में निषेध अथवा सावधानियॉं :** महिलाओं को मासिक स्राव काल में यह स्नान नही लेना चाहिए। यह स्नान स्वस्थ व्यक्तियों की तुलना में रोगी व्यक्तियों को अधिक लाभकारी प्रभाव रखता है।

## 2.10 भाप स्नान

जिज्ञासु पाठकों, भाप स्नान जल चिकित्सा का एक अत्यन्त प्रमुख एवं विशिष्ट अंग है। हिपोक्रेटीज, जिन्हे प्राकृतिक चिकित्सा का जनक कहा जाता है, अपने रोगियों को ठीक करने के लिए स्थानीय भाप का प्रयोग अपनी चिकित्सा में करते थे। इसके साथ साथ प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक डॉ0 लुई कूने द्वारा भी विभिन्न रोगों के उपचार में भाप स्नान का प्रयोग किया गया। वर्तमान समय में जल चिकित्सा के अन्तर्गत भाप स्नान सर्वाधिक प्रचलित स्नान है। दूसरे शब्दों में जल चिकित्सा के प्रचार प्रसार में भाप स्नान ने एक महत्वपूर्ण भूमिका वहन की है। भाप स्नान के लाभों से प्रभावित होकर जल चिकित्सा से जुडने वाले रोगियों एवं अन्य व्यक्तियों की संख्या दिन प्रतिदिन बढती जा रही है। भाप स्नान का वर्णन इस प्रकार है –

**आवश्यक सामग्री :** निश्चित तापकम का जल, भाप स्नान हेतु तैयार विशेष आकार का चैम्बर, छोटे–बडे रोयेंदार तौलिया, बाल्टी एवं जग आदि।

**जल का तापकम :** 55 डिग्री फे0 से 65 डिग्री फे0 का जल एवं भाप।

**समयावधि :** 5 मिनट से प्रारम्भ करते हुए 20 मिनट तक।

**विधि :** भाप स्नान के लिये एक विशेष प्रकार का चैम्बर अथवा कैबिन होता है जिसे रोगी के बैठने से पूर्व अच्छी प्रकार भाप से भर देते हैं। यह भाप चैम्बर से बाहर प्रेशर कूकर

अथाव इलैक्ट्रोनिक केतली में तैयार होने के उपरान्त पाईप के द्वारा स्टीम बाथ चैम्बर में लाई जाती है। अब रोगी को दो से चार गिलास ठंडा अथवा गुनगुना जल पिलाकर, सिर का ठंडे जल में भिगाकर एवं कपडे उतरावाकर चैम्बर में बैठा देते हैं। रोगी को चैम्बर में रखे स्टूल पर इस प्रकार बैठाते हैं कि रोगी की गर्दन चैम्बर से बाहर रहती है एवं अन्य पूरा शरीर चैम्बर के अन्दर बंद हो जाता है। अब चैम्बर को इस प्रकार बंद करते हैं कि चैम्बर की भाप बाहर नही आ सके तथा रोगी के सिर पर ठंडे जल से भिगा छोटा तौलिया रख देते हैं। रोगी के इस प्रकार बैठने के चैम्बर में भरी भाप उसके पूरे शरीर पर पडती है जिससे शरीर में तेजी से पसीना उत्पन्न होता है, इस अवस्था में रोगी को सम्पूर्ण शरीर पर हल्के हाथों से मर्दन करने का निर्देश देते हैं। रोगी के सिर पर रखा गिला तौलिया गर्म होने पर पुनः ठंडे जल में भिगोकर उसके सिर पर रखते हैं। जब रोगी के माथे पर भी हल्की हल्की पसीने की बूँदे दिखलाई देने लगे तब भाप स्नान को पूर्ण समझ लेना चाहिए अथवा समयावधि पूर्ण होने पर रोगी को चैम्बर से निकालकर ठंडे जल के शावर (फुव्वारे) में अच्छी प्रकार स्नान कराना चाहिए। रोगी को ठंडे जल में उस समय तक स्नान करानी चाहिए जब तक कि भाप स्नान का बाह्य ताप सामान्य स्थिति में नही आ जाए। रोगी के शरीर की सामान्य अवस्था होने पर उसे शरीर को सूती तौलिये से अच्छी प्रकार शरीर पोंछकर आराम करने की सलाह देते हैं।

**रोगों में लाभकारीः** भाप स्नान शरीर शोधन की अत्यन्त लाभकारी एवं प्रभावशाली क्रिया है। इस स्नान के प्रभाव से शरीर में स्थित विषाक्त तत्व पसीने के रुप में शरीर से बाहर निकलते हैं। यह स्नान त्वचा के नीचे स्थित वसा कम करता है जिससे मोटापा रोग दूर होता है एवं त्वचा के नीचे बनी गाठें बनने की अवस्था में भाप स्नान से शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। भाप स्नान से स्वेद ग्रन्थियों की कियाशीलता बढती है एवं विभिन्न प्रकार के त्वचा रोगों जैसे ल्यूकोर्डमा एवं सोरायसिस आदि में आराम मिलता है। इसके साथ–साथ गठिया, आर्थाराइटिस, अस्थमा, ब्रोन्काइटिस, टॉसिल्स, पीलिया, मधुमेह, अतिअम्लता, बुखार, मलेरिया तथा एलर्जी, आदि रोगों में भाप स्नान लाभकारी प्रभाव रखता है। यह स्नान शरीर की त्वचा में स्थित तंत्रिकाओं (नाडियों) की क्रियाशीलता बढता है जिससे सुन्नपन एवं शिथिलता रोग में आराम मिलता है। शरीर का वजन कम करने में भाप स्नान विशेष लाभकारी प्रभाव रखता है।

**रोगों में निषेध अथवा सावधानियॉ :** उच्च रक्तचाप, निम्न रक्तचाप, चक्कर आना, मिर्गी के दौरों से ग्रस्त रोगी, रक्तहीनता, हृदय रोगी, अधिक कमजोर एवं वृद्धावस्था में यह स्नान नही देना चाहिए। मानसिक तनाव से ग्रस्त रोगी को भी यह स्नान नही देना चाहिए। महिलाओं को मासिक रक्तस्राव की अवस्था में एवं गर्भावस्था में भाप स्नान नही देना चाहिए।

इस प्रकार जल चिकित्सा के अन्तर्गत उपरोक्त स्नानों के द्वारा विभिन्न रोगों का उपचार किया जाता है।

**अभ्यास हेतु प्रश्न –**

1– **सत्य/ असत्य**

**(क)** कटि स्नान को कूने के हिप बाथ के नाम से भी जाना जाता है।

**(ख)** गर्म–ठण्डे जल के स्नान का प्रारम्भ सदैव ठण्डे जल से एवं पूर्णता गर्म जल के टब से की जाती है।

**(ग)** गर्म कटि स्नान से पूर्व रोगी को पानी नही पिलाना चाहिए।

**(घ)** गर्म बॉह स्नान 15 मिनट से अधिक विशेष परिस्थितियों में ही देना चाहिए।
**(ड)** शरीर का वजन कम करने में मेहन स्नान विशेष लाभकारी प्रभाव रखता है।

**2– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :**

**(क)** –––––– स्नान फेफडों एवं श्वास नलिका सहित सम्पूर्ण श्वसन तंत्र पर सीधा सकारात्मक प्रभाव डालता है।
**(ख)** ठंडा रीढ स्नान विशेष रुप से ––––– तंत्रिका तंत्र पर विशेष लाभकारी प्रभाव रखता है।
**(ग)** ––––– स्नान अनिन्द्रा रोग में अत्यन्त लाभकारी प्रभाव रखता है।
**(घ)** महिलाओं में अतिरिक्त रक्तस्राव होने की अवस्था में –––––– स्नान लाभकारी प्रभाव रखता है।
**(ड)** वर्तमान समय में जल चिकित्सा के अन्तर्गत –––––– सर्वाधिक प्रचलित स्नान है।

3– **एक शब्द में उत्तर दीजिए –**

**(क)** मानव शरीर का सामान्य रुप से तापक्रम कितना होता है ?
**(ख)** आँतो में घाव अथवा रक्त स्राव की अवस्था में कौन सा स्नान नही देना चाहिए ?
**(ग)** लम्बी खाँसी में किस स्नान से तुरन्त लाभ प्राप्त होता है ?
**(घ)** टॉयफाइड बुखार में किस स्नान से रोगी को शीघ्र एवं स्थाई लाभ मिलता है ?
**(ड)** इन्द्रिय स्नान के नाम से किस स्नान को जाना जाता है ?

**4–बहुविकल्पीय प्रश्न –**

**(क)** जल चिकित्सा में किस स्नान को स्नानों का राजा कहा जाता है –
(a) कटि स्नान (b) रीढ स्नान
(c) मेहन स्नान (d) भाप स्नान ।

**(ख)** निम्न में से अधिक प्रभावशाली स्नान कौन से होते हैं –
(a) गर्म जल स्नान (b) ठण्डा जल स्नान
(c) गर्म–ठण्डा जल स्नान (d) ठण्डा–गर्म जल स्नान।

**(ग)** स्नायु मण्डल के विषाक्त तत्वों को बाहर निकलने में सर्वाधिक प्रभावी स्नान है –
(a) मेहन स्नान (b) कटि स्नान
(c) भाप स्नान (d) पाद स्नान ।

**(घ)** त्वचा के नीचे बनी गाठें एवं मोटापा रोग में किस स्नान से शीघ्र एवं प्रभावी लाभ प्राप्त होता है –
(a) कटि स्नान (b) रीढ स्नान
(c) मेहन स्नान (d) भाप स्नान ।

**(ड)** शराब आदि दुर्व्यसनों से ग्रस्त रोगियों के लिए सर्वाधिक लाभकारी स्नान है –
(a) रीढ स्नान (b) कटि स्नान
(c) पूर्ण स्नान (d) पाद स्नान ।

## 2.11 सारांश–

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपको जल चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न स्नानों का परिचय प्राप्त होने के साथ साथ इनकी विधि, लाभ एवं सावधानियों का

ज्ञान हुआ होगा। इकाई का प्रारम्भ स्नानों के तीन प्रकारों – ठंडा, गर्म एवं गर्म–ठंडा को स्पष्ट करने से किया गया है। तत्पश्चात स्नानों को समझाते हुए जल चिकित्सा में स्नानों के राजा अर्थात कटि स्नान से प्रारम्भ किया गया है। इकाई में कटि स्नान के तीनों प्रकारों – ठंडा, गर्म एवं गर्म–ठंडे की विधि, रोगों में लाभकारी प्रभावों एवं सावधानियों पर प्रकाश डाला गया है। इकाई में आगे शरीर के मूल आधार अंग अर्थात रीढ को स्वस्थ, सक्रिय एवं रोगमुक्त बनाने वाले रीढ स्नान पर प्रकाश डाला गया है। कटि स्नान के समान रीढ स्नान के भी तीन प्रकारों का वर्णन करते हुए इनकी विधि, रोगों में लाभकारी प्रभाव एवं प्रमुख सावधनियों अथवा रोगों में निषेध को समझाया गया है। तत्पश्चात क्रमशः पैरों एवं हाथों को स्वस्थ बनाने वाले पाद स्नान एवं बॉह स्नान को वर्णित किया गया है।

इकाई में आगे फूल इमर्जन बाथ अर्थात पूर्ण डूब स्नान के तीन प्रकारों पर प्रकाश डालते हुए मेहन स्नान को समझाया गया है। मेहन स्नान जिसे इन्द्रिय स्नान भी कहा जाता है, शरीर की इन्द्रियों के विषों को बाहर निकालने के साथ साथ इन्द्रियों को स्वस्थ, सक्रिय एवं रोग मुक्त बनाता है। इकाई के अंत में जल चिकित्सा को सफलता की ऊचाईयों तक पहुचाने में महत्वपूर्ण भूमिका वहन करने वाले भाप स्नान को वर्णित किया गया है तथा भाप स्नान की विधि, रोगों में लाभकारी प्रभाव एवं रोगों में निषेध अथवा सावधनियों को समझाते हुए इकाई को पूर्ण किया गया है। इस प्रकार प्रस्तुत इकाई में जल चिकित्सा में प्रयुक्त विविध स्नानों को स्पष्ट किया गया है।

## 2.12 पारिभाषिक शब्दावली–

| | |
|---|---|
| फेरेहनाइट | तापक्रम को नापने की इकाई |
| उदर प्रदेश | पेट का क्षेत्र |
| अनुभूति | ज्ञान, अनुभव |
| मर्दन | मालिश |
| ऑंतशोथ | ऑंतों में सूजन |
| दुर्व्यसन | गन्दी आदत पडना |
| चैम्बर | फाइबर अथवा लकडी का बना बाक्स |
| प्रदाह | जलन |

## 2.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

| | | |
|---|---|---|
| क. सत्य | क. गर्म पाद | क. 98.4 डिग्री फेरेहनाइट |
| क. a | | |
| ख. असत्य | ख. केन्द्रिय | ख. गर्म कटि |
| ख. c | | |
| ग. असत्य | ग. गर्म रीढ | ग. पाद स्नान |
| ग. a | | |
| घ. सत्य | घ. ठण्डा पाद | घ. गर्म–ठण्डा डूब स्नान |
| घ. d | | |
| ड. असत्य | ड. भाप स्नान | ड. मेहन स्नान |
| ड. c | | |

## 2.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची

7. प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – डॉ0 राकेश जिन्दल, आरोग्य सेवा प्रकाशन, मोदी नगर (उ0प्र0) ।
8. प्राकृतिक चिकित्सा – डॉ0 टी0 एन0 श्रीवास्तव, मैत्रेयी प्रकाशन, नई दिल्ली।
9. प्राकृतिक चिकित्सा – रामगोपाल शर्मा, प्रभात पेपरबैक्स , नई दिल्ली।
10. प्राकृतिक उपचार की विधियाँ – डॉ0 राजीव रस्तोगी, पापुलर बुक डिपो जयपुर।

## 2.16 सहायक पाठ्य सामग्री

1 कल्याण आरोग्य अंक (जनवरी एवं फरवरी 2001 ई0) – गीता प्रेस गोरखपुर।
2. असाध्य रोगों की सरल चिकित्सा – डॉ0 नागेन्द्र कुमार नीरज,
3 मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान– प्रो0 अनन्त प्रकाश गुप्ता, सुमित प्रकाशन, आगरा।
4. वैकल्पिक चिकित्सा – डा0 राजकुमार प्रुथी, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली।
5. वैकल्पिक चिकित्सा – डा0 आर0 एस0 विवेक , डायमण्ड पाकेट बुक्स, नई दिल्ली।

## 2.16 निबन्धात्मक प्रश्न–

1. जल चिकित्सा में प्रयुक्त स्नान के प्रकारों को समझाते हुए कटि स्नान एवं भाप स्नान की विधि, रोगों में लाभकारी प्रभाव एवं सावधानियां लिखिए।

2. जल चिकित्सा में प्रयुक्त किन्ही चार प्रमुख स्नानों की विधि, रोगों में लाभकारी प्रभाव एवं सावधानियों पर प्रकाश डालिए।

3. निम्न स्नानों को सविस्तार समझाइये –

(क) रीढ स्नान (ख) पाद स्नान
(ग) पूर्ण डूब स्नान (घ) मेहन स्नान

# इकाई 3 जल चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न पट्टियां एवं लपेट

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 जल चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न पट्टियां
3.3.1 ठण्डे जल की पट्टियां
3.3.2 गर्म जल की पट्टियां
3.3.3 बर्फ की पट्टियां
3.4 जल चिकित्सा में प्रयुक्त गीली चादर लपेट
3.5 सारांश
3.6 पारिभाषिक शब्दावली
3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
3.9 सहायक पाठ्य सामग्री
3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

## 3.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठकों, पूर्व की इकाई में आपने जल तत्व में प्रयुक्त विभिन्न स्नानों का परिचय प्राप्त किया और जाना कि विभिन्न स्नान शरीर के अत्यन्त उपयोगी होते हैं। इन स्नानों के प्रयोग से स्वस्थ व्यक्ति अपने स्वास्थ्य को उन्नत बना सकता है तो वही गंभीर एवं सामान्य रोगों के उपचार में भी स्नान लाभकारी प्रभाव रखते हैं। आपने जल चिकित्सा के अन्तर्गत स्नानों के प्रकारों, विधियों, लाभकारी प्रभावों एवं प्रमुख सावधानियों का ज्ञान पूर्व इकाई में प्राप्त किया जिसे जानने के उपरान्त आपके मन में जल चिकित्सा को और अधिक गहराई से जानने की उत्सुकता अवश्य ही बढी होगी। इसके अतिरिक्त स्नानों के विषय में जानने के उपरान्त आपके मन में यह प्रश्न उत्पन्न होना भी स्वाभाविक ही है कि जल चिकित्सा के अन्तर्गत स्नानों के अतिरिक्त और किन किन प्रविधियों के रुप में जल का प्रयोग किया जाता है। इस प्रश्न के उत्तर में सर्वप्रथम लपेट एवं पट्टीयों का ही वर्णन आता है। वास्तव में स्नानों के समान लपेट एवं पट्टियों का विषय भी बहुत उपयोगी, महत्वपूर्ण, रोचक एवं ज्ञान वर्धक है जिसके अभाव में जल चिकित्सा का ज्ञान अपूर्ण रह जाता है।

लपेट एवं पट्टियां जल चिकित्सा का एक महत्वपूर्ण भाग है जिनका प्रयोग अत्यन्त व्यावहारिक रुप से हमारे घरों एवं समाज में पारम्परिक रुप से होता है। दर्द के स्थान पर एवं चोट आदि के प्राथमिक एवं प्रथम उपचार के रुप में प्रायः लपेट एवं पट्टियों का प्रयोग किया जाता है। प्राचीन प्राकृतिक चिकित्सकों एवं आयुर्वेदिक चिकित्सकों से लेकर आधुनिक चिकित्सकों तक ने लपेट एवं पट्टियों का प्रयोग अपनी चिकित्सा में किया है तथा सामान्य से लेकर गंभीर रोगों तक में इसके लाभकारी प्रभाव प्राप्त किए हैं। आपने लपेट एवं पट्टियों के विषय में व्यवहारिक रुप से तो अवश्य ही सुना एवं अनुभव किया होगा किन्तु आपको इस विषय का सैद्धान्तिक स्तर पर ज्ञान होना भी अनिवार्य है। इसके साथ साथ जल चिकित्सा के अन्तर्गत कितने प्रकार की लपेट एवं पट्टियाँ होती है ? लपेट एवं

पट्टी की सही एवं वैज्ञानिक विधि क्या होती है ? किस लपेट एवं किस पट्टी से क्या क्या लाभ होते हैं अथवा किन किन रोगों में इनसे लाभ मिलता है एवं सबसे महत्वपूर्ण किस अवस्था अथवा रोग में लपेट एवं पट्टी का प्रयोग नही करना चाहिए। यह सभी विचारणीय बिन्दु हैं। प्रस्तुत इकाई में इन्ही बिन्दुओं पर सविस्तार विचार किया गया है।

## 3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- जल चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न प्रकार की लपेटों का परिचय प्राप्त कर सकेगें।
- जल चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न प्रकार की पट्टीयों की विधि का ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।
- जल चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न प्रकार के लपेटों एवं पट्टीयों के लाभों को समझाने में सक्षम हो सकेगें।
- विभिन्न रोगों की जल चिकित्सा में लपेटों एवं पट्टीयों के महत्व का वर्णन कर सकेंगे।
- जल चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न प्रकार की लपेटों एवं पट्टीयों की सावधानियों को समझाने में सक्ष्म हो सकेगें।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में दिए गये प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे।

## 3.3 जल चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न पट्टियां

जल चिकित्सा में प्रमुख रुप से जल की ठंडी पट्टी, जल की गर्म पट्टी एवं बर्फ की पट्टी का वर्णन आता है। इन पट्टियों में कपास से बने खादी कपडे का प्रयोग सर्वोत्तम होता है। इसके अतिरिक्त सूती कपडे का प्रयोग भी पट्टी के रुप में किया जा सकता है। रोगी को पट्टी देने के लिए खादी के सफेद कपडे को जल में भीगोकर प्रयोग करते हैं। पट्टी में यह विशेष ध्यान रखना चाहिए कि जिस कपडे को पट्टी के रुप में प्रयोग किया जा रहा है वह कपडा भलि भांति जल को सोखने वाला होना चाहिए। पट्टी के लिए सफेद कपडे का ही प्रयोग किया जाना चाहिए तथा इस कपडे में स्वच्छता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। जल चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न पट्टियों को जल के तापक्रम के आधार निम्न लिखित तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है –

**3.3.1 जल की ठंडी पट्टियां :**जल चिकित्सा में जल की ठंडी पट्टियों का प्रयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं प्रचलित है। तेज बुखार होने की अवस्था में माथे पर जल की ठंडी पट्टी का प्रयोग करने का उदाहरण समाज में प्राचीन काल से चला रहा है। जिस प्रकार सामान्य एवं व्यवहारिक रुप से जल की ठंडी पट्टी का प्रयोग माथे पर किया जाता है उसी प्रकार जल चिकित्सा के अन्तर्गत शरीर के विभिन्न अंगों पर भी जल की ठंडी पट्टी का प्रयोग किया जाता है।

**आवश्यक सामग्री :** खादी के कपडे की बनी छोटे आकार की पट्टी, सामान्य अथवा ठंडे तापक्रम का जल तथा मग आदि।

**समयावधि :** 30 मिनट ।

**विधि :** ठंडे जल की पट्टी में खादी के कपडे की बनी पट्टी को ठंडे जल में अच्छी प्रकार तर करते हुए प्रभावित अंग पर प्रयोग करते हैं। सामान्यतया इस ठंडी पट्टी का पाँच मिनट

प्रयोग करने से जब यह पट्टी गर्म हो जाती है तब इस पट्टी को हटाकर इसके स्थान पर जल में भीगी दूसरी पट्टी का प्रयोग किया जाता है। यदि शरीर का तापक्रम अधिक बढा हुआ हो तब पट्टी के गर्म होते ही इसे इस पट्टी को हटाकर इसके स्थान पर दूसरी पट्टी का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार सामान्य अवस्था में पाँच–पाँच मिनट के अन्तराल पर पट्टियों को बदलते हुए पाँच से छह बार अर्थात 25 से 30 मिनट तक की समयावधि तक ठंडे जल की पट्टियों का प्रयोग किया जाता है। विशेष परिस्थितियों अथवा रोगावस्था में रोगी के रोग के अनुसार इन पट्टियों की समयावधि को कम अथवा अधिक किया जा सकता है। शरीर के विभिन्न अंगों जैसे पेट, माथे, सिर, कमर आदि की संरचना के अनुसार जल की ठंडी पट्टियों को तैयार किया जाता है अर्थात पेट की पट्टी, माथे की पट्टी, सिर की पट्टी एवं कमर की पट्टी इस वर्ग की पट्टियां है। जिन्हे निर्धारित समयावधि के लिए रोगी को दिया जाता है।

**लाभकारी प्रभाव :** जल की ठंडी पट्टी का प्रयोग करने से शरीर की अनावश्यक गर्मी शान्त हो जाती है। इसके साथ साथ शरीर से जहरीले विष का शोषण करने में भी जल की ठंडी पट्टियां लाभकारी प्रभाव रखती है। शरीर के किसी अंग अथवा स्थान चोट के कारण जलन अथवा सूजन होने पर जल की ठंडी पट्टी करने से शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। आग आदि से जलने के स्थान पर जलन होने पर भी जल की ठंडी पट्टी लाभकारी प्रभाव रखती है। अचानक पैर में मोच आने अथवा हड्डी के मुड जाने से उत्पन्न दर्द एवं सूजन में ठंडै जल की पट्टी से दर्द एवं सूजन में आराम मिलता है। चोट लगने पर रक्तस्राव बंद नही होने की अवस्था में जल की ठंडी पट्टी का प्रयोग करने से रक्तस्राव बंद हो जाता है। ज्वर आदि की अवस्था में शरीर का तापक्रम बढने की अवस्था में माथे पर जल की ठंडी पट्टी का प्रयोग करने से शरीर का तापक्रम शीघ्र सामान्य हो जाता है।

जहरीले कीट के काटने पर शरीर में उत्पन्न होने वाली जलन एवं सूजन में जल की ठंडी पट्टी का प्रयोग शीघ्र लाभ प्रदान करता है। जल की ठंडी पट्टी शरीर से विष शोषण की क्रिया में अत्यन्त लाभकारी भूमिका निभाती है जिसका प्रयोग करने से पिडित व्यक्ति को शीघ्र आराम मिलता है। जल की ठंडी पट्टी से त्वचा के रोमकूपों के माध्यम से शरीर की अनावश्यक गर्मी बाहर निकलती है एवं त्वचा रोगों में लाभ प्राप्त होता है।

**सावधानियां :** यद्यपि जल की ठंडी पट्टियां अत्यन्त लाभकारी एवं दुष्प्रभावरहित होती हैं किन्तु फिर भी इन पट्टियों का प्रयोग एक बार में बहुत अधिक लम्बे समय तक (लगातार तीस मिनट से अधिक) नही करना चाहिए। इसके साथ साथ इन पट्टियों को देने में स्वच्छता का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

**3.3.2 जल की गर्म पट्टियां :** प्रिय पाठकों, यद्यपि सामान्य रुप से पढने एवं देखने पर ऐसा लगता है कि जल की गर्म पट्टियों को गर्म जल का प्रयोग करते हुए बनाया जाता है किन्तु वास्तव में ऐसा नही होता है अपितु जल की गर्म पट्टियों में भी ठंडे जल का ही प्रयोग किया जाता है। इनमें अन्तर यह होता है कि जल की ठंडी पट्टियों को जल से भलि भांति तर करने के उपरान्त रोगी को दिया जाता है जबकि जल की गर्म पट्टियों को जल में भिगोकर अच्छी प्रकार निचोडने के उपरान्त ही प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त इस पट्टी की प्रकृति एवं प्रभाव को गर्म बनाने के लिए इसके ऊपर से ऊनी कम्बल की पट्टी को लपेट दिया जाता है। यद्यपि जल की ठंडी पट्टी को पाँच मिनट के उपरान्त बदल दिया जाता है किन्तु जल की गर्म पट्टी को तीन से छह घन्टे तक अथवा इससे भी लम्बे समय तक के लिए बिना खोले हुए प्रयोग किया जाता है।

**आवश्यक सामग्री :** खादी के कपडे की बनी लम्बी एवं चौडे आकार की पट्टी, एक अथवा दो ऊनी कम्बल की पट्टियां, बैठने के लिए कुर्सी एवं तख्त, सामान्य तापक्रम का जल तथा मग आदि।

**समयावधि :** तीन से छह घन्टे।

**विधि :** जल की गर्म पट्टी तैयार करने के लिए खादी के कपडे को अच्छी प्रकार जल में भीगाकर उसे निचोडकर शरीर के प्रभावित अंग पर लपेटकर बांध देते हैं तत्पश्चात उसके ऊपर से फलालेन अथवा ऊनी कम्बल की बनी दूसरी पट्टी को लपेट देते हैं। ऊनी पट्टी को ऊपर से इस प्रकार लपेटते हैं कि नीचे की पट्टी अच्छी प्रकार दब जाए एवं वायु का आवागमन अन्दर से बाहर की और नही हो सके। सामान्यतया जल की गर्म पट्टी को तीन से छह घन्टे तक प्रयोग किया जाता है। रोगी की अवस्था के अनुसार पट्टी की समयावधि को बढाया जा सकता है। गर्म जल की पट्टी को रात्रिकाल में रोगी को देने के उपरान्त प्रातःकाल तक भी प्रयोग किया जा सकता है।

**लाभकारी प्रभाव :** जल की गर्म पट्टी शरीर से विजातीय विषाक्त पदार्थों को बाहर निकालने में विशेष लाभकारी, गुणकारी एवं प्रभावकारी सिद्ध होती है। इस पट्टी का प्रयोग करने से शरीर त्वचा के ऊपर स्थित मल हट जाता है जिससे रोग छिद्र खुल जाते हैं एवं शरीर के अन्दर स्थित विजातीय विष रोग छिद्रों के माध्यम से बाहर निकलने लगते हैं। इस कारण जल की गर्म पट्टी का प्रयोग करने से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता एवं जीवनी शक्ति बढती है। जल की गर्म पट्टी का प्रयोग प्रमुख रुप से जीर्ण रोगों जैसे दमा, जीर्ण ज्वर, मधुमेह, रक्तचाप, हृदय रोग, एलर्जी, एक्जीमा, सोराइसिस, मोटापा एवं कैन्सर आदि में लाभकारी प्रभाव रखता है। वर्तमान काल में तेजी से बढ रहे दमा रोग (अस्थमा) में जहां दवाइयों का प्रयोग निष्प्रभावी रहता है वहीं जल की गर्म पट्टी का प्रयोग इस रोग में लाभकारी प्रभाव रखता है। शरीर में विजातीय विष की अधिकता होने पर रोगी को घबराहट, असहजता, भारीपन आलस्य एवं अनिन्द्रा आदि लक्षण प्रकट होते हैं ऐसी अवस्था में गर्म जल की पट्टी का प्रयोग लाभकारी प्रभाव रखता है। सिर पर इस पट्टी को देने से सिर दर्द, जकडन, भारीपन में लाभ मिलता है एवं इसी प्रकार छाती पर इस पट्टी को देने से फेफडों में स्थित विष बाहर निकल जाता है एवं दमा व पुरानी खाँसी में रोगी को विशेष लाभ प्राप्त होता है। पेडू अर्थात उदर प्रदेश पर यह पट्टी देने से पेट से सम्बंधी अनेक रोग बहुत आसानी से दूर होते हैं। महिलाओं के विभिन्न रोगों में भी यह पट्टी लाभकारी प्रभाव रखती है। इस पट्टी के प्रयोग से अनिन्द्रा रोग में भी सकारात्मक प्रभाव पडता है। सरल शब्दों में गर्म जल की पट्टी के प्रयोग से शरीर निरोगी, हल्का एवं ऊर्जावान बनता है।

**सावधानियां :** गर्म जल की पट्टियों एक रोगी पर प्रयोग करने के तुरन्त बाद दूसरे रोगी पर प्रयोग नही करनी चाहिए। गर्म जल की पट्टी को प्रयोग करने में स्वच्छता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। पट्टी को प्रयोग करने से पूर्व अच्छी प्रकार धोकर एवं भलि भांति धूप में सुखाने के उपरान्त ही प्रयोग करना चाहिए।

**3.3.3 बर्फ की पट्टियां :** बर्फ की पट्टियों के अन्तर्गत पूर्ण रुप से ठंडे जल अथवा बर्फ का प्रयोग किया जाता है।

**आवश्यक सामग्री :** चिकित्सकीय उपचार हेतु मेज, एक सूती चादर, दो ऊनी कम्बल, दो छोटे तौलिए, सामान्य तापक्रम का जल तथा मग आदि।

**समयावधि :** पाँच से सात मिनट।

**विधि :** बर्फ की पट्टी बनाने के लिए खादी के कपडे से बर्फ के टुकडे को अच्छी प्रकार चारों ओर से लपेटकर प्रयोग किया जाता है। बर्फ के अभाव में अति शीतल जल में खादी के कपडे को भिगोकर शरीर के प्रभावित अंग पर लपेटते हैं। बर्फ की पट्टी को पाँच से सात मिनट तक रोगी को देते हैं।

**लाभकारी प्रभाव :** बर्फ की पट्टियों को शरीर के विभिन्न भागों जैसे पैर, हाथ, पेट, कमर, माथे एवं सिर आदि पर प्रयोग किया जाता है। इन पट्टियों का प्रयोग करने से शरीर की मॉसपेशियों में अतिरिक्त खिचाव दूर होता है एवं मॉसपेशी को आराम मिलता है। मॉसपेशी में चोट लगने पर तुरन्त बर्फ की पट्टी का प्रयोंग करने से दर्द एवं सूजन में तुरन्त आराम मिलता है। बर्फ की पट्टी का प्रयोग प्रमुख रुप से शोथ के स्थान पर किया जाता है। जोडों में सूजन, चोट में सूजन, घाव वाले स्थान पर सूजन तथा त्रीव ज्वर आदि में इन पट्टियों को प्रयोग लाभकारी सिद्ध होता है। गर्दन के चारों ओर बर्फ पट्टी का प्रयोग करने से मस्तिष्क की ओर रक्त संचार कम होता है एवं हृदय को बल मिलता है इसके प्रभाव से सिर दर्द रोग में आराम मिलता है। आँखों के लाल हो जाने पर भी इस पट्टी के प्रयोग से लाभ मिलता है। भूख कम हो जाने अथवा नही लगने की अवस्था में रोगी के पेट पर भोजन से आधा घंटा पूर्व सिकाई करने से रोगी को अच्छी भूख लगती है। पस बनने के कारण होने वाले असहनीय दॉत दर्द में बर्फ की पट्टी तुरन्त लाभ प्रदान करती है। वमन रोग में भी रोगी को बर्फ की पट्टी देने से आराम मिलता है। कैन्सर रोगी के प्रभावित अंग को बर्फ की पट्टी देने से आराम मिलता है।

**सावधानियॉ :** बर्फ की पट्टियों के संदर्भ में सबसे प्रमुख सावधानी यह होती है कि इनका प्रयोग अधिक समय तक (सात मिनट से अधिक) नही करना चाहिए अपितु इससे पूर्व भी रोगी को असहज अनुभव होने पर पट्टी को तुरन्त हटा लेना चाहिए।

इस प्रकार ठंडे जल, गर्म जल एवं बर्फ की पट्टियों के रुप से पट्टियों के तीन प्रमुख प्रकार अथवा वर्ग होते हैं। इन प्रकारों के अन्तर्गत शरीर के विभिन्न अंगों के अनुसार अलग अलग पट्टियां तैयार की जाती है एवं रोगों के उपचार में इनका प्रयोग किया जाता है। जिस प्रकार पट्टियों का प्रयोग लाभकारी प्रभाव रखता है ठीक उसी प्रकार जल चिकित्सा में लपेट का प्रयोग भी लाभकारी एवं प्रभावशाली सिद्ध होता है। लपेट का प्रयोग करने से अनेक सामान्य एवं गंभीर रोगों में सरलता से लाभ प्राप्त होता है। जल चिकित्सा में प्रयुक्त लपेट को गीली चादर लपेट के नाम से जाना जाता है। यह जल चिकित्सा में प्रयुक्त सबसे प्रमुख लपेट है। इसका वर्णन इस प्रकार है –

## 3.4 जल चिकित्सा में प्रयुक्त गीली चादर लपेट

प्रिय पाठकों, गीली चादर लपेट के नाम से ही स्पष्ट होता है कि इसमें गीली चादर को लपेट के रुप में प्रयोग किया जाता है। इस लपेट में सूती चादर का प्रयोग किया जाता है। गीली चादर लपेट का प्रयोग करने से शरीर में स्थित विषाक्त तत्व त्वचा के रोम छिद्रों के माध्यम से बाहर निकल जाते हैं। इसके साथ साथ गीली चादर लपेट से सम्पूर्ण शरीर की तंत्रिकाएं एवं नाडियां भी मलहीन एवं स्वच्छ बनती है। शरीर को स्वस्थ एवं रोगरहित बनाने में गीली चादर लपेट महत्वपूर्ण भूमिका वहन करती हैं।

गीली चादर लपेट के प्रथम प्रयोग के संदर्भ में डा0 ल्यूकस का वर्णन आता है। इसके उपरान्त जर्मनी देश के प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक विनसेंज प्रिस्निज द्वारा इस लपेट का प्रयोग कर अनेक रोगियों को स्वस्थ बनाया गया। चूंकि गीली चादर लपेट एक लाभकारी एवं दुष्प्रभाव रहित रोगोपचार की विधि है अतः वर्तमान समय में विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक रोगों के उपचार में गीली चादर लपेट का प्रयोग चिकित्सकों द्वारा किया जा रहा है। जिज्ञासु पाठकों, गीली चादर लपेट के महत्व एवं लाभकारी प्रभावों को जानने के उपरान्त आपके मन में इसकी विधि को जानने की जिज्ञासा अवश्य ही बढ गयी होगी अतः अब गीली चादर लपेट की विधि पर विचार करते हैं –

**आवश्यक सामग्री :** चिकित्सकीय उपचार हेतु मेज अथवा तख्त, एक छह फीट लम्बी सूती चादर, दो ऊनी कम्बल, सिर गीला बनाए रखने के लिए छोटे तौलिए, सामान्य तापक्रम का जल तथा मग आदि।

**जल का तापक्रम :** 80 डिग्री फे0 से 95 डिग्री फे0 तक।

**समयावधि :** 30 मिनट से प्रारम्भ करते हुए 8 घंटे तक।

**विधि :** गीली चादर लपेट के लिए सर्वप्रथम चिकित्सकीय मेज पर एक अथवा दो ऊनी कम्बल बिछा देते हैं। तत्पश्चात सूती चादर को अच्छी प्रकार जल में भीगोकर एवं निचोडकर इन कम्बलों के ऊपर बिछा दिया जाता है। अब रोगी के सिर को ठंडे जल में

भिगा देते हैं एवं रोगी के बाह्य वस्त्रों को उतरवाकर उसे मेज पर बिछी चादर के ऊपर लिटा दिया जाता है। रोगी को मेज पर पूर्ण रुप से विश्राम की अवस्था अर्थात शवासन में लिटाया जाता है। अब गीली सूती चादर को रोगी के सम्पूर्ण शरीर को अच्छी प्रकार लपेटते हैं। लपेट का प्रारम्भ रोगी के पैरों से किया जाता है। रोगी के दोनों पैरों पर गीली चादर लपेटने के उपरान्त दोनों हाथों को भी चादर में अच्छी प्रकार लपेट देते हैं। इसी प्रकार रोगी की कमर, पेट, कन्धे एवं गर्दन तक के भाग को चादर में लपेट दिया जाता है। चादर को पैरों से लेकर गर्दन तक इस प्रकार बांध दिया जाता है कि वायु का आवागमन बाहर से अन्दर एवं अन्दर से बाहर की ओर नही हो सके। वायु के आवागमन को अवरुद्ध करने के लिए कम्बलों को ऊपर से मोमजामे से ढक दिया जाता है।

गीली चादर को भली भांति लपेटने के उपरान्त ऊनी कम्बल को ऊपर से लपेटना प्रारम्भ करते हैं। रोगी के पैरों से लेकर गर्दन तक चादर के ऊपर से एक अथवा दो कम्बल को लपेट देते हैं। कम्बल को लपेटने के उपरान्त रोगी के सिर एवं माथे पर ठंडे जल से भीगी छोटा तौलिया रख दिया जाता है। इस अवस्था में यदि संभव हो तो रोगी के सिर पर ठंडे बहते जल की धारा की व्यवस्था कर देते हैं। कमजोर रोगी के शरीर में अधिक पसीना लाने के लिए रोगी के पैरों के नीचे गर्म जल की बोतल भी रख दी जाती है।

उपरोक्त विधिपूर्वक रोगी को लपेट देने से प्रथम पाँच मिनट रोगी को ठंड की अनुभूति होती है तत्पश्चात रोगी के शरीर में गर्मी उत्पन्न होने लगती है एवं रोगी के शरीर में पसीना आने लगता है। इस अवस्था में रोगी के सिर पर रखा तौलिया गर्म होने पर उसे बदलकर ठंडे जल में भीगा दूसरा तौलिया रोगी के सिर पर रख देना चाहिए। इस अवस्था में रोगी को अच्छी अथवा सुखद अनुभूति होने लगती है एवं उसे नींद आने लगती है। विधिपूर्वक गीली चादर लपेट देने पर अधिकांश रोगियों को नींद आ जाती है। नींद की इस अवस्था में शरीर को अधिकतम लाभ प्राप्त होता है एवं शरीर से अधिकतम मात्रा में विजातीय विषों का उत्सर्जन होता है।

निर्धारित समयावधि पूर्ण होने पर रोगी के ऊपर से पहले सावधानीपूर्वक ऊनी कम्बल को हटाते हैं तत्पश्चात धीरे धीरे रोगी के शरीर से गीली चादर की लपेट को खोल देते हैं। अब पहले ठंडे जल में भीगे तौलिया से रोगी के शरीर का स्पंज करते हुए पसीने को पोंछ देते हैं तथा इसके उपरान्त ठंडे अथवा सामान्य जल के तापक्रम के जल से सम्पूर्ण शरीर का स्नान कराते हैं। रोगी को स्पंज बाथ एवं स्नान काल में विशेष ध्यान यह रखना चाहिए कि रोगी के शरीर पर हवा का झोका कदापि नही पडना चाहिए। स्नान के उपरान्त रोगी को पुनः गर्म कम्बल में आराम करने का निर्देश देते हैं। गर्म कम्बल में आराम करने से शरीर का तापक्रम सामान्य हो जाता है।

प्रिय पाठकों, गीली चादर लपेट को कमरे के अन्दर के अतिरिक्त धूप में भी दिया जाता है। धूप में लपेट देने से यह ओर अधिक प्रभावी एवं लाभकारी हो जाती है। किन्तु धूप में इस लपेट को अधिकतम 40 मिनट तक ही देना चाहिए एवं अधिक कमजोर व रोग की त्रीव अवस्था में गीली चादर लपेट को कमरे के अन्दर ही देना चाहिए।

**रोगों में लाभकारी प्रभावः** गीली चादर लपेट मूल रुप से शरीर में उपस्थित विषों को त्वचा के माध्यम से शरीर से बाहर निकालती है जिसके परिणामस्वरुप शरीर की जीवनी शक्ति एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता तेजी से बढती है। गीली चादर लपेट शरीर पर निम्न लिखित लाभकारी प्रभाव रखती है –

(1) गीली चादर लपेट से पाचन तंत्र की क्रियाशीलता बढती है, यकृत स्वस्थ एवं सक्रिय बनता है, भूख अच्छी लगती है तथा कब्ज, अपच आदि रोग दूर होते हैं।

(2) मॉसपेशीयों की क्रियाशीलता बढती है एवं पेशियों से सम्बन्धित दर्दों में आराम मिलता है।

(3) स्वेद ग्रन्थियों की क्रियाशीलता बढती है, इसके प्रभाव से शरीर में स्थित विषाक्त तत्व स्वेद के रुप में अधिक मात्रा में शरीर से बाहर निकलते है जिससे विभिन्न प्रकार के त्वचा रोग में लाभ मिलता है।

(4) शरीर में कोशिकाओं की जल अवशोषण क्षमता बढती है जिसके परिणामस्वरुप त्वचा की झुर्रिया समाप्त होती है।

(5) त्वचा के नीचे स्थित अतिरिक्त वसा पिघलती है जिससे शरीर का अनावश्यक बढा भार सन्तुलित होता है।

(6) रक्त स्वच्छ एवं मलहीन बनता है जिससे रक्तचाप सन्तुलित होता है एवं हृदय को बल मिलता है।

(7) सभी प्रकार के ज्वरों (बुखार) में लाभकारी प्रभाव रखती है। गीली चादर लपेट के प्रभाव से पुराने जीर्ण ज्वर रोग में भी तुरन्त लाभ प्राप्त होता है।

(8) वृक्कों पर सकारात्मक प्रभाव पडता है, मूत्र निमार्ण क्रिया त्रीव होती है एवं मूत्र अवरोध दूर होता है।

(9) शरीर के स्नायुओं (न्यूरान्स) में स्थित मल बाहर निकलता है जिससे स्नायु स्वस्थ, सक्रिय एवं बलवान बनते हैं अर्थात शरीर का तंत्रिका तंत्र स्वस्थ बनता है। सियाटिका रोग में लाभकारी है।

(10) शरीर की चयापचय दर सन्तुलित होती है जिसके परिणामस्वरुप शरीर ऊर्जावान बनता है।

(11) गीली चादर लपेट से मानसिक तनाव, घबराहट, बैचनी एवं अवसाद आदि मानसिक रोग दूर होते हैं तथा रोगी को अच्छी सकारात्मक अनुभूति होती है।

(12) गीली चादर लपेट अनिन्द्रा रोग में विशेष लाभकारी प्रभाव रखता है।

**रोगों में निषेध अथवा सावधानियॉ** : रोगी को गीली चादर लपेट देते समय निम्न लिखित सावधानियों का पालन अवश्य करना चाहिए –

(1) रोगी को दो से चार गिलास सामान्य अथवा गुनगुने तापक्रम का जल पीलाकर ही यह लपेट देनी चाहिए। रोगी को आवश्यक्ता अनुभव होने पर लपेट काल के मध्य में भी जल पीलाया जा सकता है।

(2) रोगी के सिर को अच्छी प्रकार जल में भीगोकर लपेट देनी चाहिए एवं लपेट के समय रोगी के सिर पर ठंडे जल का तौलिया अवश्य रखना चाहिए। लपेट काल में सिर का तौलिया गर्म होने पर पुनः इसे ठंडे जल में भीगोकर रोगी के सिर पर रखना चाहिए।

(3) कमजोर एवं वृद्ध रोगी के शरीर को लपेट से सूखी मालिश अथवा धूप स्नान से गर्म करने के उपरान्त लपेट देनी चाहिए। कमजोर रोगी के हाथों को चादर लपेट से बाहर भी रखा जा सकता है।

(4) उच्च रक्तचाप, हृदय रोगी, मिर्गी से ग्रस्त, त्वचा में गहरे घाव, मानसिक तनाव एवं अवसाद से ग्रस्त रोगी को एवं रोग की त्रीव अवस्था में लपेट नही देनी चाहिए। शरीर के किसी भाग में सूजन होने पर भी यह लपेट सावधानीपूर्वक देनी चाहिए।

(5) रोगी की क्षमतानुसार ही समय निर्धारित करते हुए लपेट देनी चाहिए एवं लपेट काल में रोगी को घबराहट अथवा बैचेनी होने पर लपेट खोलकर रोगी को स्नान कराना चाहिए।

(6) महिलाओं को मासिक रक्तस्राव के काल में यह लपेट नही देनी चाहिए एवं गर्भावस्था काल में भी महिलाओं को यह लपेट नही देनी चाहिए।

(7) रोगावस्था में लपेट सदैव योग्य एवं कुशल चिकित्सक के निर्देशन एवं देख रेख में ही लेनी चाहिए।

**अभ्यास हेतु प्रश्न –**

1– **सत्य / असत्य**

**(क)** जल की पट्टी में प्रयुक्त कपडा भलि भांति जल सोखने वाला होना चाहिए।
**(ख)** जल की गर्म पट्टियों में गर्म जल का ही प्रयोग किया जाता है।
**(ग)** बर्फ की पट्टी को तीस से चालीस मिनट तक रोगी को देते हैं।
**(घ)** विधिपूर्वक गीली चादर लपेट देने पर अधिकांश रोगियों को नींद आ जाती है।
**(ड)** गीली चादर लपेट खोलने पर रोगी को ठंडे जल से स्पंज तथा सम्पूर्ण शरीर का स्नान कराना चाहिए।

**2– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :**

**(क)** जल चिकित्सा की पट्टियों में ———— रंग के कपडे का ही प्रयोग करना चाहिए।
**(ख)** गीली चादर लपेट में लपेट के लिए ——— चादर का प्रयोग किया जाता है।
**(ग)** सामान्यतया जल की गर्म पट्टी को –– से ––– घन्टे तक प्रयोग किया जाता है।
**(घ)** गीली चादर लपेट को कमरे के अन्दर के अतिरिक्त ——— में भी दिया जाता है।
**(ड)** अनिन्द्रा से ग्रस्त रोगी को ———— देने से विशेष लाभ मिलता है।

3– **एक शब्द में उत्तर दीजिए –**

**(क)** जल चिकित्सा की पट्टियों में किस कपडे का प्रयोग सर्वोत्तम होता है ?
**(ख)** जल की ठंडी पट्टी की समयावधि कितनी होती है ?
**(ग)** जहरीले कीट के काटने पर शरीर में उत्पन्न होने वाली जलन एवं सूजन में जल की किस पट्टी का प्रयोग शीघ्र लाभ प्रदान करता है ?
**(घ)** गीली चादर लपेट के प्रथम प्रयोग के संदर्भ में किस चिकित्सक का वर्णन आता है ?
**(ड)** /प में गीली चादर लपेट को अधिकतम कितने समय तक देना चाहिए ?

**4–बहुविकल्पीय प्रश्न –**

**(क)** जल की पट्टियों के प्रमुख रुप से कितने वर्ग होते हैं –

(a) तीन (b) तेरह
(c) पच्चीस (d) असंख्य ।

**(ख)** गीली चादर लपेट के प्रथम पाँच मिनट रोगी को किसकी अनुभूति होती है –

(a) गर्मी (b) ठंड
(c) घबराहट (d) बैचेनी ।

**(ग)** मॉसपेशी में चोट लगने पर तुरन्त क्या करने से दर्द एवं सूजन में आराम मिलता है। –

(a) स्थानीय भाप (b) गीली चादर लपेट

(c) गर्म पाद स्नान (d) बर्फ की पट्टी ।

**(घ)** पस बनने के कारण होने वाले असहनीय दॉत दर्द में तुरन्त लाभ प्रदान करने वाली किया है –

(a) एनीमा (b) गीली चादर लपेट

(c) बर्फ की पट्टी (d) भाप स्नान ।

**(ङ)** दमा व पुरानी खाँसी रोगी के लिए विशेष लाभकारी किया है –

(a) बर्फ की पट्टी (b) जल की गर्म पट्टी

(c) जल की ठंडी पट्टी (d) इनमें से कोई नही ।

## 3.5 सारांश–

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपको जल चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न पट्टियों एवं लपेट का परिचय एवं इनके लाभकारी प्रभावों का ज्ञान हुआ होगा। इकाई का प्रारम्भ पट्टियों के तीन प्रकारों से किया गया है। जल की पट्टियों के तीन प्रकारों – जल की ठंडी, गर्म एवं बर्फ की पट्टियों पर प्रकाश डालने के उपरान्त इनके लाभाकारी प्रभावों को स्पष्ट किया गया है। शरीर की अनावश्यक गर्मी को शान्त करने के लिए, शरीर से विजातीय पदार्थों के विष का शोषण करने एवं जहरीले कीट पतंगों के काटने से उत्पन्न दर्द एवं सूजन को दूर करने में ठंडी जल की पट्टी अत्यन्त लाभकारी प्रभाव रखती है। जल की गर्म पट्टी जो तुलनात्मक रुप से अधिक समयावधि के लिए प्रयोग की जाती है, शरीर में अधिक समय से संचित विष को भी शोषित करने में प्रभावी सिद्ध होती है। गर्म जल की पट्टी से दमा, मधुमेह एवं कैन्सर जैसे गंभीर जीर्ण रोगों में भी लाभ प्राप्त होता है। निष्कर्ष रुप में जल की ठंडी पट्टी व्रीव रोगों में जबकि गर्म पट्टी जीर्ण रोगों को दूर करने में लाभकारी प्रभाव रखती है। इसी प्रकार बर्फ की पट्टी का प्रयोग जो पाँच से सात मिनट के अल्प समय के लिए ही प्रयोग की जाती है, मॉसपेशियों पर लाभकारी प्रभाव रखती है। बर्फ की पट्टी के प्रयोग से चोट के कारण उत्पन्न मॉसपेशी में दर्द एवं सूजन में तुरन्त लाभ प्रदान करती है। इस प्रकार जल की पट्टियां बिना किसी दुष्प्रभाव के शरीर से विजातीय विषों का शोषण करती है।

इकाई में आगे गीली चादर लपेट को समझाया गया है। यह लपेट एक छह फुट लम्बी सूती चादर को जल में भिगोकर एवं निचोडकर सम्पूर्ण शरीर पर दी जाती है। शरीर में पसीना उत्पन्न करने के लिए इस चादर के ऊपर ऊनी कम्बल लपेट देते हैं तथा मोमजामें का प्रयोग भी किया जाता है। इस लपेट को बंद कमरे के अतिरिक्त धूप में भी दिया जाता है। यह लपेट शरीर में उपस्थित विषाक्त विजातीय द्रव्यों को तेजी से रोमकूपों के माध्यम से बाहर निकालती है। इसीलिए विधिपूर्वक रोगी को यह लपेट देने से अनेक व्रीव एवं जीर्ण रोग सरलता से ठीक हो जाते हैं। इस लपेट के प्रभाव से शरीर के सभी तंत्र जैसे पाचन तंत्र, श्वसन तंत्र, उत्सर्जन तंत्र, अस्थि तंत्र, पेशीय तंत्र एवं तंत्रिका तंत्र स्वस्थ, सक्रिय एवं रोग रहित बनते हैं। अंत में गीली चादर लपेट की प्रमुख सावधनियों को

समझाते हुए इकाई को पूर्ण किया गया है। इस प्रकार प्रस्तुत इकाई में जल चिकित्सा में प्रयुक्त पट्टियों एवं लपेट को स्पष्ट किया गया है।

## 3.6 पारिभाषिक शब्दावली–

| | |
|---|---|
| फेरेहनाइट | तापक्रम को नापने की इकाई |
| प्रविधियॉ | तकनिकें, उपाय |
| व्यवहारिक | सामान्य दैनिक प्रयोग में आने वाला |
| सैद्धान्तिक | पुस्तकों के अनुसार सिद्धान्त |
| तंत्रिकाएं | संवेदनाओं को ग्रहण एवं वहन करने वाली कोशिकाएं |
| विजातीय विष | शरीर में उपस्थित अनुपयोगी विषैले पदार्थ |
| रोमकूप | त्वचा में उपस्थित सुक्ष्म छिद्र |

## 3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

| | | | |
|---|---|---|---|
| क. सत्य | क. सफेद | क. खादी | क. a |
| ख. असत्य | ख. सूती | ख. तीस मिनट | ख. b |
| ग. असत्य | ग. तीन, छह | ग. ठंडे | ग. d |
| घ. सत्य | घ. धूप | घ. डा0 ल्यूकस | घ. c |
| ड. सत्य | ड. गीली चादर लपेट | ड. चालिस मिनट | ड. b |

## 3.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

11. प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – डॉ0 राकेश जिन्दल, आरोग्य सेवा प्रकाशन, मोदी नगर (उ0प्र0) ।
12. प्राकृतिक चिकित्सा – डॉ0 टी0 एन0 श्रीवास्तव, मैत्रेयी प्रकाशन, नई दिल्ली।
13. प्राकृतिक चिकित्सा – रामगोपाल शर्मा, प्रभात पेपरबैक्स , नई दिल्ली।
14. प्राकृतिक उपचार की विधियाँ – डॉ0 राजीव रस्तोगी, पापुलर बुक डिपो जयपुर।

## 3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1 कल्याण आरोग्य अंक (जनवरी एवं फरवरी 2001 ई0) – गीता प्रेस गोरखपुर।
2. असाध्य रोगों की सरल चिकित्सा – डॉ0 नागेन्द्र कुमार नीरज,
3 मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान– प्रो0 अनन्त प्रकाश गुप्ता, सुमित प्रकाशन, आगरा।
4. वैकल्पिक चिकित्सा – डा0 राजकुमार प्रुथी, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली।
5. वैकल्पिक चिकित्सा – डा0 आर0 एस0 विवेक , डायमण्ड पाकेट बुक्स, नई दिल्ली।

## 3.10 निबन्धात्मक प्रश्न–

1.जल चिकित्सा में प्रयुक्त पट्टियों के प्रकार विधि, रोगों में लाभकारी प्रभाव एवं सावधानियां लिखिए।

2.जल चिकित्सा में प्रयुक्त गीली चादर लपेट की विधि, रोगों में लाभकारी प्रभाव एवं सावधानियों पर प्रकाश डालिए।

3. निम्न के विषय में सविस्तार समझाइये –

(क) गीली चादर लपेट
(ख) जल की ठंडी पट्टियां
(ख) जल की गर्म पट्टियां
(ख) बर्फ की पट्टियां

# इकाई 4 जल के आन्तरिक प्रयोग की विभिन्न विधियां

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 जल के आन्तरिक प्रयोग की विभिन्न विधियॉ
4.3.1 उषापान
4.3.2 वमन
4.3.3 शंख प्रक्षालन
4.3.4 एनीमा
4.3.5 जलपान
4.4 सारांश
4.5 पारिभाषिक शब्दावली
4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
4.8 सहायक पाठ्य सामग्री
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

## 4.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठकों, पूर्व की इकाई में आपने जल के बाह्य प्रयोगों का ज्ञान प्राप्त किया और जाना कि आपने जल शरीर शोधन का सबसे महत्वपूर्ण साधन है। जल के बाह्य प्रयोग जैसे स्नान, पट्टियां और लपेट शरीर शुद्धि में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आपने पूर्व इकाई में जाना कि इनके प्रयोग से मात्र शरीर स्वस्थ ही नही बनता अपितु अनेकों प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक रोग भी दूर होते हैं। अब आपके मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न होनी स्वाभाविक ही है कि जब जल का बाह्य प्रयोग इतना अधिक लाभकारी प्रभाव रखता है तब जल का आन्तरिक प्रयोग तो इससे भी अधिक महत्वपूर्ण होना चाहिए। इसके अतिरिक्त जल के आन्तरिक प्रयोग की कौन कौन सी विधियॉ होती है ? इन विधियों से जल का आन्तरिक प्रयोग करने से क्या क्या लाभ प्राप्त होते हैं ? एवं जल के आन्तरिक प्रयोग में किन किन सावधानियों को ध्यान रखना चाहिए ? ऐसे प्रश्न है जो कि आपके मन में पूर्व इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त अवश्य ही उत्पन्न हुए होगें।

जिज्ञासु पाठकों, जैसा कि आपको पूर्व ज्ञान है कि जल तत्व मानव शरीर का एक महत्वपूर्ण निमार्णकारी तत्व है। मानव शरीर का 70 प्रतिशत भाग जल तत्व ही है। शरीर में इस जल तत्व की मात्रा का सम होना स्वास्थ्य एवं विषम होना रोग कहलाता है। जल तत्व की इस मात्रा को हम जल के आन्तरिक प्रयोग से शरीर में सन्तुलित बनाए रखते हैं। प्रमुख रुप से पेय के रुप में जल का आन्तरिक प्रयोग करते हुए हम जल तत्व को सम बनाते हैं किन्तु यदि हम जल तत्व को पेय के रुप में वैज्ञानिक अथवा चिकित्सकीय विधि से प्रयोग करते हैं तब हम पूर्ण रुप से स्वस्थ रहने के साथ साथ रोगों को भी दूर कर सकते हैं। प्रस्तुत इकाई में आप जल के आन्तरिक प्रयोग की विभिन्न

विधियों का अध्ययन करेगें जिसके अर्न्तगत उषापान, वमन, शंख प्रक्षालन एवं जलपान नामक क्रियाओं पर प्रकाश डाला जाएगा। जिस प्रकार जल के बाह्य प्रयोग से शरीर का बाहरी मल दूर होता है अथवा दूसरे शब्दों में जैसे स्नान एवं लपेट आदि क्रियाएं शरीर को बाहरी रुप से स्वच्छ एवं रोग मुक्त बनाती हैं उसी प्रकार शरीर को आन्तरिक शोधन एवं स्वच्छता में जल के आन्तरिक प्रयोग की विधियॉ अत्यन्त लाभकारी एवं महत्वपूर्ण हैं। प्रस्तुत इकाई में जल के आन्तरिक प्रयोग की प्रमुख विधियों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया है।

## 4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- जल के आन्तरिक प्रयोग का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेगें।
- जल के आन्तरिक प्रयोग को समझाने में सक्षम हो सकेगें।
- जल के आन्तरिक प्रयोग की विभिन्न विधियों का विस्तारपूर्वक वर्णन कर सकेगें।
- जल के आन्तरिक प्रयोग के विषय में विभिन्न महत्वपूर्ण तथ्यों का ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में दिए गये प्रश्नों के उत्तर दे सकेगें।

## 4.3 जल के आन्तरिक प्रयोग की विभिन्न विधियॉ

प्रिय पाठकों, जल का आन्तरिक प्रयोग मानव शरीर के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जल के आन्तरिक प्रयोग में मनुष्य जल को पेय के रुप में प्रयोग करता है। प्रातःकाल से लेकर रात्रिकाल तक वह समय–समय पर जल को पेय के रुप में प्रयोग करता है। पेय के रुप में जल को प्रयोग करने की विभिन्न क्रियाएं अलग अलग नामों से जानी जाती है। प्रातःकाल सूर्योदय पूर्व जल का पेय के रुप में प्रयोग करने की क्रिया उषापान कहलाती है। तत्पश्चात प्रातःकाल खाली पेट गुनगुना जल पीकर उसे तुरन्त मुख मार्ग से बाहर निकालने की क्रिया वमन कहलाती है। हठयोग के ग्रन्थों में जल के आन्तरिक प्रयोग की अन्य लाभकारी क्रिया वारिसार अर्न्तधौति अथवा शंख प्रक्षालन कहलाती है। जल के आन्तरिक प्रयोग द्वारा बडी ऑत के शोधन की क्रिया एनीमा कहलाती है। इसके अतिरिक्त दिन में सामान्य रुप से जल का सेवन करना जलपान कहलाता है। उपरोक्त सभी क्रियाएं शरीर के लिए आवश्यक एवं हितकारी हैं जिनका विधिपूर्वक अभ्यास करने से शरीर स्वस्थ एवं रोग मुक्त रहता है। इन क्रियाओं को नही करने के कारण अथवा अवैज्ञानिक ढंग से करने पर शरीर में जल तत्व की विषमता उत्पन्न हो जाती है और इसके परिणाम स्वरुप अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति होती है।

प्रिय पाठकों, जल तत्व का आन्तरिक प्रयोग अत्यन्त व्यवहारिक विषय है प्रत्येक मनुष्य प्रातःकाल से लेकर दिन भर एवं रात्रिकाल तक इसका प्रयोग करता है। यद्यपि जब मनुष्य इसका प्रयोग बिना किसी नियमपालन एवं विधि विधानहीन रुप में करने से शरीर पर इसका दुष्प्रभाव पडता है एवं इसके साथ साथ अनेक रोग भी उत्पन्न होते हैं। विभिन्न चिकित्सकों के मतानुसार वर्तमान समय में फैल रहे अनेकों रोगों की उत्पत्ति का मूल जल तत्व के आन्तरिक प्रयोग की विकृति होती है। इस प्रकार जल का आन्तरिक प्रयोग बहुत महत्वपूर्ण है। जल के आन्तरिक प्रयोग के महत्व को जानने के उपरान्त आपके मन में

इसकी प्रमुख विधियों का सही एवं वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी अतः अब जल के आन्तरिक प्रयोग की प्रमुख विधियों पर विचार करते हैं –

**4.3.1 उषापान–**प्रिय पाठकों, उषापान भारतीय समाज में प्राचीन काल से प्रचलित किया है। उषा का अर्थ प्रातःकालीन बेला एवं पान का अर्थ पीने से होता है अर्थात प्रातःकाल सूर्योदय पूर्व खाली पेट एक से तीन लीटर तक अपनी क्षतमानुसार एवं रुचिनुसार साफ स्वच्छ गुनगुने जल के सेवन की क्रिया **उषापान** कहलाती है। यह क्रिया शरीर के आन्तरिक शोधन की सबसे सरल एवं व्यवहारिक क्रिया है। इस क्रिया के प्रभाव से पाचन तंत्र के साथ साथ शरीर के अन्य तंत्र भी स्वस्थ, सक्रिय एवं रोगमुक्त बनते हैं। उषापान की विधि इस प्रकार है –

**विधि :** उषापान के लिए रात्रिकाल में तांबे (कापर) के जग में दो लीटर शुद्ध जल भरकर रख देते हैं। तत्पश्चात उषाकाल अर्थात सूर्योदय से 45 मिनट पूर्व के समय नींद से जागने पर खाली पेट अपनी क्षमता एवं रुचिनुसार एक से तीन लीटर जल का सेवन किया जाता है। इस प्रकार जल का सेवन करने के उपरान्त धीरे धीरे भ्रमण किया जाता है। धीरे धीरे भ्रमण करने से ग्रहण किया गया जल आमाश्य एवं ऑतों में आगे की और बढता है। इसके परिणामस्वरुप शौच की इच्छा होती है।

सर्दी के मौसम में यदि तॉबें के जग में रखा जल अधिक ठंडा हो गया है तब इस जल को थोडा गुनगुना करते हुए प्रयोग करते हैं। सामान्य रुप से जल को हल्का गर्म अथवा गुनगुना कर देने से इसकी शोधन क्षमता और अधिक बढ जाती है जिससे यह और अधिक प्रभावकारी एवं लाभकारी सिद्ध होता है। जल की इस मात्रा का सेवन करने के उपरान्त 45 मिनट तक अन्य किसी ठोस अथवा द्रव भोज्य पदार्थ का सेवन नही करना चाहिए।

**उषापान का लाभकारी प्रभाव :** उषापान एक दुष्प्रभावरहित क्रिया है जो शरीर से मृत कोशिकाओं के निष्कासन की क्रिया को त्रीव करती है। रात्रिकाल के छह से आठ घंटे के विश्रामकाल के समय शरीर के अंग अवयवों में नई कोशिकाओं का जन्म होता है एवं ये नई कोशिकाएं पूर्व कोशिकाओं का स्थान ले लेती हैं। अंग अवयवों में स्थित इन मृत कोशिकाओं को हटाने में जल अत्यन्त आवश्यक है। प्रातःकाल उषापान की क्रिया शरीर के अंग अवयवों में स्थित इन मृत कोशिकाओं के निष्कासन में सहायता करती है। इसके परिणामस्वरुप अंगों एवं शरीर की क्रियाशीलता बढती है एवं शरीर में एक नई ऊर्जा का विकास होता है। इसके साथ साथ उषापान क्रिया निम्न लिखित रोगों को दूर करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है –

(1) उषापान करने से आमाश्य एवं आँतों की सफाई होती है एवं कब्ज रोग से मुक्ति मिलती है। नियमित उषापान करने से पेट में अम्लता, पेट दर्द, गैस, अपच, भूख की कमी आदि रोग स्वतः ही दूर हो जाते हैं।

(2) उषापान से सिरदर्द, जोडों में दर्द, गठिया, आर्थाराइटिस एवं मोटापा रोग में लाभ मिलता है। (3) उषापान क्रिया से रक्त शुद्ध, स्वच्छ एवं पतला बनता है जिससे रक्तचाप सन्तुलित होता है एवं हृदय स्वस्थ व मजबूत बनता है।

(4) उषापान से वृक्कों की क्रियाशीलता बढती है एवं वृक्क की पथरी व अन्य वृक्क से सम्बन्धित रोगों में आराम मिलता है।

(5) उषापान करने से आँखों के रोग दूर होते हैं एवं नेत्र ज्योति बढती है।

(6) उषापान की क्रिया त्वचा पर लाभकारी प्रभाव डालती है जिससे त्वचा की झुर्रिया दूर होती है एवं त्वचा में चमक बढती है।

(7) उषापान क्रिया श्वसन तंत्र के रोगों में लाभकारी प्रभाव रखती है। नियमित उषापान करने से विभिन्न प्रकार के कफ विकार जैसे जुकाम, बुखार, खाँसी, नजला, दमा एवं एलर्जी आदि रोग दूर होते हैं।

(8) नियमित उषापान करने से कैन्सर जैसे गंभीर एवं घातक रोग में लाभकारी प्रभाव पडता है।

प्रिय पाठकों, इस प्रकार उपरोक्त बिंदु उषापान के महत्व को सिद्ध करते हैं। यद्यपि उषापान एक दुष्प्रभाव रहित शरीर शोधन की क्रिया है अर्थात इस अभ्यास का शसरीर पर कोई दुष्प्रभाव नही पडता है किन्तु इस क्रिया में निम्न सावधानियों का पालन करने से यह क्रिया और अधिक लाभकारी एवं प्रभावशाली हो जाती है विशेष रुप से रोगी मनुष्यों को इन सावधानियों का पालन करने से रोग में लाभ प्राप्त होता है। **उषापान की प्रमुख सावधानियॉ :**

(1) उषापान में अधिक ठंडे जल का प्रयोग नही करना चाहिए। विशेष रुप से ठंड के मौसम में एवं कफ दोष से ग्रस्त रोगियों को गर्म अथवा गुनगुने जल का ही सेवन करना चाहिए।

(2) उषापान सदैव सूर्योदय पूर्व एवं खाली पेट करना चाहिए।

(3) उषापान के 45 मिनट तक कोई भी ठोस अथवा द्रव आहार ग्रहण नही करना चाहिए।

(4) उषापान से पूर्व चाय आदि पेय पदार्थों का प्रयोग नही करना चाहिए।

प्रिय पाठकों, जल के आन्तरिक प्रयोग के अन्तर्गत दूसरी प्रमुख किया वमन आती है। यद्यपि आयुर्वेद शास्त्र के पंचकर्म प्रकरण में वमन क्रिया का उपदेश रोगी व्यक्तियों के रोग को ठीक करने के लिए किया गया है किन्तु यौगिक ग्रन्थों में शरीर शोधर्नाथ स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य को उन्नत बनाने के उद्देश्य हेतु वमन क्रिया को वर्णित किया गया है। वमन क्रिया का सविस्तार वर्णन इस प्रकार है –

**4.3.2 वमन**–प्रिय पाठकों, उषापान के समान वमन क्रिया भी प्रातःकाल सूर्योदय पूर्व खाली पेट किया जाने वाला अभ्यास है। यह अभ्यास उदर में स्थित विषाक्त पदार्थो को बाहर निकालने के साथ साथ शरीर में पित्त दोष की विषमता को भी दूर करता है। वमन क्रिया का वर्णन आयुर्वेद के पंचकर्म चिकित्सा प्रकरण के अन्तर्गत एवं हठयोग के षट्कर्म प्रकरण के अन्तर्गत किया गया है। इस क्रिया की विधि इस प्रकार है –

**विधि :** वमन के लिए साफ स्वच्छ जल को उबालने के उपरान्त इसमे हलकी मात्रा में नमक मिलाते हैं। वमन क्रिया हेतु जल में नमक की इतनी मात्रा मिलाते हैं कि जल का स्वाद ऑसु के समान नमकीन हो जाए। वमन क्रिया को अधिक सरल एवं प्रभावी बनाने हेतु जल में आधा नींबू के रस को भी मिलाया जा सकता है, इससे वमन करने में असानी रहती है एवं शोधन क्रिया भी अधिक होती है।

अब इस जल का तापक्रम सामान्य अर्थात पीने योग्य होने पर अपनी क्षमतानुसार चार से आठ गिलास की मात्रा को कागासन में बैठकर पी लेते हैं। अब खडे होकर 90 डिग्री के कोण पर झुककर बाएं हाथ से पेट को दबाते हुए दाहिने हाथ की बीच की दो अंगुलियों से जीभ को घर्षण करते हैं। ऐसा करने से मुख से पीया हुआ जल वमन के रुप में बाहर निकलने लगता है। धीरे धीरे सहजता पूर्वक पेट में स्थित जल की पूरी मात्रा वमन के रुप में बाहर निकाल देते हैं। अभ्यास के प्रारम्भ में जल की कम मात्रा वमन के रुप में बाहर निकलती है किन्तु अभ्यास होने पर जल की पूरी मात्रा सहजतापूर्वक उदर से बाहर निकल जाती है।

**वमन क्रिया के लाभ :** वमन क्रिया के अभ्यास से पेट में स्थित प्रकुपित पित्त के साथ साथ अन्य अपच अन्न भी बाहर निकल जाता है। इस क्रिया के अभ्यास से आमाश्य का शोधन होता है एवं पाचन तंत्र की क्रियाशीलता बढती है। अम्लपित्त, पेट में जलन, पेट में भारीपन, गैस एवं सिरदर्द रोगों से ग्रस्त रोगियों को वमन क्रिया का अभ्यास कराने से रोगों में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। इसके साथ साथ शरीर में पित्त दोष की विषमता, पेट में एसिड की अधिक मात्रा (एसिडिटी), मुँह में खट्टा पानी एवं सीने में जलन रोग से ग्रस्त रोगियों के लिए भी वमन क्रिया का अभ्यास लाभकारी प्रभाव रखता है।

इस क्रिया का अभ्यास प्रातःकाल नियमित अन्तराल पर करने से शरीर में त्रिदोष सम बने रहते हैं एवं इन दोषों की विकृति से उत्पन्न रोग नही होते हैं। स्वस्थ व्यक्ति द्वारा इस क्रिया का अभ्यास करने से उसका पाचन तंत्र स्वच्छ एवं क्रियाशील बनता है एवं पाचक रसों का स्रावण संतुलित रुप में होता रहता है।

**वमन क्रिया की सावधानियॉं :** प्रिय विधार्थियों, वमन एक लाभकारी अभ्यास है किन्तु इस अभ्यास में निम्न सावधानियों का पालन अवश्य करना चाहिए –

(1) वमन क्रिया का अभ्यास अल्सर, ऑतों में सूजन, संक्रमण, उच्च रक्तचाप एवं मानसिक तनाव से ग्रस्त रोगी को नही कराना चाहिए।

(2) इन रोगियों को अधिक आवश्यक होने पर सामान्य तापक्रम के जल का प्रयोग करते हुए, जल में नमक के स्थान पर सौंफ का प्रयोग करते हुए एवं योग्य चिकित्सक के निर्देशन में ही वमन क्रिया का अभ्यास करना चाहिए।

(3) स्वस्थ व्यक्ति को वमन क्रिया का अभ्यास प्रतिदिन नही करना चाहिए अपितु आवश्यक्ता अनुभव होने पर सप्ताह में एक अथवा दो बार ही वमन क्रिया का अभ्यास करना चाहिए।

(4) महिलाओं को मासिक स्राव की अवस्था में एवं गर्भावस्था में वमन क्रिया का अभ्यास नही करना चाहिए।

(5) प्रारम्भ में वमन क्रिया का अभ्यास योग्य एवं कुशल निर्देशन में ही करना चाहिए।

**4.3.3 शंख प्रक्षालन–**प्रिय पाठकों, मानव शरीर के अन्दर उदर प्रदेश में ऑतें शंख के समान संरचना में स्थित होती हैं। इन शंख के समान आकृति में स्थित ऑतों को धोने की क्रिया के रुप में शंख प्रक्षालन क्रिया का उल्लेख यौगिक गन्थों में किया गया है। शंख प्रक्षालन क्रिया के अन्तर्गत गुनगुने नमकीन जल का सेवन करने के उपरान्त निश्चित आसनों का अभ्यास किया जाता है। इस अभ्यास की विधि इस प्रकार है –

**विधि :** शंख प्रक्षालन क्रिया का अभ्यास वमन क्रिया के समान प्रातःकाल के समय खाली पेट एवं नमकीन जल से किया जाता है। इस क्रिया के अभ्यास के लिए पूर्व की भांति तैयार गुनगुने नमकीन जल को कागासन में बैठकर चार से छह गिलास की मात्रा में पी लेते हैं। अब पांच आसनों & ताड़ासन, तिर्यक ताड़ासन, कटिचक्रासन, तिर्यक भुजंगासन एवं उदरार्कषण आसन का अभ्यास करते है। इन आसनों का अभ्यास करने के उपरान्त पुनः कागासन में बैठकर चार से छह गिलास जल की मात्रा पीते हैं। जल पीने के उपरान्त पुनः उपरोक्त आसनों की पुनरावृत्ति करते हैं। इस प्रकार आसनों का अभ्यास करने से जल सम्पूर्ण पाचन तंत्र से होता हुआ अधोमार्ग अर्थात बडी ऑत के माध्यम से शरीर से बाहर निकलने लगता है। इस क्रिया में पहले दूषित जल विषाक्त मल पदार्थों के साथ बाहर निकलता है। शंख प्रक्षालन क्रिया में जल पीकर आसनों के अभ्यास की क्रिया तब तक दोहराते रहते हैं जब तक कि शौच के रुप में साफ स्वच्छ जल शरीर से उत्सर्जित होने नही होने लगता है।

**शंख प्रक्षालन क्रिया के लाभ :** इस क्रिया के अभ्यास से सम्पूर्ण पाचन तंत्र का शोधन होता है। पेट के अन्दर स्थित पुराना मल पदार्थ शरीर से बाहर निकल जाता है। कब्ज रोग को दूर करने में यह अभ्यास अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं लाभकारी प्रभाव रखता है। पेट दर्द, गैस, अपच, भूख नही लगने जैसे रोगों में इस अभ्यास से लाभ प्राप्त होता है। इस क्रिया का अभ्यास करने से ऑतें साफ एवं स्वच्छ बनती हैं एवं ऑतों में पाचक रसों का स्रावण सुव्यवस्थित होता है। योग शास्त्रों में इस क्रिया के लाभकारी प्रभाव के आधार पर इसे कल्पकारी क्रिया कहा गया है।

**शंख प्रक्षालन क्रिया की सावधानियॉ :**

शंख प्रक्षालन क्रिया के अभ्यास में निम्न सावधानियों का पालन करना अनिवार्य होता है –

(1) अल्सर, ऑतों में सूजन, संक्रमण एवं ऑतों के कैन्सर से ग्रस्त रोगी को शंख प्रक्षालन क्रिया का अभ्यास नही कराना चाहिए अपितु इन रोगों से ग्रस्त रोगियों को चिकित्सक की देख रेख में लघु शंख प्रक्षालन करना चाहिए।

(2) शंख प्रक्षालन क्रिया के उपरान्त अभ्यासी व्यक्ति को मिर्च एवं मसालों का प्रयोग पूर्ण रुप से वर्जित रखना चाहिए।

(3) शंख प्रक्षालन क्रिया के उपरान्त अभ्यासी व्यक्ति को मूंग की दाल की सादी खिचडी में गाय का घी डालकर देनी चाहिए।

(4) शंख प्रक्षालन क्रिया के तीन दिनों तक दूध एवं दूध से बने पदार्थों का सेवन पूर्ण रुप से वर्जित होता है तथा इसके उपरान्त कम से कम एक सप्ताह तक बिना मिर्च मसाले का हल्का आहार लेना के उपरान्त सामान्य आहार ग्रहण करना चाहिए।

जिज्ञासु पाठकों, इस प्रकार प्रातःकाल खाली पेट विभिन्न विधियों द्वारा जल का आन्तरिक प्रयोग से शरीर की आन्तरिक सफाई भलि भांति होती है। दूसरे शब्दों में शरीर के आन्तरिक शोधन में जल का आन्तरिक प्रयोग बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जल के आन्तरिक प्रयोग के क्रम में पाचन तंत्र के शोधन हेतु आयुर्वेद शास्त्र एवं योग शास्त्र में वस्ति कर्म एवं प्राकृतिक चिकित्सा में एनीमा क्रिया का वर्णन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यद्यपि ये दोनों कर्म मूल रुप से लगभग समान है तथा इनमें केवल विधिभेद का ही अन्तर होता है। वर्तमान समय चिकित्सा के क्षेत्र में वस्ति कर्म की तुलना में एनीमा क्रिया का प्रयोग अधिक व्यवहारिक एवं व्यापक रुप में हो रहा है अतः अब हम एनीमा क्रिया पर विचार करते हैं –

**4.3.4 एनीमा–** प्रिय पाठकों, पाचन तंत्र शरीर का वह महत्वपूर्ण तंत्र है जिसे माध्यम से सम्पूर्ण शरीर ऊर्जा प्राप्त करता है। इस तंत्र के स्वस्थ एवं सक्रिय रहने पर शरीर ऊर्जावान एवं स्वस्थ रहता है जबकि इस तंत्र में विकार उत्पन्न होने पर शरीर ऊर्जाहीन एवं रोगी हो जाता है। पाचन तंत्र का शोधन करने के उद्देश्य से एनीमा क्रिया का अभ्यास रोगी को कराया जाता है। इस क्रिया की विधि इस प्रकार है –

**विधि :** एक विशेष आकार के एनीमा पात्र में हल्का गुनगुना अथवा सामान्य तापक्रम का एक से डेढ लीटर जल भर लेते हैं। अब एनीमा कक्ष में रोगी अथवा एनीमा लेने के लिए व्यक्ति को तख्त पर लिटाकर विधिपूर्वक एवं सावधनीपूर्वक एनीमा कैथेटर के माध्यम से यह जल बडी ऑत में भर देते हैं। बडी ऑत में प्रर्याप्त जल भरने के उपरान्त अभ्यासी व्यक्ति कुछ समय (पॉच से पन्द्रह मिनट) टहलने के उपरान्त शौच रुप में जल को उत्सर्जित कर देता है।

**प्राकृतिक चिकित्सा में प्रयुक्त एनीमा यन्त्र**

**एनीमा क्रिया के लाभ :** एनिमा बहुत लाभकारी एवं प्रभावकारी क्रिया है। यह अभ्यास विभिन्न रोगों को दूर करने में लाभकारी प्रभाव रखती है। इस क्रिया के कुछ महत्वपूर्ण लाभ इस प्रकार हैं –

(1) एनिमा क्रिया के अभ्यास से बडी ऑत की शुद्धि होती है। ऑतों के अन्दर स्थित पुराना मल पदार्थ बाहर निकलता है।

(2) एनीमा क्रिया का अभ्यास कब्ज रोग में विशेष लाभकारी प्रभाव रखता है।

(3) एनिमा क्रिया से ऑतें मलहीन, साफ, स्वच्छ एवं सक्रिय बनती हैं, इस अभ्यास के फलस्वरुप पाचक रसों का स्रवण बढता है जिससे भूख अच्छी लगती है एवं पाचन क्रिया सुव्यवस्थित होती है।

(4) एनीमा क्रिया पेट दर्द, गैस, जलन, अफारा, पेट का भारीपन आदि पाचन तंत्र से सम्बन्धित रोगों में लाभकारी प्रभाव रखती है।

(5) एनीमा क्रिया के प्रभाव से यकृत एवं पैन्क्रियाज की क्रिया शीलता बढती है जिससे इन अंगों से सम्बन्धित रोग जैसे यकृत शोथ एवं मधुमेह आदि में लाभ मिलता है।

**एनीमा क्रिया की सावधानियॉ :**

एनीमा क्रिया में निम्न सावधनियों का पालन अवश्य करना चाहिए –

(1) एनीमा क्रिया में स्वच्छता का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

(2) एनीमा क्रिया का अभ्यास सदैव खाली पेट ही करना चाहिए।

(3) एनीमा क्रिया में प्रयुक्त जल का तापक्रम बहुत अधिक नही होना चाहिए।

(4) रोगी मनुष्य को कुशल चिकित्सक के निर्देशन में ही एनीमा क्रिया करनी चाहिए।

(5) ऑतों में सूजन, संक्रमण, बावासीर रोग में एनीमा क्रिया नही करनी चाहिए।

(6) सामान्य रुप से स्वस्थ मनुष्य को एनीमा क्रिया का अभ्यास प्रतिदिन नही करना चाहिए।

जिज्ञासु पाठकों, अभी तक आपने जल के प्रातःकालीन खाली पेट प्रयोग की विभिन्न विधियों का ज्ञान प्राप्त किया तथा जाना कि प्रातःकाल विभिन्न विधियों से जल ग्रहण करने से शरीर का भलि प्रकार शोधन होता है इसके फलस्वरुप शरीर आन्तरिक रुप से स्वच्छ बनता है एवं विभिन्न प्रकार के रोगों से मुक्ति मिलती है लेकिन जल तत्व का आन्तरिक प्रयोग केवल प्रातःकाल ही नही किया जाता है अपितु इसका प्रयोग दिन भर नियमित अन्तराल पर जलपाल के रुप में, पेय के रुप में एवं भोजन के साथ जल सेवन के रुप में किया जाता है। अतः अब हम दैनिक प्रयोग में जल सेवन के विधि पर विचार करते हैं –

**4.3.5 जल सेवन–**प्रिय पाठकों, चिकित्सा विज्ञान के अनुसार एक स्वस्थ व्यक्ति को तीन से पॉच लीटर जल का सेवन प्रतिदिन करना चाहिए। जल की इस मात्रा का सेवन करने से शरीर में जल तत्व सम मात्रा में बना रहता है एवं शरीर स्वस्थ रहता है जबकि इससे कम मात्रा में जल का सेवन करने से शरीर का शोधन भलि भांति नही हो पाता है एवं शरीर की चयापचय दर असंतुलित हो जाती है। इसके परिणाम स्वरुप अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति होती है। जल सेवन की मात्रा गर्मी, सर्दी आदि मौसम, कार्य की स्थिति एवं भोजन की प्रकृति पर निर्भर करती है। सर्दी की तुलना में गर्मी के दिनों में शरीर को अधिक जल की आवश्यक्ता पडती है। इसी प्रकार कठिन शरीरिक श्रम करने में भी शरीर को जल की अधिक मात्रा की आवश्यक्ता होती है। भोजन की प्रकृति अर्थात रुक्ष–शुष्क आहार एवं रसीय आहार पर भी जल सेवन की मात्रा निर्भर करती है। रुक्ष–शुष्क आहार के सेवन के साथ अधिक मात्रा में जल की आवश्यक्ता होती है जबकि रसीय आहार के साथ जल की कम मात्रा का सेवन किया जाता है। भोजन के साथ जल सेवन की विधि का हमारे

स्वास्थ्य पर सीधा प्रभाव पडता है। इस संदर्भ में विभिन्न चिकित्सक अपने अपने दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। भोजन के साथ जल सेवन की सही विधि को वर्णित करते हुए आचार्य चाणाक्य कहते हैं

अजीर्णे भेषजं वारि जीर्णे वारिबल प्रदम्।।
भोजने चामृतंवारि भोजनान्ते विषप्रदम्।।

( चा0 नि0 अ0 9 श्लोक 6)

अर्थात भोजन से पूर्व कुछ मात्रा में जल का सेवन करना अमृत के समान गुणकारी है। भोजन के मध्य में थोडी थोडी मात्रा में जल का सेवन करना औषधि के समान लाभकारी प्रभाव रखता है किन्तु भोजन के अंत में जल का सेवन करना विष के समान हानिकारक प्रभाव रखता है।

आचार्य चाणाक्य के उपरोक्त सूत्र के संर्दभ में समान मत प्रस्तुत करते हुए चिकित्सक स्पष्ट करते हैं कि भोजन करने से दस से पन्द्रह मिनट पूर्व थोडी मात्रा में गर्म अथवा गुनगुने जल का सेवन करने से पाचक रसों का स्रावण बढ जामा है एवं जठराग्नि त्रीव होती है। भोजन के साथ थोडी थोडी मात्रा में जल सेवन करने से भोजन की अच्छी लुगदी (पेस्ट) तैयार होती है जिससे भोजन का पाचन अच्छी प्रकार होता है। किन्तु भोजन के तुरन्त बाद जल का सेवन करने से भोजन को पचाने वाले पाचक रसों की सान्द्रता क्षीण हो जाती है जिससे भोजन का पाचन सही प्रकार नही हो पाता है एवं पेट में भारीपन, पेट दर्द, गैस एवं अपच आदि रोग उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार भोजन के तुरन्त बाद जल सेवन करना विष के समान हानिकारक होता है।

इसके साथ साथ जल सेवन में निम्न लिखित तथ्यों को भी ध्यान रखना चाहिए –

(1) सदैव साफ स्वच्छ जल का सेवन ही करना चाहिए तथा कभी भी अस्वच्छ, गन्दगीयुक्त एवं संक्रमित जल का सेवन नही करना चाहिए।

(2) जल की कम मात्रा का सेवन करने से शरीर की भलि प्रकार सफाई नही हो पाती है जिससे विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं अतः स्वस्थ रहने के लिए प्रतिदिन कम से कम तीन लीटर जल का सेवन अवश्य करना चाहिए।

(3) कठिन शारीरिक श्रम एवं यात्रा से आने पर तुरन्त ठंडे जल का सेवन नही करना चाहिए।

(4) गर्मी के दिनों में अधिक ठंडे जल का सेवन नही करना चाहिए, विशेष रुप से फ्रिज के ठंडे जल सेवन करने से अनेक प्रकार की वात व्याधियॉ एवं अन्य रोग उत्पन्न होते हैं।

(5) शरीर में कफ दोष की विकृत अवस्था में ठंडे जल के स्थान पर गुनगुने अथवा गर्म जल का सेवन करना चाहिए। सर्दी–जुकाम एवं खॉसी आदि कफ सम्बंधी रोगों में गर्म जल का सेवन करने से लाभ प्राप्त होता है।

(6) जुकाम होने की अवस्था में गुनगुना अथवा गर्म जल पीने एवं गुनगुने जल में नमक मिलाकर स्नान करने से जुकाम रोग में आराम मिलता है।

इस प्रकार जल का आन्तरिक प्रयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण क्रिया है। यद्यपि जल का आन्तरिक प्रयोग प्रत्येक मनुष्य अत्यन्त व्याव्हारिक रुप में करता है किन्तु जो मनुष्य इस आन्तरिक प्रयोग को सही विधिनुसार करता है वह पूर्ण रुप से स्वस्थ, सक्रिय एवं रोगमुक्त

बना रहता है जबकि जल के आन्तरिक प्रयोग को अवैज्ञानिक एवं अनुचित ढंग से प्रयोग करने पर नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं।

**अभ्यास हेतु प्रश्न –**

1– **सत्य असत्य**

**(क)** जल तत्व का आन्तरिक प्रयोग केवल प्रातःकाल ही किया जाता है।

**(ख)** उषापान सदैव सूर्यादय पूर्व ही करना चाहिए।

**(ग)** स्वस्थ व्यक्ति को वमन क्रिया का अभ्यास प्रतिदिन करना चाहिए।

**(घ)** भोजन से पूर्व कुछ मात्रा में जल का सेवन करना अमृत के समान गुणकारी होता है।

**(ङ)** जुकाम होने की अवस्था में गर्म जल पीने एवं गुनगुने जल में नमक मिलाकर स्नान करने से जुकाम रोग में आराम मिलता है।

**2– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :**

**(क)** मानव शरीर का –––––––– प्रतिशत भाग जल तत्व ही है।

**(ख)** उषापान क्रिया में रात्रिकाल में ––––––– के जग में रखे जल का सेवन करना चाहिए।

**(ग)** वमन क्रिया का वर्णन आयुर्वेद के –––––– चिकित्सा प्रकरण के अन्तर्गत एवं हठयोग के ––––––– प्रकरण के अन्तर्गत किया गया है।

**(घ)** शंख प्रक्षालन क्रिया के उपरान्त ––––––– दिनों तक दूध एवं दूध से बने पदार्थों का सेवन पूर्ण रुप से वर्जित होता है।

**(ङ)** कठिन शारीरिक श्रम एवं यात्रा से आने पर तुरन्त –––––– जल का सेवन नही करना चाहिए।

3– **एक शब्द में उत्तर दीजिए –**

**(क)** प्रातःकाल सूर्योदय पूर्व जल का पेय के रुप में प्रयोग करने की क्रिया क्या कहलाती है ?

**(ख)** प्रातःकाल खाली पेट गुनगुना जल पीकर उसे तुरन्त मुख मार्ग से बाहर निकालने की क्रिया क्या कहलाती है ?

**(ग)** शंख प्रक्षालन क्रिया में गुनगुने नमकीन जल को पीकर कितने आसनों का अभ्यास किया जाता है ?

**(घ)** भोजन के मध्य में थोडी थोडी मात्रा में जल सेवन करना कैसा प्रभाव रखता है ?

**(ङ)** एनीमा क्रिया का अभ्यास किस रोग में विशेष लाभकारी प्रभाव रखता है ?

**4–बहुविकल्पीय प्रश्न –**

**(क)** उषापान किस रोग में लाभकारी क्रिया है –

(a) कब्ज (b) सिर दर्द

(c) रक्तचाप (d) सभी ।

**(ख)** चिकित्सा विज्ञान के अनुसार एक स्वस्थ व्यक्ति को कितने लीटर जल का सेवन प्रतिदिन करना चाहिए –

(a) एक से दो (b) दो से चार

(c) तीन से पॉच (d) आधा से एक।

**(ग)** भोजन के उपरान्त तुरन्त जल सेवन करना कैसा प्रभाव रखता है –

(a) अमृत के समान गुणकारी (b) विष के समान हानिकारक

(c) औषधि के समान लाभकारी (d) कोई प्रभाव नही ।

**(घ)** मावन शरीर में ऑतें किसके समान संरचना बनाती हैं –

(a) शंख के समान (b) गेंद के समान

(c) घडे के समान (d) पिरामिड के समान ।

**(ड)** शरीर में कफ दोष की विकृत अवस्था में क्या करना चाहिए –

(a) ठंडे जल से स्नान (b) गर्म जल का सेवन

(c) ठंडे जल का सेवन (d) सभी ।

## 4.4 सारांश–

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई का प्रारम्भ जल के आन्तरिक प्रयोग की प्रमुख विधियों के साथ किया गया है। इकाई में उषापान, वमन, शंख प्रक्षालन, एनिमा एवं जलपान नामक पॉच प्रमुख कियाओं की वैज्ञानिक विधियों, लाभों एवं सावधनियों को स्पष्ट किया गया है। इकाई में समझाया गया है कि उषापान जो कि भारतीय समाज में प्राचीन काल से प्रचलित क्रिया है, इसमें रात्रिकाल में तॉबें के जग में रखे एक सक दो लीटर जल का सेवन प्रातःकाल खाली पेट किया जाता है। इस क्रिया के प्रभाव से रात्रि विश्राम काल में शरीर में एकत्र विजातीय विषों के निष्कासन की क्रिया त्रीव होती है एवं शरीर स्वस्थ व ऊर्जावान बनता है। इसके साथ साथ प्रातःकाल खाली पेट ही की जाने वाली दूसरी लाभकारी क्रिया वमन पर प्रकाश डाला गया है जिसमें गुनगुने नमकीन जल का सेवन करने के तुरन्त बाद उसे बाहर निकाल देते हैं। इस किया के प्रभाव से अम्लपित्त, पेट में जलन, गैस, अपच एवं सिरदर्द आदि रोगों से मुक्ति मिलती है।

इकाई में आगे जल तत्व के आन्तरिक प्रयोग के अर्न्तगत सम्पूर्ण पाचन तंत्र के शोधन की क्रिया शंख प्रक्षालन पर प्रकाश डाला गया है। इस क्रिया में गुनगुने नमकीन जल के सेवन के उपरान्त पॉच निश्चित आसनों का अभ्यास किया जाता है। इसके अतिरिक्त इकाई में गुनगुने नमकीन जल को बडी ऑत में ग्रहण करने की क्रिया एनीमा को समझाया गया है। इकाई में जल के आत्मरिक प्रयोग की सबसे प्रमुख एवं व्यवहारिक क्रिया जलपान को स्पष्ट किया गया है। इकाई के अंत में जल प्रयोग के कुछ महत्वपूर्ण एवं लाभकारी तथ्यों पर प्रकाश डालते हुए इकाई को पूर्ण किया गया है।

## 4.5 पारिभाषिक शब्दावली–

| | |
|---|---|
| उदर प्रदेश | पेट का क्षेत्र |
| प्रकरण | भाग अथवा अध्याय |
| शरीर शोधर्नाथ | शरीर का शोधन अर्थात सफाई करने के उद्देश्य से |
| प्रक्षालन | धोने की क्रिया |
| विधि विधानहीन | शास्त्रों में वर्णित सिद्धान्तों के प्रतिकूल |
| निष्कासन | बाहर निकालने की क्रिया |
| जठराग्नि | भोजन को पचाने वाली उष्मा अथवा ऊर्जा |

## 4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

| | | | |
|---|---|---|---|
| क. असत्य | क. 70 | क. उषापान | क. d |
| ख. सत्य | ख. तॉबें (कापर) | ख. वमन | ख. c |
| ग. असत्य | ग. पंचकर्म, षट्कर्म | ग. पॉच | ग. b |
| घ. सत्य | घ. तीन | घ. औषधि के समान | घ. a |
| ड. सत्य | ड. ठंडे | ड. कब्ज | ड. b |

## 4.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

15. प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – डॉ0 राकेश जिन्दल, आरोग्य सेवा प्रकाशन, मोदी नगर (उ0प्र0) ।
16. प्राकृतिक चिकित्सा – डॉ0 टी0 एन0 श्रीवास्तव, मैत्रेयी प्रकाशन, नई दिल्ली।
17. प्राकृतिक चिकित्सा – रामगोपाल शर्मा, प्रभात पेपरबैक्स , नई दिल्ली।
18. प्राकृतिक उपचार की विधियाँ – डॉ0 राजीव रस्तोगी, पापुलर बुक डिपो जयपुर।
19. घेरण्ड संहिता – स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, बिहार योग विधालय मुँगेर।

## 4.8 सहायक पाठ्य सामग्री

1 कल्याण आरोग्य अंक (जनवरी एवं फरवरी 2001 ई0) – गीता प्रेस गोरखपुर।
2. असाध्य रोगों की सरल चिकित्सा – डॉ0 नागेन्द्र कुमार नीरज,
3 मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान– प्रो0 अनन्त प्रकाश गुप्ता, सुमित प्रकाशन, आगरा।
4. वैकल्पिक चिकित्सा – डा0 राजकुमार प्रुथी, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली।
5. वैकल्पिक चिकित्सा – डा0 आर0 एस0 विवेक , डायमण्ड पाकेट बुक्स, नई दिल्ली।

## 4.9 निबन्धात्मक प्रश्न–

1. जल के आन्तरिक प्रयोग की विभिन्न विधियों को सविस्तार समझाइये।
2. जल के आन्तरिक प्रयोग पर निबन्ध लिखिए।
3. निम्न लिखित के विषय में लिखिए –

(क) उषापान (ख) शंखप्रक्षालन
(ग) वमन (घ) एनीमा ।

# इकाई 5 पाचन तंत्र एवं श्वसन तंत्र के रोगों की जल चिकित्सा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 जल की महत्ता
5.4 पाचन तंत्र का परिचय
5.4.1 पाचन तंत्र के रोग – कब्ज
5.4.2 अजीर्ण
5.4.3 बवासीर
5.4.4 दस्त और संग्रहणी
5.5 श्वसन तंत्र का परिचय
5.5.1 श्वसन तंत्र के रोग – ब्रोन्काइटिस
5.5.2 साइनोसाइटिस
5.5.3 दमा
5.6 पाचन तंत्र एवं श्वसन तंत्र के रोगों की जल चिकित्सा पद्धतियाँ
5.7 सारांश
5.8 पारिभाषिक शब्दावली
5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
5.11 निबंधात्मक प्रश्न

## 5.1 प्रस्तावना

प्राणी जगत के जीवन का आधार भोजन, जल एवं वायु को माना गया है। इसके बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। जल एवं भोजन – पाचन तंत्र से और वायु – श्वसन तंत्र से संबंधित होती है।

आज के भौतिकवादी युग में गलत आहार – विहार के कारण पाचन एवं श्वसन तंत्र के अनेकानेक रोग मानव शरीर में परिलक्षित होते हैं। जैसे–जैसे इन तत्वों में विकार उत्पन्न होता जा रहा है वैसे–वैसे रोगों की संख्या भी दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जल चिकित्सा की सही जानकारी एवं उपयोग से इन बहुमूल्य उपहारों का अधिकतम लाभ प्राप्त कर सकते हैं। प्रस्तुत इकाई में हम जल चिकित्सा द्वारा पाचन तंत्र एवं श्वसन तंत्र के रोगों का उपचार सीखेंगे।

## 5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई द्वारा आप जल चिकित्सा के विभिन्न पहलुओं को जान पायेंगेः–

1. पाचन तंत्र एवं श्वसन तंत्र को आसानी से समझ सकेंगे।
2. पाचन तंत्र से संबंधित रोगों की जानकारी प्राप्त करेंगे।
3. श्वसन तंत्र से संबंधित रोगों की जानकारी प्राप्त करेंगे।

4. पाचन व श्वसन तंत्र रोगों के लक्षण एवं कारण जान सकेंगे और
5. जल चिकित्सा द्वारा उपचार जान सकेंगे।

## 5.3 जल की महत्ता

हम सभी जानते हैं कि जल ही जीवन का आधार होता है। प्राकृतिक चिकित्सा के अंर्तगत पंच तत्वों क्रमशः आकाश, वायु, जल, पृथ्वी तथा अग्नि के द्वारा उपचार किया जाता है। वस्तुओं को गीला करना, मिट्टी आदि को पिण्डाकार बना देना, तृप्त करना, प्राणियों को जीवित रखना, प्यास बुझाना पदार्थो को मृदु कर देना, ताप की निवृत्ति करना, सब प्रकार की स्वच्छता प्रदान करना और कुओं, तालाब, झीलों आदि में से निकाल लिये जाने पर उन्हें पुनः भर देना ये जल की विशेषताएं हैं। इसलिए कहा गया है – जल ही जीवन है।

**मनु जी ने भी लिखा है –**

अद्धिर्गात्राणि शुध्यति। विद्यातपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिज्ञानेन शुध्यति।।

अर्थात जल से शरीर शुद्ध होता है, सत्य से मन, विद्या और तप से आत्मा तथा बुद्धि से ज्ञान शुद्ध होता है।इस प्रकार हम देखते हैं कि जल, प्राण–रक्षा के लिए प्रसिद्ध पंच तत्वों में चौथा तत्व है। यह जीवन के लिए उतना ही आवश्यक है जितना श्वास लेने के लिये वायु। हमारे शरीर के वजन के 100 भागों में से 70 भाग केवल जल है, अर्थात हमारी आँखों में 98.7 प्रतिशत, फेफडों में 79 प्रतिशत, हृदय में 79.5 प्रतिशत, रक्त में 80 प्रतिशत, हड्डियों में 25 प्रतिशत और मस्तिष्क में 90 प्रतिशत जल होता है। अतः जल ही हमारा जीवन रक्षक है।

## 5.4 पाचन तंत्र का परिचय :

पाचन संस्थान में शरीर के वे सभी अवयव आते हैं जो होंठ से लेकर गुदा द्वार और मूत्र–द्वार तक स्थित हैं। अर्थात मुख–द्वार, अन्न नलिका, अमाशय, यकृत, पित्ताशय, बड़ी आंत, छोटी आंत, मूत्राशय, मलाशय तथा गुदा।

**पाचन संस्थान के रोगों का कारण**

पाचन–संस्थान के जितने भी रोग हैं, सबके सब असंयम और आहार विहार की गड़बड़ी से ही उत्पन्न होते हैं, विशेषकर अनियमित मल–मूत्र त्यागने, अनियमित भोजन करने, पूरी नींद न लेने, पानी कम पीने, मानसिक चिन्ता करने, अप्राकृतिक और अधिक तली भुनी चीजें–खाने, भूख से अधिक खाने, बिना भूख के खाने, भूख से कम खाने, बिना चबाये खाने, उत्तेजक दवाईयों के सेवन करने, नियमित रूप से कोई व्यायाम न करने तथा कभी–कभी उपवास न करने से शरीर में पाचन–संस्थान का कोई न कोई रोग अवश्य हो जाता है।

### 5.4.1 पाचन तंत्र के रोग – कब्ज

कब्ज आज की आधुनिक सभ्यता का रोग है। कब्ज को कोष्टबद्धता, विबंध, मलबंध, मलावरोध, आनाहा तथा विष्टबद्धता आदि कई नामों से जाना जाता है। अंग्रेजी में इसे कॉन्स्टीपेशन कहते हैं। मल जब बड़ी आंत में जमा हो जाता है और किसी भी कारण से अपने रास्ते से बाहर नहीं निकलता बल्कि वहीं पड़ा–पड़ा सड़ा करता है तो उसे कब्ज होना कहते हैं। कुछ लोगों को रोज दस्त होते रहने पर भी कब्ज बना रहता है, और कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जिन्हे दो–दो दिन के बाद में एक बार दस्त होने पर भी कब्ज नहीं रहता। इसलिये हम में से बहुतों को यह मालूम नहीं रहता कि कब कब्ज रहता है और कब नहीं? परंतु यह सत्य है कि आज 99 प्रतिशत व्यक्ति इस रोग के शिकार हैं।

कोष्ठबद्धता को सब रोगों का जन्मदाता कहा जाता है। इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है। कब्ज होने पर बहुत से लोग जुलाब लेते हैं। किन्तु अनुभव से जाना गया है कि यह प्रयोग अंतड़ियो के लिए अत्यन्त हानिकारक है। चिकित्सकों की राय में सदैव जुलाब लेना भी कब्ज पैदा करता है। इसलिए कब्ज में जुलाब न लेकर यदि पहले गुनगुने पानी का तत्पश्चात ठंडे पानी का एनिमा कुछ दिनों तक लिया जाये तो बहुत लाभकारी सिद्ध होता है। यह विचार गलत है कि एनिमा लेने से एनिमा की आदत पड़ जाती है।

**लक्षण :**

1. कब्ज के रोगी को पाखाना साफ नहीं होता है।
2. हमेशा सुस्ती छाई रहती है।
3. पेडू कठोर और पेट भारी रहता है।
4. सिर में दर्द रहा करता है।
5. नींद ठीक से नहीं आती।
6. भूख खुलकर नहीं लगती तथा उसे अन्य कई रोग रहते हैं।

**कारण :**

1. खान–पान का असंयम कब्ज का मूल कारण है।
2. अनाप–शनाप खाते रहना, ठूस–ठूस कर खाना, बिना भूख के खाना, तथा भोजन संबंधी अन्य नियमों के पालन न करने से कोष्ठबद्धता की शिकायत अवश्यम्भावी है।
3. जल का सेवन सामान्य मात्रा से कम करना।
4. अत्यधिक तला–भूना व गरिष्ठ भोजन करना।
5. अनियमित दिनचर्या।

**सामान्य चिकित्सा :**

नीचे कब्ज दूर करने के लिये कुछ उपचार दिये जा रहे हैं जिनको विधिवत् अपनाने से पुराने से पुराना कब्ज भी कुछ दिनों में दूर किया जा सकता हैः–

1. जिन कारणों से कब्ज होता है उनको सर्वप्रथम दूर करना चाहिये।
2. एक दिन केवल जल पीकर उपवास करना चाहिये फिर दो दिन तक रसाहार। इन दिनों दोनों वक्त एनिमा लेना चाहिये।
3. सुबह सोकर उठते ही उषापान (पानी पीना) करना चाहिये।
4. सप्ताह में एक दिन उपवास करने का नियम बना लेना चाहिये उस दिन ताजे जल में कागजी नींबू का रस मिलाकर काफी मात्रा में पीना चाहिये।
5. आधे गिलास ठंडे पानी में एक कागजी नींबू का रस डालकर दिन में 4 से 6 बार तक पीना इस रोग में लाभ करता है।
6. एनिमा द्वारा प्रातःकाल गुनगुने पानी से जिसमें दो–तीन बूंद कागजी नींबू का रस मिला हो, पेट साफ कर लेना चाहिये। इस प्रयोग को जब भी पेट भारी हो, करना चाहिये।
7. भोजन करने के आधा घंटा पहले थोड़ा गुनगुना पानी पीना लाभ करता है।
8. भोजन के साथ बहुत कम या बिलकुल ही न पिया जाये। भोजन करने के दो घंटे बाद इच्छानुसार जल पीना चाहिये।
9. प्रायः सायं को शक्ति अनुसार 5 से 20 मिनट तक कटि स्नान करना लाभकारी होता है।
10. नारंगी या पीली बोतल में बनाया हुआ सूर्य–तप्त जल 50 ग्राम दिन में तीन बार पीना चाहिये।

**5.4.2 अजीर्ण :**

आज के आधुनिकतम युग में भाग दौड़ भरी जिंदगी में यह रोग आम हो गया है। भोजन संबंधी अनियमितताओं के कारण, भोगवादी संस्कृति के कारण यह रोग दिनोंदिन फैलता ही जा रहा है। अजीर्ण को बदहजमी, अपच, मन्दानि तथा अग्निमान्द्य भी कहते हैं।

**लक्षण :**

1. खट्टी डकारें आना।
2. पेट फूलना।
3. पेट में मीठा–मीठा दर्द होना।
4. गले व हृदय में जलन होना।
5. मुंह में भीतर से पानी आना।
6. जी मचलाना।
7. दिल की धड़कन बढ़ जाना।
8. घबराहट।
8. दिमागी परेशानी।
9. पाखाना न होना या पतला होना तथा
10. भूख न लगना आदि।

**कारण :**

1. भोजन ठीक से न पचना।
2. भोजन चबा–चबाकर न खाना।
3. भोजन करते समय बातचीत करना।
4. प्रतिदिन 3 से 4 लीटर पानी का सेवन न करना।
5. आवश्यकता से अधिक भोजन करना।

**सामान्य चिकित्सा :**

अजीर्ण को समाप्त करने के लिए आप निम्न बातों को अवश्य ध्यान में रखें कि

1. तीन दिनों तक कागजी नींबू के रस को पानी में मिलाकर पीना चाहिये या फल के रस पर रहना चाहिये। गाजर, संतरा, टमाटर आदि के रस ठीक होते हैं।
2. इन दिनों गुनगुनें पानी का एनिमा भी एक समय या दोनों समय लेना जरूरी है। एक सप्ताह में दो–तीन बार एक–दो माह तक लेना चाहिये।
3. प्रतिदिन दो बार पेट को गरम पानी में तौलिया भिगो–भिगोकर 15 मिनट तक सेंके। बीच–बीच में 3–4 मिनट पर ठंडे पानी से भीगी तौलिया से भी एक मिनट तक सेकें। या भोजन के बाद एक–डेढ़ घण्टे तक पाक स्थली के ऊपर गरम जल की बोतल या थैली रखकर फेंरे या पेडू पेट और पीछे की तरफ मेरूदण्ड के निचले हिस्से पर गरम–ठंडी सेक दें।
4. रात भर के लिए पेडू पर गीले कपड़े की पट्टी रखें।
5. भोजन के एक घण्टा पहले एक गिलास ठंडे जल में एक कागजी नींबू का रस डालकर पींवें।
6. आवश्यकता होने पर सबल रोगी को समूचे शरीर की भीगी चादर की लपेट, वाष्प स्नान या भाप स्नान भी कराया जा सकता है जिससे जल्दी लाभ होता है।

7. कटि स्नान और मेहन स्नान विशेष कर गरम और ठण्डा कटि स्नान इस रोग में बड़ा लाभ करता है। 5 मिनट तक गरम पानी में कटि स्नान करने के बाद 3 मिनट तक ठंडे पानी में वही स्नान लेना चाहिये और इस क्रिया को 3–4 बार दोहराना चाहिये।

8. नीली बोतल के जल को जो सूर्य की किरणों में रखा गया हो की 4 खुराकें 50 ग्राम की प्रतिदिन पीनी चाहियें। इस प्रकार आप अजीर्ण रोग का सफलता पूर्वक निदान कर सकतें है।

### 5.4.3 बवासीर :

बवासीर या अर्श को अंग्रजी में Piles कहते हैं। तकलीफ की आरम्भिक अवस्था में गुदा द्वार की भीतरी और बाहरी नसों में खुजली और जलन मालूम होती है। जलन कभी भीतरी नस में होती है तो कभी बाहरी और कभी भीतरी और बाहरी दोनों नसों में। जिस जगह जलन और खुजली होती है वहां बिना मुंह के फोड़े की छोटी–छोटी गांठे जिनको मस्से भी कहते है निकली होती है जो आगे चलकर काफी बड़ी हो जाती है। ये ही जब फट जाती है और उनसे रक्त निकलने लगता है तो बवासीर खूनी कहलाती है। रक्तहीन बवासरी को बादी बवासीर कहते हैं।

गुदा के पास की नसों की अंतिम छोर में दूषित रक्त इक्ट्ठा हो जाने से धीरे–धीरे गंदा मांस की सृष्टि हो जाती है। यही बवासीर है। गुदा की पास की नसें या शिरायें शरीर की एक लम्बी रक्तवाही शिरा का सबसे निचला भाग है जिस पर मलमार्ग की पेशियॉ असाधारण अवस्था में अनावश्यक दबाव डाल कर उन शिराओं के रूधिर–प्रवाह में रूकावट डालती है, जिससे वे रक्त में भरकर सूज जाती है। जब मनुष्य की रीढ़ में कोई रोग होता है तो उसके गुदा मार्ग की शिराओं पर भार पड़ने से भी बवासीर के मस्सों की उत्पत्ति होती है। ये मस्से इस बात को प्रकट करते है कि शरीर विजातीय द्रव्य से लदा हुआ है, रक्त दूषित हो चुका है, तथा कोष्ठ में भरकर पुराना पड़ चुका है। बवासीर कोई रोग नहीं, अपितु रोग का लक्षण है। यह रोग सभ्य समाज का रोग है।

**लक्षण :**

1. कब्ज जब बराबर बना रहता है, तब आंतो में उसकी सड़न से गर्मी बढ़ जाती है।
2. गुदाप्रदेश में भारीपन का अनुभव होता है।
3. मल त्याग में कठिनाई और कष्ट होता है।
4. बैठने में कठिनाई होती है।
5. गुदा प्रदेश में जलन होती है।
6. मल के साथ खून आता है।
7. बैचेनी रहती है।

**कारण :** बवासीर का मूल कारण कब्ज के कारणों में से भी गहरा है, और यह भी है कि बवासीर के कारणों में से कब्ज होना सिर्फ एक कारण है। क्योंकि हर कब्ज के रोगी को बवासीर नहीं होती, परन्तु हर बवासीर के रोगी को कब्ज होना जरूरी है।

1. यकृत की खराबी।
2. उदर–विकार।
3. किसी प्रकार का रक्त–विकार आदि होना।
4. आंतो की झिल्ली कमजोर हो जाती है।
5. मैदा, डबल रोटी, डिब्बा बन्द वस्तुएं प्रयोग करने से पेट साफ नहीं होता।
6. मल त्यागते समय जोर लगाना।

**सामान्य चिकित्सा :**बवासीर की तकलीफ जड़ से दूर करने के लिये यह आवश्यक है कि कब्ज को पहले दूर किया जाये और फिर उसे कभी न होने दिया जाये। बवासीर के रोगी की आंते बहुत कमजोर हो जाती हैं। अतः आरम्भ में उसे ऐसे खाद्य पदार्थ दिये जाने चाहिये जिनसे कब्ज तो दूर हो ही, साथ ही साथ मल भी इतना मुलायम हो कि वह बिना तकलीफ के गुदा मार्ग से बाहर निकल जाये। निम्न बातों को ध्यान में रखें कि –

1. प्रतिदिन सुबह सायं 15 से 30 मिनट तक मस्सों पर भाप देने के बाद कटि स्नान लेना चाहिये, या पहले 3 से 5 मिनट तक गरम जल से भरे पानी के टब में कटि स्नान लेने के बाद तुरंत 30 से 60 सेकण्ड तक ठंडे जल से भरे पानी के टब में वही स्नान लेना चाहिये। उसके बाद रजाई ओढ़कर गर्मी लाना चाहिये।
2. प्रतिदिन दो या चार बार एनिमा लेना चाहिये।
3. पहले गुनगुने पानी का, उसके बाद ठंडे पानी का।
4. एनिमा के पानी में नींबू का 8 से 10 बूंद रस जरूर मिला लेना चाहिये।
5. सायं काल को सोते समय 100 ग्राम पानी या 50 ग्राम नारियल के तेल का एनिमा, नींबू के 25 ग्राम रस सहित लेकर रात भर रोके रखना चाहिये। इससे बड़ी आंत के पर्दे को ठंडक पहुंचेंगी और मल भी ढीला पड़ जायेगा।
6. सांयकाल के रोके रखने वाले एनीमा के साथ–साथ पेडू जंघा और कटि–प्रदेश पर ऊनी कपड़े का पैक रातभर के लिये देकर गर्मी पहुंचाने की कोशिश होनी चाहिये।
7. ठंडे पानी का कटि स्नान भी लेना चाहिये। तीन मिनट गर्म पानी में बैठने के बाद एक मिनट ठंडे पानी में बैठना क्रमशः चलना चाहिये और बैठते समय पैरों को एक पात्र में रखना चाहिये।
8. इन स्नानों के बाद ठंडे जल से सारे शरीर का स्नान कर सूखी तौलिया से रगड़कर बदन को सूखा लेना चाहिये और तब बिस्तर पर लेटकर विश्राम करना चाहिये।

**5.4.4 दस्त (प्रवाहिका) और संग्रहणी–** जैसा कि नाम से स्पष्ट है, इस रोग में मल अधिक मात्रा में और श्लेष्मा (Mucous) अधिक आता है। इसे सामान्य भाषा में पेचिश मरोड़ और डिसेंट्री कहते है। जब तीव्र अतिसार होता है विशेषकर मल के कारण पूर्ण रक्त, श्लेष्मा आने पर तो प्रायः इसे प्रवाहिका कहते है और इसे शास्त्रीय दृष्टि से अतिसार का ही प्रकार मानते है। इसमें रोगी चिकना या रक्त युक्त अल्प मात्रा में, काफी जोर लगाकर या कांखते हुए मरोड़ सहित मल त्याग करता है। अतिसार की तरह प्रवाहिता भी बहुत कष्ट दायक व हानिकारक रोग है। दस्त को अतिसार और डायरिया भी कहते है।

**लक्षण :**

1. इन रोगों में बार–बार पतले दस्त आते है।
2. मल में असहा बदबू होती है।
3. रोगी की श्वास भी दुर्गन्ध युक्त होती है।
4. पेट में दर्द होता है।
5. कभी–कभी मितली और कै (उल्टी) की भी शिकायत होती है।
6. सिर दर्द और थोड़ा ज्वर भी हो जाता है।

**कारण :**

1. गरिष्ट भोजन करना।
2. असंयमित भोजन करना।
3. मौसम के अनुरूप भोजन न करना।

4. ठंड लगने तथा शरीर में विजातीय द्रव्य एकत्र होना।

**सामान्य चिकित्सा :**

1. इस रोग में दस्त को शीघ्र बन्द करने की कोशिश नही करना चाहियें।
2. पेट गरम होकर पतला दस्त आरम्भ होते ही पेट के ऊपर पानी की गीली पट्टी का प्रयोग करना चाहिये और दो–दो घण्टे के अन्तर से उसे बदलते रहना चाहिये।
3. एक दिन का उपवास केवल पानी पीकर करना चाहिये।
4. दस्त में गुनगुना पानी मिला दही या मठ्ठे का एनिमा भी लेने से पेट जल्दी साफ हो जाता है।
5. दस्त फिर भी बंद न हो तो पैरों को गरम स्नान देकर बदन से पसीना निकालना चाहिये।
6. कटि स्नान भी इस रोग में उपकारी होता है।
7. दस्त के साथ यदि कै (उल्टी) भी हो तो पूर्ण उपवास करना चाहिये।
8. कागजी नींबू के रस को पानी में मिलाकर पीना चाहिये।
9. 4–5 ग्राम इसबगोल की भूसी गुनगुने जल से दे इससे आव निकल जाती है।
10. जब तक रोग का जोर कम न हो जाये केवल मट्ठा का सेवन करना चाहिये।
11. रोज पाव–पाव भर मट्ठा आठ बार पीना चाहिये।
12. पेट आदि गरम हो तो एक–एक घण्टा बाद मिट्टी की गीली पट्टी देनी चाहिये।
13. यदि गरम न हो तो पेट पर पानी की गीली पट्टी 10 मिनट तक भाप देने के बाद आधा घण्टा के लिये

## 5.5 श्वसन तंत्र का परिचय

श्वास लेना और छोड़ना सजीवों का मुख्य गुण है। शिशु जन्म लेने के तुरन्त बाद श्वास लेना आरम्भ करता है। श्वसन जीवन की आवश्यक क्रिया है। विभिन्न जैविक कार्यों को करने के लिये भोजन के ज्वलन से उत्पन्न जैविक उर्जा की प्राप्ति होती है। श्वसन क्रिया मात्र श्वास छोड़ना और लेना नहीं है बल्कि श्वसन कोशिकाओं और वातावरण के बीच गैसों का परस्परिक आदान–प्रदान है।

परिभाषा– ''वायु की ऑक्सीजन द्वारा कार्बनिक भोजन का ऑक्सीकरण होने से जैविक उर्जा का उत्पन्न होना और कार्बन डाई ऑक्साइड का निकलना श्वसन कहलाता है।''

जब मनुष्य श्वास लेता है तो नाक द्वारों के अन्दर बाल मिलते हैं जो हवा को छान कर अन्दर भेजते है। श्वास नली (विन्ड पाइप या ट्रेकिया) का मुंह सदैव खुला ही रहता है, हवा तुरन्त श्वास नलिकाओं में होती हुई वायु कोष्ठिकाओं में पहुंचती है। यहाँ पर रक्ताणु (रेड ब्लड सेल्स), जो पतली रक्त नलिकाओं में एक समय में एक ही गुजर पाते हैं शुद्ध वायु (ऑक्सीजन) ग्रहण कर लेते है। उसी समय उनका रंग लाल सुर्ख हो जाता है। साथ साथ ही अपने अंदर की शरीर की गन्दी वायु (कार्बन) को छोड़ देते है। इस प्रकार फेफड़ों में एक मिनट में 18 बार शुद्ध वायु जाती है और गन्दी हवा निकलती है। इसी क्रिया–प्रक्रिया के विभाग को श्वसन तंत्र कहते है।

### 5.5.1 श्वसन तंत्र के रोग – ब्रोन्काइटिस–

जीर्ण जुकाम को ब्रोन्काइटिस कहते है। कण्ठ नलिका की प्रशाखाओं में प्रदाह या श्वास नली प्रदाह कहते है। ब्रोन्काइटिस दो प्रकार की होती है – एक नयी और दूसरी पुरानी। पुरानी ब्रोन्काइटिस में नये ब्रोन्काइटिस की भांति खांसी एवं कफ आदि के लक्षण तो

विद्यमान होते हैं, किन्तु ज्वर और वेदना उतनी नहीं होती। इसमें विशेषतया प्रातः काल खांसी अधिक उठती है जिसके जरिये फेनयुक्त कफ अधिक निकलता है। नयी ब्रोन्काइटिस जाड़ों में अधिक और गर्मियों में कम जोर करती है, परन्तु जब वह पुरानी पड़ जाती है तब खांसी गर्मी जाड़े–दोनों में एकसी रहने लगती है।

**लक्षण :–**

1. इसमें स्वर–नली की झिल्ली में विजातीय द्रव्य की उपस्थिति के कारण जलन होने लगती है।
2. वेदनायुक्त सूखी खांसी होती है।
3. स्वरभंग।
4. श्वास–कष्ट।
5. छाती व गले में दर्द।
6. गाढ़ा–गाढ़ा कफ निकलना तथा गला घर–घर करना।
7. ब्रोन्काइटिस के रोगी को कभी कभी तेज ज्वर भी आ जाता है।
8. इस रोग का आरम्भ साधारण सर्दी–ज्वर से होता है।

**कारण :**

1. अपने आप जीवाणुओं द्वारा अथवा पहले से विद्यमान जुकाम, इन्फ्लुएंजा, खसरा व काली खांसी तथा यह रोग मुख्य रूप से वायरस के कारण होता है।
2. द्वियक संक्रमण बैक्टीरिया से होता है।
3. यह बीमारी अन्य वायरल रोगो से होती है।
4. प्रदूषित ठंडा व धुंध भरा वातावरण भी एक कारण है।
5. ऊपर की श्वास नलिकाओं में पहले से विद्यमान कोई रोग एवं अमोनिया सल्फर डाइ ऑक्साइड व नाइट्रोजन डाइ ऑक्साइड जैसी गैसों का श्वास द्वारा छाती में जाना इस बीमारी को बढ़ाते है।
6. कभी–कभी रोमांतिका वात श्लेषमिक आदि बुखारों में सूजन कण्ठ से उतरकर वायुकोष्ठकों में चली जाती है।

**सामान्य चिकित्सा –** नयी ब्रोन्काइटिस एक–दो दिनों के उपवास, फिर रसाहार तत्पश्चात् फलाहार साथ में दो दिन में दो बार एनिमा तथा छाती पर उष्णकर गीली पट्टी के प्रयोग से अवश्य चली जाती है। गहरी नीली बोतल का सूर्यतप्त जल आधी छटांक की खुराक से 6 खुराकें दिन में पिलाने और उसी जल से भीगी कपड़े की उष्णकर पट्टी गले पर लपेटने से नयी ब्रोन्काइटिस बहुत जल्द आराम होती है।

**पुरानी ब्रोन्काइटिस की चिकित्सा :**

1. गर्म पानी रोगी को पिलाकर तथा सिर पर ठंडे पानी से भीगी एक तौलिया रखकर उसे पैरों का गरम स्नान दें। उसके बाद कटि स्नान या गीली चादर की लपेट देना चाहिए। तत्पश्चात् गरमाई लाने के लिये कम्बल ओढ़कर पूर्ण विश्राम। यह प्रयोग दिन में दो बार होना चाहिये।
2. रोग की बढ़ी हुई अवस्था में छाती पर भाप–स्नान देकर उस पर और दोनो कंधो पर कपड़े की गीली उष्णकर पट्टी दिन में दो बार तीन घण्टे के लिए लगाना भी जरूरी होता है।
3. साथ में सूखी खांसी होने पर या कफ जकड़ने की हालत में दिन में कई बार गरम पानी पीना चाहिये और गरम पानी की भाप को नाक और मुंह द्वारा खींचना चाहिये।

4. नींबू रस मिला जल अधिकाधिक पीना चाहिये और खुली हवा में रहना और सोना चाहिये।

5. नारंगी रंग की बोतल के सूर्य तप्त जल की तीस ग्राम की प्रतिदिन 4 खुराकें इस रोग में राम बाण सिद्ध हुई है। नाश्ते या भोजन के 20 मिनट बाद खुराक लेनी चाहिये।

**5.5.2 साइनोसाइटिस–**इस रोग में नाक की जड़ के पास की हड्डियों के ढांचे में जो छिद्र होते हैं और जो साइनस कहलाते हैं, उनमें से किसी एक या अधिक छिद्रों में सूजन उत्पन्न हो जाती है जिससे कालान्तर में बड़ा कष्ट होता है । यह रोग धीरे–धीरे बढ़कर पुराना पड़ जाता है और बड़ी–कठिनाइयों से जाता है। क्योंकि इस रोग से छुटकारा पाने के लिये नाक के आक्रान्त स्थल की ही नहीं अपितु समूचे शरीर एवं उसके रक्त की शुद्वि करनी पड़ती है।

**लक्षण :**

1. आवाज भारी हो जाती है।
2. स्वाद और गन्ध को ग्रहण करने की शक्ति में फर्क पड़ जाता है।
3. नाक के पिछले भाग में भारीपन तथा थोड़े तनाव की अनुभूति होती हैं।
4. सिर में दर्द रहने लगता है।
5. सर्दी और जुकाम जल्दी–जल्दी होने लगते हैं।
6. ज्वर हो आता है।
7. सिर की पीड़ा असह्य हो उठती है।

**कारण :**

1. विजातीय द्रव्य का नासिका की अस्थियों के ढांचे के छिद्रों में एकत्र होना है।
2. कब्ज रहना।
3. रक्त अशुद्ध होना।
4. धूल व अन्य कणों का नासिका में प्रवेश करना।
5. एलर्जी।

**सामान्य चिकित्सा :**

1. एक या दो दिन का उपवास करना चाहिये।
2. यदि कब्ज हो तो कब्ज टूटने तक एनिमा लेना चाहिये।
3. दोनों वक्त उदर स्नान 7 से 10 मिनट तक करना चाहिये ।
4. प्रतिदिन दो बार चेहरे पर 2 मिनट तक भाप देना चाहिये ।
5. उसके बाद उसे भीगी और निचोड़ी तौलिया से पोछना चाहिये ।
6. रात को सोते समय पावों को 15 मिनट तक गरम पानी में रखना चाहिये।
7. सिर पर ठण्डे पानी से भीगी तौलिया रखकर गरम पानी में से पैरों को निकालने के तुरन्त बाद उन्हें एक मिनट तक ठण्डे पानी में डालना चाहिये।
8. नाक और मस्तक को गरम और ठण्डी सेंक बारी–बारी से 15 से 20 मिनट तक दिन में दो बार देना चाहिये।

**5.5.3 दमा (अस्थमा)–** दमा एक महादुःखदायी रोग है और बड़ी मुश्किल से जाता है। इसीलिये दमा, दम के साथ जाता है कहावत प्रचलित है मगर प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा यह रोग भी अन्य हठी रोगों की भांति आसानी से दूर किया जा सकता है। दमे का दौरा जाड़ा, बरसात तथा गर्मी–कभी भी हो सकता है। रोग पुराना हो जाने पर सर्दी, खांसी, हिचकी,

गरिष्ट और अधिक भोजन आदि जनित सामान्य उत्तेजना से ही दौरा आरम्भ होता है। दमा कई प्रकार का होता है और बालक, युवा और बूढ़े सबको हो सकता है।

**लक्षण :**

1. इसमें श्वास लेने वाले नलिकाओं के संकुचित होने और उनमें कफ के जकड़ जाने से रोगी श्वास कठिनता से ले पाता है।
2. जब सीने में असंख्य ग्रन्थियां कफ से मढ़ सी जाती है तो दमे का दौरा होता है।
3. भयानक कब्ज होने से ही सीने की ग्रन्थियों में कफ जकड़ता है।
4. कब्ज से रक्त दूषित होता है और दूषित रक्त से शरीर में कफ की उत्पत्ति होती है।
5. सीने में दर्द होता है।
6. शरीर लाल या नीला पड़ जाता है।
7. शरीर ठण्डा हो जाता है तथा कष्ट से पसीना छूटता है।

**कारण :**

1. फेफड़े की दुर्बलता से।
2. ह्वदय की दुर्बलता से।
3. गुदा की दुर्बलता से।
4. आंतों की दुर्बलता से।
5. स्नायु मण्डल की दुर्बलता से।
6. नाक रोग के फलस्वरूप।

**सामान्य चिकित्सा :**

रोग का आरम्भ होते ही नमक और सफेद चीनी छोड़ देना चाहिये और दूध, फल, सब्जी, गेंहू का दलिया या बिना छने आटे की रोटी खाकर रहना चाहिये। रोज प्रातः काल रीढ़ की हड्डी को सीधे रखकर खुली और स्वच्छ वायु में 7–8 बार गहरी श्वास को लेना और निकालना चाहिये और कुछ दूर प्रातः टहलना चाहिये। पेट को सदा साफ रखना चाहिये और कब्ज कभी न होने देना चाहिये। चिन्ता आदि मानसिक रोगों को पास भी न फटकने दें। जलपान के समय केवल गरम पानी में नींबू निचोड़कर पीयें। इस पानी में इच्छानुसार शुद्ध शहद मिलाया जा सकता है। सूर्यास्त से पहले ही फल का हल्का भोजन कर लें। भोजन करते वक्त पानी न पियें बल्कि दो घंटे बाद प्यास भर पानी पियें। धुएं और गंदी हवा से बचें। नित्य प्रातःकाल कुछ देर धूप सेवन करें और उसी समय छाती पर सरसों के तेल की मालिश करें। साधारण उपचार के लिये रविवार को उपवास करें और शाम को प्रतिदिन एक घंटे के लिए सीने पर गीली कपड़े की पट्टी रखें। बस इतना ही करने से साधारण दमें की बीमारी दूर हो जायेगी और रोग अपना जड़ न जमाने पायेगा।

**दौरा होने पर उपचार**

दौरे की समाप्ति तक उपवास रखें। साथ में गरम पानी में नींबू का रस निचोड़कर दिन में कई बार दें। पहले पैरों को एक गरम स्नान देकर गर्दन के चारों ओर खूब ठण्डे जल से भीगा गमछा लपेटें। साथ ही पूरे पेट और छाती को भी सेकें। हर दस मिनट बाद सुनहरी बोतल का सूर्य तप्त जल 50 ग्राम पीना। सूखी श्वास चलती हो तो छाती पर लाल शीशी का सूर्य तप्त तेल मलना। दौरे के बाद रोग को पूर्ण रूप से दूर करने के लिए निम्न उपचार सार्थक सिद्ध हो सकते है–

1. कब्ज टूटने या तीन मास तक रोज प्रातःकाल पखाना से लौटने के बाद पेडू पर आधे घंटे मिट्टी की पट्टी उसके बाद एनिमा का प्रयोग।

2. 12 फुट लम्बे, आठ इंच चौड़े सूती कपड़े को भीगोकर और सख्त निचोड़कर छाती कंधों के ऊपरी भाग तथा पीठ के भाग पर पट्टी बांधना चाहिये और ऊपर से ऊनी कपड़ा लपेटना चाहिये। यह पट्टी एक से डेढ़ घंटे तक रहने देना चाहिये। परन्तु पट्टी लगाने से पहले हर बार छाती पर 12 से 20 मिनट तक गरम ठण्डी सेंक 3 से 5 बार करना चाहिये।
3. शाम को सोते समय, भोजन के ढ़ाई घंटे बाद 10–12 फुट लम्बी, 8 इंच चौड़ी सूती कपड़े की गीली पट्टी पेडू के चारों तरफ कमर से लपेट कर उपर से ऊनी कपड़ा लगभग एक घंटे तक लपेट रखना या रात्रि में नींद खुलने पर खोल देना।
4. सबल रोगी हो तो 10 से15 मिनट तक सप्ताह में समूचे शरीर का एक बार भाप स्नान।
5. सुनहरी बोतल का सूर्यतप्त जल 50 ग्राम प्रतिदिन भोजन और नाश्ते के 15 मिनट बाद।
6. लगभग डेढ़ किलो गुनगुने पानी को धीरे–धीरे पीवें और फिर मुंह में अंगुली डालकर सब का सब वमन कर दें।
7. सुबह–शाम स्पंज–बाथ।
8. दिन में दो बार तक कटि स्नान तथा सप्ताह में एक बार पूरे शरीर की गीली चादर की लपेट भी लगायी जा सकती है।
9. इस रोग में हल्का व्यायाम, श्वास की कसरतें तथा साधारण स्नान के पहले धूप में सारे शरीर की मालिश आदि उपकारी होती है।
10. उपचार के आरम्भ में रोगी को कम से कम 3 से 7 दिनों तक उपवास तथा नींबू का रस मिश्रित जल पान करना चाहिये।

## 5.6 पाचन तंत्र एवं श्वसन तंत्र के रोगों की जल चिकित्सा पद्धतियाँ

### 1. एनिमा

यदि स्वभाविक रूप से मल का निष्कासन न हो रहा हो तो आँतों में चिपके हुए मल को निकालने के लिए एनिमा का उपयोग किया जाता है। यह एक निरापद उपचार है एवं यह कभी भी नुकसान नही करता है।

**साधन :–**

एनिमा पात्र, रबड़ की नली 4–5 एफ नोजल, एक कैथेटर – 12 नम्बर, एक तखत, ऑयल या वैसलिन, कीटनाशक घोल, गर्म–ठण्डा पानी, एक बैड पेन।

**ऐनिमा के प्रकार :–**

1. साधारण ऐनिमा – यह एक से डेढ़ लीटर गुनगुने पानी का होता है। (98.6 डिग्री फेरनहाइट से 99 डिग्री फेरनहाइट)
2. टानिक एनिमा – 250 से 350 मि.ली. ठण्डे पानी का होता है। 80 डिग्री फेरनहाइट शरीर तापमान से थोड़ा कम हो ठण्डा पानी ये साधारणतया बड़ी आँतो की कमजोरी को शक्ति प्रदान करने के लिए दिया जाता है।
3. गर्म पानी का एनिमा – ये कमजोर व बुजुर्ग लोगों को दिया जाता है। पानी की मात्रा 500मि.ली., तापमान गुनगुने से थोड़ा ज्यादा। (100 डिग्री फेरनहाइट से 104 डिग्री फेरनहाइट)
4. आँतो में पानी रोकने वाला एनिमा :– यह 100 से 150 मि.ली. पानी का होता है जो रात भर रोक के रखते है, इससे सुबह शौच करने में आसानी होती है।

5. मिश्रित ऐनिमाः– यह पानी में जड़ी–बूटी, शहद नींबू आदि मिलाकर साधारण एनिमा की तरह दिया जाता है। जैसे–

- सूखे मल में तेल व पानी का एनिमा।
- पेट में किड़े पड़ने पर नीम की पत्ती का एनिमा।
- वायु दोष में लहसुन पानी का एनिमा।
- कोलाईटिस में मट्ठा का एनिमा।

| **आयु** | **मात्रा** |
|---|---|
| 6 माह से 1 वर्ष | 100 –200 मि.ली. |
| 1 वर्ष से 6 वर्ष | 200 – 500 मि.ली. |
| 6 से 12 वर्ष | 500 मि.ली. से 1 लीटर |
| 12 से 25 वर्ष | 1 लीटर से 1.25 लीटर |
| 25 वर्ष से अधिक | 1.25 लीटर से 1.5 लीटर |

**सिद्धांत** :इस चिकित्सा द्वारा आँतों को बिना किसी उत्तेजना व जलन के मल रहित किया जाता है। मिश्रित एनिमा में ये लागु नहीं होता।

**विधि :–**

**एनिमा चार प्रकार से दिया जाता है :–**

1. पीठ के बल लेटाकर।
2. पेट के बल लेटाकर।
3. दाहिनी तरफ लेटाकर।
4. उकडू बैठाकर।

प्रायः कमर के बल लेटाकर ही एनिमा दिया जाता है तखत को एक तरफ से उँचा कर लेते है और ऊँचाई के तरफ पैर रखते है। 3–4 फीट ऊँचाई पर एनिमा पॉट रखकर आवश्यकता अनुसार पानी भर देते है। रोगी के पैर घुटने से मुड़वा देते है, कैथेटर में वेसलीन या ऑयल लगा देते है और नोजन में लगा देते है। थोड़ा सा पानी कैथेटर से निकाल कर कैथेटर को गुदा द्वार में 3 से 4 इंच प्रवेश कराते है। रोगी को लम्बे गहरे श्वास लेने को कहते है तथा रोगी के पेट पर हल्के हाथ से घड़ी की विपरित दिशा में मालिश करते है, पात्र में जब थोड़ा सा पानी रह जाये तो पानी बंद कर देते है। प्रायः 3 मिनट में पुरा पानी अंदर चला जाता है। अंत में रोगी को बाँई करवट दो–दो मिनट, दाँई करवट तथा एक मिनट सीधा लेटाया जाता है।

अब रोगी को 5 से 10 मिनट तक सामर्थ्य अनुसार पानी को अंदर रोककर शौच के लिए भेजा जाता है, यदि शौच न हो तो टहलने का निर्देश देते है और शौच करते समय जोर न देने का निर्देश देते है।

**क्रिया–प्रतिक्रिया :–**

गुनगुने पानी से आँतो में फैलाव होता है, जिससे आँतों में चिपका हुआ मल स्थान छोड़ देता है। एनिमा द्वारा वह पानी में घुलकर शौच द्वारा आसानी से बाहर आ जाता है। ठण्डे पानी के एनिमा से आँते सजग बनती है और यह बड़ी आँतों को मजबूत करता है।

**उपयोगिता :–**

कब्ज, दमा, सिर दर्द, त्वचा रोग, वायु विकार, मधुमेह, पीलिया, गठिया, बड़ी आँत में प्रदाह या जलन।

**निषेधः–**

एनिमिया, रक्त स्त्राव कोलाइटिस, कमजोरी, खूनी बवासीर।

**सावधानियाँ :–**

1. पानी अत्यधिक गर्म नहीं होना चाहिए, नहीं तो म्यूकस मेम्ब्रेन कमजोर हो जाती है।
2. पानी अत्यधिक ठण्डा नहीं होना चाहिए, नहीं तो आँतों में ऐठन होने लगती है।
3. पात्र अच्छी तरह साफ होना चाहिए।
4. किसी भी अवस्था में बिठाकर एनिमा नहीं देना चाहिए।
5. खूनी बावासीर या अल्सराटिस कोलाईटिस में यदि रक्त स्त्राव न हो रहा हो तो एनिमा दे सकते है।
6. पानी की मात्रा सावधानी पूर्वक धीरे–धीरे देनी चाहिए।
7. हर रोगी का कैथेटर अलग–अलग होना चाहिए।
8. एनिमा के आधे घण्टे तक रोगी को कुछ खिलाना पिलाना नहीं चाहिए।
9. कमोड व बेट पेन की व्यवस्था रखनी चाहिए।
10. लूजमोशन में एनिमा नहीं देते है।

**2. मेहन स्नान**

**परिचय**

मेहन शब्द का अर्थ होता है जननेद्रिय अतः हम इसे जननेंद्रिया मेहन स्नान भी कह सकते है। अत्यधिक कमजोर व्यक्ति जो कटि स्नान करने में असमर्थ हो उनके नाड़ी मण्डल के स्वास्थ्य को ठीक करने के लिये यह चिकित्सा दी जाती है।

**साधन**

कटि स्नान का टब, छोटा मुलायम कपड़ा, अर्ध चन्द्राकर तिपाई, बाल्टी, मग, घड़ी, ठण्डा पानी।

**सिद्धांत** –यह चिकित्सा नाड़ी मण्डल के अंतिम छोर को ठण्डक पहुँचाकर बल प्रदान करती है।

**विधि–** अर्द्धचन्द्राकार तिपाई को टब में रखकर पानी भरते है। पानी का स्तर इतना रहे कि वो तिपाई के ठीक नीचे तक आ जाए, पानी तिपाई के ऊपर नहीं आना चाहिए। रोगी के कपड़े उतरवाकर टब में बिठाते है। पैर टब से बाहर रखते है। अब मुलायम कपड़े को पानी से भिगों कर जननेन्द्रिय के बाह्य भाग अग्र भाग को हल्के हाथ से पोंछते है। पुरूषों में (प्रोप्यूज), महिलाओं में (लेबियपा माडेंरा) इन दो पार्ट को पोछतें है। यदि मुश्किल है तो पैरीनियम के भाग को पोछतें है।

**क्रिया–प्रतिक्रिया**–पुरूष हो या स्त्री नाड़ी मण्डल का अंतिम छोर जननेन्द्रियों में स्थित होने से ठण्डे पानी के द्वारा शरीर की उत्तेजना शांत होती है और नाड़ी मण्डल सशक्त होता है, जीवनी शक्ति में वृद्धि होती है और जनानांगो का तापमान कम होता है जो लोग कटि स्नान लेने में असमर्थ हो तो उसे इस स्नान के द्वारा लाभ पहुँचाया जा सकता है।

**उपयोगिता**–इस चिकित्सा से नाड़ी मण्डल की उत्तेजना आता है इसलिए यह चिकित्सा नाड़ी मण्डल से संबंधी रोगों के लिए अति उपयोगी है। जैसे :–

| | | | |
|---|---|---|---|
| चक्कर आना | अत्यधिक थकान | श्वास फूलना | हृदय रोग |
| माइग्रेन | स्नायु दौर्बल्यता | रोग प्रतिरोधक क्षमता की कमी। | |

**निषेध**

जीर्ण रोगों में उपवास में बुखार में नई सूजन।

**सावधानियाँ**

1. शरीर का शेष सारा भाग सूखा रहना चाहिये।
2. चिकित्सा के एक घण्टे तक नहाना या खाना नहीं चाहिये।
3. चिकित्सा का समय धीरे–धीरे बढ़ाना चाहिये।
4. रोगी को उत्तेजन आहार नहीं देना चाहिये।
5. चिकित्सा के बाद टहलाकर या कम्बल ओढ़कर गर्मी लाना चाहिये।
6. जो व्यक्ति कटिस्नान न ले सके उन्हे यह स्नान दिया जाता है।

### 3. गरम–ठण्डा कटि स्नान

**परिचयः–**

यह पेट की गरम ठण्डी सेंक का वृहद रूप है, कटि प्रदेश में स्थित अंगों को स्वस्थ एवं सबल बनाने के लिए जल चिकित्सा मे स्थानीय चिकित्सा के रूप में यह उपचार दिया जाता है।

**साधनः–**

2 हिपबाथ टब, 1 स्टूल छोटा, बाल्टी, मग, गरम पानी और ठण्डा पानी, छोटा तौलिया।

**पानी का तापमान :–**

| | गरम पानी | ठण्डा पानी |
|---|---|---|
| गर्मीयों में | 102 से 106 डिग्री फेरनहाइट | 45 से 55 डिग्री फेरनहाइट |
| सर्दियों में | 106 से 110 डिग्री फेरनहाइट | 55 से 65 डिग्री फेरनहाइट |

**सिद्धांत :–**

यह चिकित्सा लगातार रक्त को कटि प्रदेश एवं अन्य अंगों में ले जाकर पम्प की भाँति कार्य करती है।

**विधि :–**

कटि स्नान के दो टब लेते है। एक में गर्म पानाी और एक में ठण्डा पानी की मात्रा इतनी रखते है कि टब में बैठने के बाद नाभि के ऊपर पानी 1 से 1.5 ईंच ऊपर आ जाए। रोगी के कपड़े उतार कर मौसम के अनुसार पानी पिलाकर रोगी को पहले गर्म पानी के टब मे तीन मिनट तक बिठाते है। रोगी का पैर स्टूल पर रखते है ताकि गीले न हों।

रोगी के सिर में ठण्डें पानी का भिगा तौलिया रखते है उसके बाद एक मिनट तक ठण्डे पानी के टब में बिठा देते है। यह क्रिया तीन बार करते है। अंत में तीन मिनट ठण्डे पानी में बिठाकर उपचार करते है।

अगर रोगी को ठंड लग रही हो तो अंतिम तीन मिनट को आवश्यकतानुसार कम किया जाता है। इसके बाद रोगी को ठंडे पानी से नहलाकर शीघ्रता शरीर पोंछकर उसे कपड़े पहना देते है।

**अवधि :–**

| | गर्म पानी | ठण्डा पानी |
|---|---|---|
| प्रथम बार | 3 मिनट | 1 मिनट |
| द्वितीय बार | 3 मिनट | 1 मिनट |

| | | |
|---|---|---|
| तृतीय बार | 3 मिनट | 1 मिनट |
| चतुर्थ बार | 3 मिनट | 3 मिनट |
| **कुल** | **12 मिनट** | **6 मिनट** |

**कुल योग 18 मिनट**

**क्रिया–प्रतिक्रिया :–**

गर्म पानी के प्रभाव से कटि प्रदेश में रक्त कोशिकाओं में फैलाव होता है, जिससे पैरों व धड़ की तरफ से रक्त कटि प्रदेश में तेजी से आता है और ठण्डे पानी में बैठाने से रक्त कोशिकाओं में संकुचन होता है जिससे पैरों में रक्त पुनः धड़ की तरफ वापस चला जाता है।

उपरोक्त क्रियाओं रक्त पम्प की भांति कार्य करता है और कटि प्रदेश के अंगों में आराम दायक स्थिति उत्पन्न होती है। उन अंगों को पोषण मिलता है और उत्सर्जीय पदार्थ उत्सर्जी अंगों द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है। बार–बार यह चिकित्सा देने से कटि प्रदेश में स्थित अंग स्वस्थ, शक्तिवान, सबल एवं सजीव हो जाते है।

**उपयोगिता :–**

कब्ज अजीर्ण भूख न लगना मोटापा मधुमेह साइटिका
मूत्र रोग उच्चरक्त चाप स्लीप डिक्स लो बैक पेन स्त्री रोग पीलिया
पेट संबंधी रोग कोलाइटिस B.P.H., I.B.S.

**निषेध :–**

तीव्र उच्च रक्त चाप तीव्र हृदय रोग अम्ल पित्त घुटनों का दर्द एवं सूजन

**सावधानियाँ :–**

1. रोगी को पहले पानी अवश्य पिलाये।
2. सिर पर ठण्डे पानी का तौलिया रखें।
3. भोजन के 3 से 4 घण्टे बाद करें।
4. तेज हवा का झोका नहीं लगना चाहिए।
5. मासिक धर्म में नहीं देते है।
6. फल व दूध खाने पर एक डेढ़ घण्टे बाद।
7. आधे घण्टे के बाद तक कुछ न खायें।

**4. पैर का गरम नहान**

**परिचय :–**

कमर से ऊपर के अंगों के रोगों के लिए यह उपचार दिया जाता है। अगर भाप नहान की सुविधा उपलब्ध न हो तो पैर की गरम नहान से उसकी पूर्ति की जा सकती है।

**साधन :–**

एक पतली सूती चादर, एक कम्बल, एक बड़ी बाल्टी, एक बाल्टी, एक तौलिया, एक मग, कुर्सी या स्टूल, ठण्डा पानी और गरम पानी, रेक्सिन का कवर।

**पानी का तापमान :–**

गर्मियों में 104 से 115 डिग्री फैरनहाइट
सर्दियों में 115 से 120 डिग्री फैरनहाइट

**सिद्धांत :–**

यह चिकित्सा कमर के ऊपर के अंगों में रक्त के दबाव को कम करने तथा रक्त के प्रवाह को पैरों की ओर ले जाने के लिए यह चिकित्सा दी जाती है।

**विधि :–** यदि एनिमा की आवश्यकता है, तो पहले एनिमा दी जाती है फिर कम्बल को कुर्सी पर इस प्रकार बिछाते है कि मरीज को कुर्सी पर बैठाकर चारों तरफ से लपेटा जा सके कम्बल के ऊपर सूती चादर बिछाते हैं। मौसम के अनुसार रोगी को पानी पिलाकर कपड़े उतारकर कुर्सी पर बिठाते है। अब बड़ी बाल्टी में सह सकनें लायक गरम पानी भरकर रोगी के पैर बाल्टी में रखवाते है। पानी इतना रहे कि मरीज के टखने पानी में रहे।

रोगी के शरीर को पहले चादर से फिर कम्बल से इस प्रकार लपेटते है कि बाल्टी भी कम्बल के अंदर आ जाये अंत में कम्बल को रेक्सिन से ढक देते है।

सिर पर गीला ठण्डे पानी से भीगी तौलियां रखते है।

गरम पानी का तापमान बनाये रखने के लिए थोड़ी थोड़ी देर में गर्म पानी डालते रहते है बाल्टी में, सिर पर आवश्यकता अनुसार ठण्डा पानी डालते रहे और प्यास लगने पर ठण्डा पानी पिलाया जाता है।

चिकित्सा की अवधि पूरी होने पर रोगी को शीघ्रता से ठण्डे पानी से नहला दे या रोगी को गीले तौलिये से पोंछ दे।

**अवधि :–**

सामान्यतः – 25 मिनट
गर्मियों में – 15 से 20 मिनट
सर्दियों में – 25 से 30 मिनट

**क्रिया–प्रतिक्रिया :–**

गर्म पानी में पैर रखने से पैर की रक्त कोशिकाओं में फैलाव होता है जिससे रक्त का प्रवाह पैरों की तरफ बढ़ जाता है और कमर के ऊपर के हिस्से में रक्त का दबाव कम हो जाता है। विजातीय द्रव्य रक्त के साथ घुलकर अपना स्थान छोड़ देते है।

ठण्डें पानी से नहलाने पर पूरे शरीर का रक्त संचार तीव्र हो जाता है जिससे विजातीय द्रव्य उत्सर्जीय अंगों में पहुँचकर शरीर से बाहर हो जाता है।

**उपयोगिता :–**

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| सर्दी | जुकाम | गठिया | घुटनों का दर्द | कंधे का दर्द |
| खाँसी | कान का दर्द | | मधुमेह | साइनोसाईटिस |
| दमा | ब्रोन्काईटिस | | उच्च रक्त चाप | सिर दर्द |
| स्त्री रोग | निम्न रक्त चाप | सर्वाइकल | स्पॉनडिलाईटिस | निम्न रक्त चाप |

**निषेध :–**

| | | |
|---|---|---|
| हाईपर एसिडिटी | नाड़ी दौब्लय | इर्न्टनल हेमरज |
| लूजमोशन | चोट या घाव | लू लगना |
| त्वचा रोग | | |

**सावधानियाँ :–**

तेज हवा का झोंका नहीं लगना चाहिए।

अत्यधिक निम्न रक्त चाप में नहीं देना चाहिए।

प्यास लगने पर पानी अवश्य पिलाते रहें सिर को हमेशा ठण्डे पानी से गीला बनायें रखें।

**5. भाप नहान :–**

**परिचय :–**

त्वचा पर स्थित स्वेद ग्रंथियों को सक्रिय बनाकर विजातीय द्रव्यों को पसीने के रूप में बाहर निकालने के लिए यह उपचार दिया जाता है।

**भाप नहान के दो प्रकार :–**

1. स्थानीय भाप
2. पूरे शरीर का भाप नहान

**साधन :–**

भाप नहान का बक्सा, केतली, 2–3 मीटर लम्बा ट्यूब, गैस का चुल्हा, छोटा तौलिया, सिर पर रखने के लिए बड़ा तौलिया, ग्लिास, मग, सादा पानी, कटि स्नान टब।

**सिद्धांत :–**

त्वचा हमारे शरीर का तापमान एक सा बनाये रखने में सहायक होती है। भाप नहान में जब शरीर लगाातार भाप के सम्पर्क में आता है तो त्वचा की ऊपरी भाग का तापमान बढ़ने लगता है। उसे सामान्य बनाये रखने के लिए त्वचा में स्थित श्वेत ग्रंथियाँ सक्रिय होकर रोम छिद्रों से पसीना निकालने लगती है।

**विधि :–**

सबसे पहले केतली में पानी रख देते है। 700 से 800 ग्राम पानी सामान्य व्यक्ति के लिए आवश्यक है। टब का एक सिरा केतली में व दूसरा सिरा स्टिम बाक्स में रख देते है। जब केबिनेट भाप से गरम हो जाय तब रोगी को मौसम के अनुसार पानी पिलाकर उपचार देते है। कपड़े निकालकर ठण्डे पानी या गुनगुना पानी पिलाते है। उसके बाद बाक्स में ऊँचाई के अनुसार बिठा देते है। बॉक्स बंद करके रोगी के सिर पर भीगा तौलिया रख देते है। बड़ी तौलिया गर्दन के चारों ओर इस तरह लपेट देते है कि भाप बाहर न निकल सकें। रोगी को हल्के हाथों से बॉक्स के अन्दर ही रगड़नें या मालिश करने की सलाह देते है जिससे की मृत त्वचा, मैल आसानी से निकल जाये, आवश्यकतानुसार सिर में थोड़ी –थोड़ी देर में पानी डालते है। अवधि पूरी होने पर रोगी को कैबिनेट से बाहर निकाल कर 2–5 मिनट तक ठण्डा कटि स्नान देते है और सिर से ठण्डे पानी से नहलाकर शरीर पोंछकर कपड़े पहनाते है।

**अवधि :–**

गर्मियों में 10 से 15 मिनट सर्दियों में 15 से 20 मिनट

**क्रिया–प्रतिक्रिया :–**

भाप की गर्मी से त्वचा की रक्त कोशिकाओं में फैलाव होगा, रक्त प्रवाह या संचार आंतरिक अंगो से सतह की ओर तेज हो जाती है। श्वेत ग्रंथियाँ सक्रिय हो जाती है और रोमकूप खुल जाते है। इस प्रकार शरीर से विजातीय पदार्थ पसीने के रूप में बाहर निकल जाते हैं।

ठण्डे पानी से नहाने पर रक्त कोशिकाओं में संकुचन होता है, इस प्रकार फैलाव और संकुचन से सारे शरीर में तीव्रता आ जाती है।

रक्त कोशिकाओं में अवरोध हो जाता है।

उपापचय ठीक ढंग से होता है।

विजातीय द्रव्य उर्त्सजीय अंगों में पहुँचकर शरीर से बाहर निकल जाते है।

नोट – भाप नहान के समय पल्स रेट बढ़कर 140 से 150 तक पहुँच जाती है।

**उपयोगिता :–**

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| मोटापा | निम्न रक्त चाप | चर्मरोग | जोड़ों का दर्द | जकड़न |
| एलर्जी | अपच | खाँसी | भूख न लगना | कफ |
| जुकाम | साइनोसाईटिस | अस्थमा | टान्सिलाईटिस | गठिया |

**निषेध :—**

| | | | |
|---|---|---|---|
| उच्च रक्त चाप | खुली घाव | हृदय रोग | जला कटा हो |
| टी.बी. | आंतरिक रक्त स्त्राव | मिर्गी | हिस्ट्रिया (दौरा) |
| अधिक बुढ़े व्यक्ति | अत्यधिक कमजोर | | |

**सावधानियाँ :—**

1. उपवास में नही देना चाहिए।
2. खाली पेट या खाने के तीन घण्टे बाद देना चाहिए।
3. भाप नहान के पहले एनिमा देना है।
4. प्यास लगने पर पानी अवश्य पिलाते रहे।
5. सिर पर हमेशा ठंडे पानी से गीला करें।
6. रोगी को घबराहट महसूस हो तो भाप नहान बंद कर रोगी को ठण्डे पानी से नहलायें।
7. यदि त्वचा पर कटी घाव है तो घाव पर ठण्डे पानी की पट्टी बाँधकर भाप नहान दिया जा सकता है।
8. यदि रक्त चाप बढ़ा हुआ है तो छाती पर ठण्डे पानी की पट्टी को बाँधकर भाप नहान दिया जा सकता है।
9. भाप नहान के बाद ठण्डा कटि स्नान 3 से 5 मिनट तक अवश्य दें क्योंकि कटि प्रदेश का तापमान शरीर में हमेशा सामान्य रहता है।

### 6. सारे बदन की गीली पट्टी

**परिचय :—**मरीज यदि भाप नहान ले पाने की स्थिति में न हो तो यह उपचार उसे देकर लाभ प्राप्त किया जा सकता है अतः इसे भाप नहान का प्रतिरूप भी कह सकते है।

**साधन :—** एक तखत 6.5 फीट लम्बा, 3 कम्बल 8 फीट लम्बे — 5 फीट चौड़े, सूती चादर — 6.5 एवं 4.5 फीट, एक सूती कपड़े की पट्टी 0.5 मीटर चौड़ी और 1.5 मीटर लम्बी, एक बड़ी तौलिया, एक छोटी तौलिया, एक जाली का टुकड़ा, दो ईट, एक गर्म पानी की थैली और ठण्डा पानी।

**सिद्धांत :—** शरीर को बिना अधिक गर्मी पहुंचाए लगातार आधे घण्टे पसीने निकालने तक यह चिकित्सा दी जाती है।

**विधि :—**यह हवादार स्थान पर तखत लगाते है, सर्दियों में यह उपचार धूप में भी दिया जा सकता है। तखत को पैरों की तरफ से ईट लगाकर ऊँचा कर दे। सिर की तरफ रेक्सिन का तकिया रखते है। तकिये को ढ़कते हुए दो कम्बल बिछाते है। तखत के तीनों तरफ कम्बल लटकने देते है अब एक सूती चादर ठण्डे पानी में भिगोकर अच्छी तरह निचोड़ कर कम्बल के ऊपर बिछाते है इसी तरह छाती की पट्टी भी नियत स्थान पर बिछा देते है, रोगी को मौसम के अनुसार पानी पिला कर, कपड़े उतरवाकर रोगी को तखत पर पीठ के बल लेटाते है। रोगी के दोनों हाथ ऊपर कर पीठ एंव सीने, छाती पर पट्टी लपेट देते है। अब हाथों को नीचे करवाकर चादर का दाहिना किनारा लेते हुए चादर को बायी ओर लपेट देते है, इसी प्रकार पैरों को कसकर लपेट देते है।

अब चादर का ऊपरी बाँया किनारा लेकर दाहिनी तरफ कसते है, ध्यान रहे कि रोगी गर्दन से लेकर पैरो तक अच्छी तरह ढक जाए। फिर क्रमशः पहला व दूसरा कम्बल

लेकर विपरित दिशाओं मे ढकतें हुए अच्छी तरह लपेट देते है। यथा सम्भव चादर एवं कम्बल ढ़ीला नहीं छोड़ते। इसके बाद तीसरा कम्बल रोगी को ओढ़ा देते है। रोगी के गर्दन में बड़ा तौलिया इस प्रकार लपेटते है कि रोगी को हवा न लगे सिर को पानी से गिला करे, छोटे तौलिये को पानी से भिगों करके सिर पर रख देते है। यदि रोगी को ठंड लग रही हो तब उसके पैरों के तरफ गरम पानी की थैली रखकर कम्बल से ढ़क देते है। समय–समय पर सिर पानी से गिला करते रहते है। चिकित्सा की अवधि पूरी होने पर रोगी को नहला कर अथवा गीले कपड़े से शरीर पोछकर शीघ्रता से कपड़े पहना देते है।

**अवधि :–**

| | | |
|---|---|---|
| 45 मिनट | – | सामान्यतः |
| 45 से 60 मिनट | – | आवश्यकतानुसार |
| 20 से 30 मिनट | – | क्रानिक फिवर। |

**क्रिया–प्रतिक्रिया :–**

इसमें तीन तरह के प्रभाव देखने को मिलते हैः–

i. शीतकारी (Cooling)

चादर लपेटने के तुरन्त बाद 5 से 10 मिनट तक शीतकारी प्रभाव होता है इसमें रोगी को ठंड महसूस होती है। रक्त कोशिकाओं में संकुचन होने के कारण रक्त संचार आंतरिक भागो में होने लगता है।

ii. समकारी (Netural)

लगभग 10 मिनट के बाद रोगी सामान्य सा महसूस करता है, अब उसे न ठंड लगती है न गर्मी इस समय रक्त का संचार सामान्य हो जाता है। यह स्थिति 10 से 20 मिनट तक बना रहती है।

iii. उष्णकारी (Warm)

कम्बल से ढंके रहने के कारण 15 से 20 मिनट के बाद रोगी को गर्मी महसूस होती है इस समय रक्त संचार शरीर के आंतरिक अंगो से त्वचा या सतह की ओर होने लगता है, रोम छिद्र खुल जाते है और पसीना निकलने लगता है। रक्त संचार के तीव्र होने से कोशिकाओं को पोषण मिलता है। विजातीय द्रव्य उत्सर्जी अंगों में पहॅुच जाता है या पसीने के द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है।

**उपयोगिता :–**

नाड़ी संबंधी रोग अवसाद उच्च रक्त चाप
अनिद्रा
अम्ल–पित्त चर्म रोग निम्न रक्त चाप
मोटापा
ज्वर कम करने में स्नायु दौबर्ल्य स्नायु संस्थान के लिए।

**निषेध :–**

बहुमूत्र तीव्र हृदय रोग लुज मोशन
कमजोरी
त्वचा पर घाव उल्टी मिचली ठंड लगने पर।
आँव–दस्त

**सावधानियाँ :–**

1. खाली पेट या भोजन के तीन घण्टे बाद।
2. ठण्ड लग रही हो तो गरम थैली पैरों की तरफ रखना चाहिये।
3. रोगी को नींद आ जाए तो उठने पर ही पट्टी निकाले।
4. यदि किसी एक अंग में सूजन है तो पहले उस स्थान पर छाती की पट्टी की तरह पट्टी बाँध दे।
5. चादर को प्रयोग करने से पहले अच्छी तरह किसी कीटाणु नाशक घोल से साफ करे या सर्फ से अच्छी तरह साफ करके प्रयोग करें।
6. मक्खियाँ लग रही हो तो जाली से मुँह को ढाक दे।

**7. पेट की गरम–ठण्डी सेंक**

**परिचय :–**

भोजन का पाचन, अवशोषण और अध पचे भोजन का निष्कासन यदि सही ढंग से नही हो रहा हो तो उससे उत्पन्न विकारों को दूर करने के लिए इस उपचार की आवश्यकता होती है। किसी भी अंग के मरम्मत के लिए महत्वपूर्ण उपचार है।

**साधन :–**

हॉट वाटर बैग, घड़ी, छोटा तौलिया, गरम थैली, ठण्डा व गरम पानी।

**पानी का तापमान :–**

| | | |
|---|---|---|
| गरम पानी | – | 108 से 110 डिग्री फेरनहाइट |
| ठण्डा पानी | – | 65 से 70 डिग्री फेरनहाइट |

**सिद्धांत :–**

यह चिकित्सा रक्त को बार–बार क्रमशः सतह पर एवं आंतरिक अंगों तक ले जाकर पम्प की भाँति कार्य करती है।

**विधि :–**

रोगी को पीठ के बल आराम की स्थिति में लेटाकर पेट के कपड़े हटा देते है। सबसे पहले गरम पानी की थैली तीन मिनट तक सेंकते है। इसके बाद ठण्डे पानी की एक भीगी तौलिया एक मिनट तक रखते है। यही क्रम तीन बार करते और अंत में चौथी बार तीन मिनट तक ही ठण्डे पानी से भीगा तौलिया रखकर उपचार की प्रक्रिया पूरा करते है। हर बार ठण्डे पानी से भीगा हुआ तौलिया रखने से पहले तौलिया निचोड़ लेते है।

**अवधि :–**

| गरम पानी की थैली | ठण्डे पानी का तौलिया |
|---|---|
| 3 मिनट | 1 मिनट |
| 3 मिनट | 1 मिनट |
| 3 मिनट | 1 मिनट |
| 3 मिनट | 3 मिनट |

कुल योग – 18 मिनट। (गरम पानी की थैली की सेंक 12 मिनट और ठण्डे पानी का तौलियां की सेंक 6 मिनट)

**क्रिया–प्रतिक्रिया :–**

जब हम गरम सेंक देते है, तब उस स्थान की रक्त केशिकाएँ फैल जाती है। ठण्डे पानी से रक्त केशिकाएँ में संकुचन होता है। जब रक्त केशिकाएँ फैलती है तो वहाँ रक्त संचार बढ़ जाता है। जब संकुचन होता है तो विजातीय द्रव्य को अपने साथ लेकर उस

स्थान से हट जाती है या अन्दर की ओर चला जाता है। इस प्रकार विजातीय द्रव्य रक्त में घुलकर उत्सर्जी अंगों तक पहॅुच जाती है।

**उपयोगिता :–**

| | | | |
|---|---|---|---|
| पेट दर्द | वायु विकार | कब्ज | पेशाब रोग |
| यकृत रोग | संधिवात | श्वेत प्रदर | अस्थमा |
| मधुमेह | मासिक दर्द | पीलिया | बी.पी. एच. |

**निषेध :–**

आंतरिक रक्त स्त्राव में नहीं देते। अम्ल पित्त अल्सर
जला व कटा घाव पेट में घाव।

**सावधानियाँ :–**

1. पानी का तापमान सही हो।
2. रोगी को तेज हवा का झोका नहीं लगना चाहिये।
3. खाली पेट या खाने के तीन से चार घण्टे बाद ही उपचार दे।
4. उपचार के बाद में एनिमा देते है, पहलें नहीं।

**अभ्यास प्रश्न**

**रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए :–**

1. एनिमा का उपयोग ..................................... की सफाई करने के लिए करते है।

अ. अमाशय ब. आंतों स. फेफड़ों

2. हमारे शरीर में ..................................... प्रतिशत जल है।

अ. 75 ब. 70 स. 72

3. उषापान ..................................... के समय किया जाता है।

अ. सुबह ब. दोपहर स. शाम

## 5.7 सारांश

हमारे शरीर में जो अंग भोजन को पचाने, तत्वों को रक्त में मिलाने और प्रत्येक कोशिका तक पहुँचाने में सहायक होते है, उन्हे हम पाचक अंग कहते है जो पाचन तंत्र का हिस्सा होते है। मानव शरीर इंजन के समान है, जिस प्रकार इंजन को चलाने के हेतु कोयले अथवा डीजल की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार हमारे शरीर को चलाने के लिए भोजन की आवश्यकता होती है। पाचन के द्वारा आहार के विभिन्न तत्वों को अत्यंत सूक्ष्म रूप में बदलकर उन्हे इस योग्य बनाया जाता है कि वे रक्त में सरलता से अवशोषित हो सकें। जल चिकित्सा के द्वारा इन रोगों को आसानी से दूर किया जा सकता है।

हमें कार्य करने एवं जीवित रहने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। श्वसन क्रिया के द्वारा प्रत्येक कोशिका को ऑक्सीजन प्राप्त होती है और भोजन का ज्वलन होता है। भोजन रस के जलने से इन कोशिकाओं में ऊर्जा उत्पन होती है। इस प्रकार शरीर में ऊर्जा उत्पादन के लिए ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। ज्वलन क्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न कार्बनडाईऑक्साइड और जल वाष्प को उच्छ्वास द्वारा शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है। इन दोनों क्रियाओं की पूर्ति के लिए श्वसन की आवश्यकता होती है, यह क्रिया श्वसन अंगों द्वारा सम्पन्न की जाती है।

इस प्रकार आपने पाचन एवं श्वसन तंत्र के विभिन्न आयामों को जाना। पाचन तंत्र एवं श्वसन तंत्र की कार्य पद्धति एवं इसके रोगों का संक्षिप्त परिचय एवं जल चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त किया गया। यह जानकारी हमारे दैनिक जीवन में सतत् उपयोगी सिद्ध होगी।

## 5.8 पारिभाषिक शब्दावली

| | | |
|---|---|---|
| उच्छ्वास | – | ऑक्सीजन लेना कार्बनडाईऑक्साइड निकालना। |
| सूर्य | – | तप्त जल – धूप में गर्म पानी । |
| मेरूदण्ड | – | रीढ़ की हड्डी। |
| उषापान | – | प्रातः सोकर उठते ही पानी पीना। |
| संकुचन | – | खिंचना। |

## 5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर :– 1. आंतों 2. 70 प्रतिशत 3. सुबह

## 5.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची


आचार्य पं. श्रीराम शर्मा, पुनरावृत्ति (2011) पंच तत्वों द्वारा संपूर्ण रोगों का निवारण, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, उत्तरप्रदेश

दूरस्थ शिक्षा केन्द्र, (2008), वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियॉ, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड

मुखर्जी कुलरंजन, (2007), दैनन्दिन रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा, सादार्न ऑफसेट प्रिन्टर्स, कलकत्ता, पं. बंगाल

जिन्दल राकेश, (2005) प्राकृतिक आर्युविज्ञान, आरोग्य सेवा प्रकाश, मोदीनगर, उत्तरप्रदेश


## 5.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. पाचन किसे कहते है? पाचन तंत्र के किन्ही दो रोगों का विस्तार से वर्णन करें।
2. एनिमा क्या है? इसकी विधि बताइये एवं कब्ज को दूर करने में यह किस प्रकार सहायक है?
3. श्वसन तंत्र के रोगों एवं इसकी जल चिकित्सा का विस्तार पूर्वक वर्णन करें।
4. गरम–ठण्डा कटि स्नान को विस्तार समझाइये।

# इकाई 6 उत्सर्जन तंत्र एवं त्वचीय तंत्र के रोगों की जल चिकित्सा

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्‌देश्य
6.3 उत्सर्जन तंत्र का सामान्य परिचय
 6.3.1 उत्सर्जन तंत्र के रोग
 6.3.2 पेशाब का रूकना
 6.3.3 प्रोस्टेट ग्रंथि की सूजन
 6.3.4 गुर्दे का दर्द
6.4 त्वचीय तंत्र का सामान्य परिचय
 6.4.1 त्वचीय तंत्र के रोग – चेचक
 6.4.2 दाद
 6.4.3 पसीना अधिक निकलना
6.5 उत्सर्जन तंत्र एवं त्वचीय तंत्र के रोगों की जल चिकित्सा
6.6 सारांश
6.7 पारिभाषिक शब्दावली
6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.90 संदर्भ ग्रन्थ सूची
6.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.11 निबंधात्मक प्रश्न

## 6.1 प्रस्तावना :

प्रस्तुत इकाई में प्राकृतिक चिकित्सा में आने वाली उपचार पद्धति के अर्न्तगत हम उत्सर्जन तंत्र एवं त्वचीय तंत्र के रोगों की जल चिकित्सा का अध्ययन करेगें।

पंच महाभूतों की महत्ता को स्वीकार करते हुए प्राकृतिक चिकित्सकों ने अत्यंत सुगमता पूर्ण तरीके से रोग–निदान की व्याख्या की है। इसके अर्न्तगत आने वाली जल चिकित्सा की अनेक विधियाँ प्राचीन ग्रंथों, चिकित्सा शास्त्रों एवं वेद–शास्त्रों से भी वर्णित की गई है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान सकेंगें की किस प्रकार सामान्य जीवनशैली में आसानी से उपलब्ध जल के द्वारा उत्सर्जन तंत्र एवं त्वचीय तंत्र के रोगों के निदान संभव हैं।

## 6.2 उद्‌देश्य :

इस इकाई में आप जान पायेंगें:–

1. उत्सर्जन तंत्र की सामान्य जानकारी
2. त्वचीय तंत्र की सामान्य जानकारी

3. उत्सर्जन एवं त्वचीय तंत्र से संबधित रोगों की जानकारी
4. उत्सर्जन एवं त्वचीय तंत्र के लक्षण एवं कारण
5. उत्सर्जन एवं त्वचीय तंत्र के रोगों की जल चिकित्सा

## 6.3 उत्सर्जन तंत्र का सामान्य परिचय

आप इस तंत्र के द्वारा रक्त के अन्दर का यूरिया, जो यकृत द्वारा तैयार किया जाता है वह मूत्र बनकर बहार निकल जाता है। इस तंत्र में कार्य करने वाले कई अंग सम्मिलित हैं। जैसे – गुर्दे, यूरेटर (मूत्रनली), मूत्राशय, यूरेथ्रा।

सभी प्रकार के उत्सर्जी अंगों के विकारों को जानने के लिए समूची मूत्र निकास प्रणाली को समझना आवश्यक है। विषाक्त खनिज लवण युक्त जल व रक्त गुर्दे में पहुचता है। गुर्दे इसको छानने का कार्य करते है। यूरेटर गुर्दे और मूत्राशय को जोड़ने वाली नलियों को कहते हैं। मूत्राशय में मूत्र जमा होता है। यूरेथ्रा लिंग और मूत्राशय को जोड़ती है।

गुर्दे (किडनी) कमर में रीढ़ की हड्डी के दोनों ओर स्थित होती है। इनका आकार लोभिया तथा सेम के बीज की तरह होता है। इनकी लम्बाई 4 इंच चौड़ाई ढ़ाई इंच और मोटाई डेढ़ इंच होती है। प्रत्येक का भार लगभग 5 या 6 आउंस (150 ग्राम) होता है। गुर्दा पतली–पतली नलियों का एक संगठन है जिसमें सर्व प्रकार की रक्त नालियां–धमनियाँ, शिरायें, डक्ट्स, कैपिलरीज होती हैं। यह सब मांस के रेशों से बंधी होती हैं और ऊपर से एक झिल्ली चढ़ी होती है। इसमें दो शुद्ध रक्त नालियां शुद्ध रक्त ले जाती हैं। इसके उपरांत अशुद्ध रक्त नालियां गुर्दो की गन्दगी बाहर ले आती है।

प्रत्येक गुर्दे से एक मूत्रनली – इस प्रकार इनमें दो मूत्र नालियां निकलती है। यह नालियां लगभग 12 इंच लम्बी होती है और दूसरी ओर मूत्राशय से जुड़ जाती हैं।

मूत्राशय एक रबड़ की थैली की भांति होता है। जिसमें बूंद–बूंद करके मूत्र जमा होता रहता है। लगभग हर 30 सेकण्ड के पश्चात् एक बूंद तैयार होकर मूत्राशय में पहुँच जाता है। जब मूत्राशय भर जाता है तो मूत्राशय के अन्दर की दीवार की झिल्ली (जिसका सम्बंध मस्तिष्क से होता है) द्वारा मस्तिष्क को सूचना मिलती है और मूत्राशय के नीचे का द्वार खुल जाता है। पुरूषों में मूत्र नली लगभग 8 इंच लम्बी होती है परंतु स्त्रियों में केवल डेढ़ इंच लम्बी होती है और योनि–छिद्र से ऊपर की ओर उसका मुँह होता है।

मूत्र को सामाजिक वातावरण के कारण कदापि रोकना नही चाहिये। जहाँ सभ्यता मानी जाती है वहाँ पेशाब करने के लिए कोई मनाई नहीं है, किसी जगह कर लो परन्तु जहाँ असभ्यता मानी जाती है वहाँ पेशाब करने के लिए खास स्थान बने होते है। इधर–उधर पेशाब करने के कारण लोग पकड़ भी लिए जाते है। ऐसा असभ्य जगत गुर्दो की बीमारियों का अधिक शिकार रहता है।

### 6.3.1 उत्सर्जन तंत्र के रोग :–

उम्र ढलने के साथ–साथ समूची मूत्र प्रणाली में शामिल अंगों–गुर्दो, मूत्राशय, मूत्रनली में विकार की समस्या शुरू होती है। इन उत्सर्जी अंगों में आमतौर पर कैंसर, पथरी, सिस्ट या सिकुड़न जैसे प्रमुख विकार पैदा होते हैं। इनके प्रति लापरवाही बरतने से अंतिम तौर पर गुर्दे खराब हो सकते हैं। फलस्वरूप आकस्मिक मौत हो सकती है। तपेदिक (टी.बी.), मधुमेह, उच्च रक्त चाप, धूम्रपान की आदत, पानी कम पीना और प्रोस्टेट ग्रंथी में वृद्धि आदि कारणों से मूत्रांगों में विकार उत्पन्न हो जाते है। एक अध्ययन के मुताबिक 40

साल से ऊपर के वयस्कों में से करीब 15–20 फीसदी लोग किसी न किसी प्रकार के मूत्रांग विकार से पीड़ित हैं। 60 वर्ष या इससे अधिक उम्र के हर दूसरे बुजुर्ग को मूत्र निकास अंगों में विकार की शिकायत है। मूत्रांग विकार के शिकार लोगों की संख्या उत्तरी भारत में अधिक है। महिलाओं की अपेक्षा पुरूषों में मूत्रांग संबंधी विकार अधिक पाया जाता है, परंतु रजोनिवृत्ति के बाद महिलाओं को भी पुरूषों के बराबर खतरे रहते हैं।

**गुर्दे–** इसमें चार तरह की बीमारियाँ हो सकती हैं– पथरी, कैंसर, सिस्ट और पी.यू. जे. आब्सट्रक्शन। गुर्दे में गड़बड़ी की अनदेखी से एक प्रकार का हार्मोन निकलता है जो शरीर का रक्तचाप बड़ा देता है। गुर्दे के स्थान पर दर्द होना, पेशाब के रास्ते खून निकलना, पेशाब में जलन होना, जाड़ा लगकर बुखार आना, रक्तचाप बढ़ जाना आदि गुर्दे में पथरी होने की निशानी हैं। यदि पेशाब में चाय, कैम्पाकोला या कोकाकोला जैसे रंग का खून निकलता है तो व्यक्ति को विशेष ध्यान देना चाहिए, क्योंकि इसका मतलब गुर्दे में कैंसर हो सकता है। गुर्दे में छोटे आकार का सिस्ट होने पर शरीर में कोई लक्षण नहीं उभरता। लेकिन जब सिस्ट बड़ा हो जाता है, तो गुर्दे वाली जगह पर दर्द होता है। कुछ मरीजों में यूरेटर संकरा हो जाता है। इसके कारण गुर्दो में रूकावट पैदा हो जाती है। इसे पेलविग यूरोटिक जंक्शन या पी.यू.जे. आब्सट्रक्शन कहते हैं। इसके होने पर गुर्दा फूल जाता है। पेट की दायीं तरफ निचले हिस्से में दर्द होता है या भारीपन रहता है। इसके होने के दो कारण होते है– पहला सामान्य जन्मजात कारण है। छह में से चार मरीजों में यह कारण पाया जाता है। दूसरा कारण है यदि व्यक्ति पहले पथरी आदि का ऑपरेशन करवा चुका है, तो यूरेटर में सिकुड़न पैदा हो सकती है।

**यूरेटर–**इसमें खासतौर पर तीन बीमारियाँ हो सकती है– पथरी, कैंसर और स्ट्रिकचर। यूरेटर में किसी प्रकार की खराबी होने पर मरीज को तेज दर्द होता है या उलटी होती है। अधिक स्ट्रिक्चर या सिकुड़ापन होने पर गुर्दे से मूत्राशय में मूत्र निकास बाधित हो जाता है। फलस्वरूप गुर्दा फूल जाता है।

**मूत्राशय–**गुर्दे से विसर्जित पेशाब मूत्राशय में जमा रहती है। इसमें पथरी, कैंसर, टी.बी. अल्सर और इंफेक्शन आदि हो सकता है। पेशाब में जलन हो सकती है या बुखार हो सकता है। मूत्राशय में सबसे अधिक इंफेक्शन होता है, जो बहुत ही घातक सिद्ध होता है क्योंकि यह कैंसर, अल्सर आदि का कारण बन सकता है।

**यूरेथ्रा–** इसमें सिकुड़न हो सकती है। इसके कारण पेशाब की गति कम हो जाती है। पेशाब की धार पतली हो जाती है या पेशाब करने में जोर लगाना पड़ता है। यूरेथ्रा में भी पथरी, कैंसर हो सकता है या इंफेक्शन हो सकता है।

**6.3.2 पेशाब का रूकना :–** मूत्राशय में किसी रूकावट के कारण यदि मूत्र प्रवाह रूक जाता है, तो उसे पेशाब का रूकना कहते है।

पेशाब रूकने का मतलब है पेशाब की थैली में पेशाब के जमा होने पर भी आदमी पेशाब नहीं कर पाता। पेशाब आने की भावना होती है लेकिन वह बाहर नहीं आती। पेशाब रूकने से गंभीर परिणामों का सामना करना पड़ता है।

**पेशाब के रूकने के कारण :–**

1. प्रोस्टेट नाम की ग्रंथि बढ़ने से।
2. यूरेथ्रा में स्ट्रिक्चर होने से।
3. मूत्र मार्ग में संकुचन होने से।
4. पथरी होने से।

5. मूत्राशय का ट्यूमर होने से।
6. गर्भाशय में वृद्धि होने से।

**लक्षण :–**

1. अचानक पेशाब रूकना– इसमें पेशाब अचानक अड़ जाती है। पेट में जोरों का दर्द होता है तथा रोगी अस्वस्थ होता है।
2. धीरे–धीरे पेशाब का रूकना– इसमें पेशाब कुछ दिन, माह से धीरे–धीरे जमा होती है, जिस कारण रोगी को पता चले बिना उसकी थैली में पेशाब जमा रहती है और वह धीरे–धीरे बढ़ती है।
3. पेशाब का जमा होकर धीरे–धीरे चूना– ऊपर के दोनों प्रकारों में यदि ध्यान न दिया जाए तो जमी हुई पेशाब चूने लगती है। मरीज को ध्यान में नहीं आता कि पेशाब चू रही है उसे रोकना भी चाहे तो रूक नहीं सकती।

**6.3.3 प्रोस्टेट ग्रंथि की वृद्धि :–**पाठको यदि किसी कारण से प्रोस्टेट ग्रंथि में प्रदाह हो जाए तो उसे प्रोस्टेटाइटिस कहते है। बुढ़ापे में हर एक व्यक्ति को किसी न किसी बीमारी का सामना करना पड़ता है। प्रोस्टेट ग्रंथि वृद्धि की बीमारी भी एक ऐसी बीमारी है, जो बुढ़ापे में तकलीफ देती है। इस बीमारी में ठीक तरह से मूत्र त्याग न होना, बार–बार मूत्र त्याग के लिये जाना पड़ना आदि बहुत–सी तकलीफ इस रोग के कारण होती है।

प्रोस्टेट ग्रंथि का बढ़ना वृद्ध पुरूषों की आम बीमारी है। पचास वर्ष या इससे ज्यादा उम्र का पुरूष जब यह शिकायत करता है कि उसे पेशाब करने में तकलीफ होती है तब डाक्टर प्रायः सबसे पहले प्रोस्टेट ग्रंथि की वृद्धि का निदान करता है।

हमारे देश में पुरूषों में प्रोस्टेट ग्रंथि बढ़ जाने की समस्या बहुत ही व्यापक है। तकरीबन 20 से 30 प्रतिशत लोग प्रोस्टेट की इस बीमारी से ग्रस्त हैं। इनमें से करीब 50 से 60 प्रतिशत लोगों को ऑपरेशन कराने की जरूरत पड़ती है। आमतौर पर यह समस्या 40 से 50 साल की उम्र के बाद ही आरंभ होती है।

**पौरूषग्रंथि क्या है?**

मूत्रनली के प्रथम भाग में लगी हुई बेर के आकार की एक ग्रंथि जो नली को चारों ओर से घेरे रहती है, पौरूष ग्रंथि कहलाती है। यह एक सहायक सैक्स अंग के रूप में जानी जाती है। इसकी ग्रंथवत् रचना फाइवरस एवं मसकुलर टिशू (उत्तक) की बनी होती है। किशोरावस्था में इस ग्रंथि का आकार नींबू के बराबर होता है। प्रौढ़ावस्था में 50 वर्ष की आयु के आस–पास इस ग्रंथि का आकार धीरे–धीरे बढ़कर संतरे के बराबर का भी हो सकता है। आकार में यह परिवर्तन बढ़ती आयु के साथ होता है।

प्रौस्टेट ग्रंथि जैसे–जैसे बढ़ती है वैसे–वैसे उसका आकार अंदर–बाहर सभी तरफ से बढ़ता है। इस वृद्धि के कारण मूत्र नलिका पर दबाव पड़ता है और मूत्र के मार्ग में बाधा उत्पन्न होती है। इसी को प्रोस्टेट की बीमारी कहते है। इस तरह की बाधा उत्पन्न होने पर उस व्यक्ति की प्रोस्टेट ग्रंथि की अनियंत्रित वृद्धि हुई है, ऐसा समझा जाना चाहिए। कुछ विशेषज्ञों का मत है कि पौरूष ग्रंथि में नई कोशिकाएं बनने लगती है। जिससे उसके आकार में वृद्धि हो जाती है।

यह ग्रंथि केवल पुरूषों में होती है। यह ग्रंथि काम–क्रिया में महत्वपूर्ण भाग लेती है। वीर्य स्खलन के समय इस ग्रंथि का स्त्राव शुक्राणुओं के साथ मिल जाता है, जिसे प्रोस्टेटिक फ्लूड कहते है। इस फ्लूड में शर्करा भी होती है जो शुक्रकीट को जीवित रखता है।

**कारण :–**

1. मूत्र त्याग की इच्छा होने पर भी न जाना।
2. अधिक देर तक मूत्र को रोक के रखना।
3. गरिष्ठ भोजन करना।
4. पानी कम पीना।
5. वीर्य का स्खलन सही ढंग से न होना।

**पौरूष ग्रंथि वृद्धि के लक्षण :**

1. बार–बार मूत्र त्याग की इच्छा होना।
2. पेशाब में जलन।
3. पेशाब प्रारंभ होने में हिचकिचाहट व देरी।
4. बारीक धार या बूँद–बूँद करके मूत्र निकलना।
5. मूत्र विर्सजन में कठिनाई अनुभव करना।
6. मूत्रमार्ग से चिपचिपा पदार्थ निकलना।
7. रात्रि के समय मूत्र त्याग की आवृत्ति बढ़ जाना और बार–बार पेशाब के लिए उठना।
8. मूत्र रोकने में असमर्थता, तुरंत पेशाब का हो जाना।

**सामान्य चिकित्सा :–**

1. जिन्हें प्रोस्टेट ग्रंथि की मामूली सूजन भी हो, उन्हे ठंड से बचाव करना चाहिए।
2. जब भी मूत्र की विसर्जन की आवश्वकता प्रतीत हो तुरंत मूत्र त्याग के लिए जाना चाहिए।
3. पानी, जूस आदि खूब पीना चाहिए।
4. भोजन में मूली, गाजर, टमाटर, हरी पत्तेदार सब्जियां आदि का सेवन करना चाहिए।
5. ज्यादा मिर्च, मसाले, अचार, चटनी, मदिरा, मांस, मछली, अंडों का परित्याग उचित रहता है।
6. कब्ज न होने दें।

**6.3.4 गुर्दे का दर्द :–** जो वेदना मलाशय और मूत्राशय से आरम्भ हो तथा गुदा एवं मूत्रेंद्रिय का भेदन–सा करती हुई प्रतीत हो वह रीन कालिक/गुर्दे का दर्द (वृक्काश्मरी) कहलाती है।

यह एक अचानक उठने वाला दर्द है जो नीचे पेडूओं व मूत्राशय से आरंभ होकर कमर में पीछे की ओर व वृक्ककोश तक आगे की तरफ पहुँचता है। यह कुछ समय से लेकर कुछ घंटों तक रहता है। इसमें दर्द इतना अधिक होता है कि मरीज बिस्तर में एक करवट से दूसरी करवट बदलता रहता है।

**लक्षण :**

1. कमर व पेडू में अचानक दर्द जो जंघा एवं वृषणकोष की तरफ जाता है।
2. दर्द तीव्र होने से मरीज बिस्तर में उलट–पलट खाता है।
3. रोगी व्याकुल होता है और उसे ठंडा पसीना आता है।
4. दर्द कुछ समय से लेकर कुछ घंटे तक रहता है। जब पथरी या तो वृक्क में फिर से लौट आये या मूत्राशय में उतर आए तो दर्द कम होने लगता है।
5. कभी–कभी ठंड के साथ बुखार हो जाता है।
6. रोगी का जी घबराता है, उल्टी आती है।
7. चेहरे का रंग पीला पड़ जाता है।

8. नाड़ी तेज चलने लगती है।
9. मूत्र बूँद–बूँद करके दर्द के साथ आता है या इसके रूक जाने से पेट में भारीपन व दर्द बढ़ जाता है।
10. पार्श्व में छूने पर दर्द होता है।
11. मूत्र में रक्त कास्ट आदि का पाया जाता है।
12. दर्द के साथ कंपकंपी, वमन, पसीना, कोलेप्स और अंडकोष फूलकर सिकुड़ा हुआ या ऊपर को उठा हुआ–सा प्रतित होता है।

**कारण :**

1. चयापचयी परिवर्तन से।
2. संक्रमण और मूत्रमार्ग में अवरोध से।
3. रक्त का थक्का बनने से।
4. रचना संबंधी विकृतजन्य कारण।
5. मूत्र के अधिक गाढ़ा होने से।
6. असंतुलित आहार से।
7. पथरी।

**सामान्य चिकित्सा :–**

1. संतुलित आहार ले।
2. पानी अधिक से अधिक पानी पीये।
3. नियमित विश्राम करे।
4. शारीरिक श्रम करें।
5. कमर पर कपड़े की गीली पट्टी दे।

## 6.4 त्वचीय तंत्र का सामान्य परिचय :–

त्वचा हमारे सारे शरीर के लिए सुरक्षात्मक आवरण के रूप में कार्य करती है और विभिन्न छिद्रों, जैसे – नाक, कान, मुंह, गुदा द्वार इत्यादि पर ये श्लेष्मिक झिल्ली मिल जाती है।

यह शरीर के सभी तरल पदार्थो व अंगों को बाह्य वातावरण से बचाती है इसके फलस्वरूप शरीर की सभी कोशिकाओं को वह वातावरण मिलता है जिसमें वे जीवित रह सकें। इस सुरक्षात्मक कार्य को अधिक मजबूत बनाने के लिये त्वचा के कुछ सहायक अंग भी है जैसे– नाखून और बाल।

बाल शरीर से अधिक ताप को निकलने नहीं देतें। त्वचा की मोटाई आवश्यकतानुसार भिन्न–भिन्न स्थानों पर भिन्न–भिन्न होती है। ये लगभग 0.12 मि.मी. से 1.2 मि.मी. मोटी होती है। चेहरे पर त्वचा सबसे कम मोटी होती है और हथेली और पैर के तलवों पर सबसे अधिक मोटी होती है। साधारणतया त्वचा अभ्युदरीय भाग पर पतली और पृष्टीय भाग पर मोटी होती है, पर हथेली और तलवों पर इसका उल्टा होता है। आइये अब हम इस तंत्र से संबंधित रोगों का अध्ययन करते है।

### 6.4.1 त्वचीय तंत्र के रोग – चेचक

यह रोग प्रायः वसंत और ग्रीष्म में फैलता है। इसकी खासियत यह है कि जिसको एक बार चेचक निकलकर ठीक हो जाती है उसका बदन बिल्कुल निर्दोष और शुद्ध हो जाता है। यहां तक कि फिर कम से कम 12 वर्षों तक इस रोग के दुबारा होने की संभावना नहीं रहती। ऐसे व्यक्ति की तंदुरुस्ती बढ़ जाती है, साथ ही शक्ति और आयु भी। परन्तु यदि

किसी कारण से रोगी यदि रोग की भीषणता को सहन न कर सका अथवा उचित उपचार न हुआ तो रोगी निकम्मा या अपाहिज हो जाता है। यहाँ तक कि मौत भी हो सकती है।

**चेचक की तीन किस्में हैं–**

1. रोमान्तिका
2. मसूरिका
3. शीतला

**लक्षण :**

1. यह अत्यंत संक्रामक और स्पर्शाक्रामक रोग है।
2. मसूरिका बच्चों को ही अधिक होती है।
3. आरम्भ में बच्चा अस्वस्थ सा जान पड़ता हैं।
4. ज्वर रहता है।
5. सुस्ती, कमजोरी और सिर में भारीपन होने लगता है।
6. आंखों से आँसू निकलना।
7. नाक गले आदि में जुकाम का जोर रहना।
8. रोशनी बुरी मालूम होना।
9. खांसी व छींक आना।
10. चेहरे पर तमतमाहट होना।
11. पूरे शरीर पर दाने निकलते हैं।
12. व्यक्ति की भूख मर जाती है और मुख का स्वाद बिगड़ जाता है।
13. कब्ज, तथा रीढ़ में दर्द होता है।

**सामान्य चिकित्सा :–**

1. रोगी को छाया में रखा जाये जहाँ उसकी आंख पर तेज रोशनी न पड़े।
2. रोगी के रहने का स्थान साफ–सूथरा और हवादार हो।
3. आंखों को गुलाब जल या फीटकरी के पानी से रोज दो–तीन बार धोयें तथा पलकों को आपस में चिपकने से बचाने के लिये अच्छे किस्म की वेसलीन या शुद्ध घी का अंजन करें।
4. कुनकुने पानी का एनिमा प्रतिदिन लें। पानी में नींबू का रस मिला हो तो और अच्छा।
5. ज्वर उतरने तक भोजन बंद रखें। ज्वर उतरने पर पहले तीन दिन फल का जूस पानी मिलाकर दें।
6. पहले आधा ग्लास पानी और आधा संतरे या अंगूर का जूस कुल एक ग्लास दें। फिर इसकी मात्रा बढ़ाकर पानी कम कर दें और बाद में केवल जूस, तीन–तीन घंटे पर। अंत में नाश्ते में ताजा फल, दोपहर को सब्जी दें। इच्छा हो तो तीसरे पहर भी फल का जूस रोगी ले सकता हैं। तीन–चार दिन बाद नाश्ते में दूध बढ़ाकर धीरे–धीरे रोगी को संतुलित प्राकृतिक आहार पर लाना चाहिये।
7. कोई भी चेचक हो वह शरीर स्थित विजातीय द्रव्यजनित अधिक उष्णता के परिणाम स्वरूप होती है जो मात्र शीतोपचार से जाती है।
8. सादा और प्राकृतिक भोजन लें।
9. पेट सदैव साफ रखें।
10. सोते समय पेट पर गीली पट्टी बांधे।
11. जरा भी तबियत अनमनी होने पर भोजन बंद कर दें और एनिमा लें।
12. दिन में दो बार कटि स्नान भी।

13. उपवास न बन पड़े तो फलों का जूस लें।
14. चेचक के रोगी के सम्पर्क मे सतर्कता से आयें क्योंकि छूत का रोग होने से दूसरे शरीर में संक्रमण की बहुत संभावना होती है।
15. नीली बोतल के सूर्य की रोशनी में गर्म तेल की मालिश करने से सिर के घाव मुलायम बनते हैं तथा मस्तिष्क को बचाव होता है।
16. मुँह को चेचक से बचाने हेतु 5–6 बार फिटकरी के जल से कुल्ला करें।
17. इस दशा में बंद कमरे में गुनगुने जल से भरे टब में लेटना लाभप्रद है। पानी से निकलने पर शरीर को पोंछकर और कंबल ओढ़कर गर्मी लाना जरूरी है।
18. यदि रोगी निर्बल न हो तो उसे भाप स्नान देने के बाद आधा घंटे के लिये पूरे शरीर पर चादर की लपेट, उसके दो घंटा बाद पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी आधे–आधे घंटे के लिए, 3–3 घंटे पर लगाना चाहिये। आवश्यकतानुसार इस प्रयोग को सप्ताह में दो–तीन बार दुहरायें।
19. दोनों समय कटि या मेहन स्नान लें। ऐसा करने से खतरा टल जायेगा या उसके असर बहुत कम होगें।
20. उपर्युक्त आरम्भिक दशा में तीन–चार दिन बाद चेचक का ज्वर चढ़ता है। अतः ज्वर चढ़ने का अनुभव होते ही किसी ठण्डे साफ–सूथरे हवादार मकान में साफ बिस्तर पर आराम से लेट जायें और थोड़ा–थोड़ा गरम जल प्रचुर मात्रा में पीयें।
21. श्वेत सुगंधित पुष्प और नीम की हरी पत्तियाँ रोगी की शैया के पास रखें और नीम के गुच्छे से रोगी की अंतिम अवस्था तक हवा करनी चाहिये तथा कमरे में यदा–कदा सूखी नीम की पत्तियों की धुनी जलावें। इससे कमरे का वातावरण स्वच्छ रहता है। रोग अच्छा होने में सहायता मिलती है। पक्के फर्श को प्रतिदिन धोयें और कच्चे फर्श हो तो गोबर से प्रतिदिन लिपायी करें।
23. इस ज्वर की दूसरी दशा में ज्वर होता है। 4 दिनों में 103 से 105 डिग्री तक चढ़ता हैं। ज्वर के चढ़ने से पहले जाड़ा और कंपकंपी भी होती है। सिर में दर्द, रीढ़ का दर्द, वमन, शरीर में ऐंठन और जलन, नाड़ी तेज चलती है, चेहरा और आंख लाल हो जाते हैं, प्यास बढ़ती है, कभी–कभी जुकाम के लक्षण, घबराहट और अवसाद के अलावा पलकों के बाल खड़े हो जाते हैं।
24. ऐसी दशा में एनिमा लेकर दोनों समय 15 दिनों तक कटि स्नान लेवें लेकिन ठण्ड की अनुभूति हो तो एनिमा लें। नींबू का रस मिला पानी पीयें या फलों के जूस में थोड़ा पानी मिलाकर लें, इन उपायों से सुरक्षा और उपचार संभव है।
25. उस वक्त शरीर में दाह उत्पन्न हो जाने के कारण मारे घबराहट के कारण रोगी भागने और प्रलाप करने लग जाता है। दाने पूर्णतः निकल आने पर ज्वर नरम पड़ता है इस समय रोगी की इच्छानुसार फल–जूस पानी मिलाकर या दूध कम मात्रा में दे सकते हैं।

**6.4.2 दाद :–** त्वचा से जुड़ी बीमारियाँ भी कई बार गंभीर समस्या बन जाती है। ऐसी ही एक समस्या है एक्जीमा या दाद। दाद पर होने वाली खुजली और जलन पीड़ित व्यक्ति का जीना मुश्किल कर देती है। दाद ऐसा चर्म रोग हैं कि समय रहते इसका इलाज नहीं किया गया तो यह फैलता जाता है। घरेलू उपचार जो कि घर में ही कर सकते हैं, किये जायें तो आशातीत सफलता मिलती है। दाद कहीं भी हो सकता है। वैसे यह जांघों में, गर्दन के पीछे के भाग में, कान के नीचे यानी संधि के किसी भी भाग पर हो सकता है।

**लक्षण :**

1. त्वचा में चकते बन जाते हैं।
2. शरीर पर छोटे–छोटे सफेद या भूरे रंग के निशान निकल आते हैं जो लगातार फैलते जाते है।
3. त्वचा में उभरे इन दाद में खुजली पैदा हो जाती है जो कि खीझ पैदा करती है।

**कारण :**

1. बिगड़े खान–पान से।
2. फंगस, दूषित रक्त से।
3. आंतरिक अशुद्धियों की अधिकता से।

**सामान्य चिकित्सा :–**

1. दाद के शुरू होते ही तीन–चार घंटे पर थोड़ी देर गरम और ठण्डी सेंक देकर उस स्थान पर उष्णकर गीली मिट्टी का प्रयोग किया जाये तो उसकी जड़ कट जाती है।
2. सूखे दाद को उस अंग पर आधा घंटा तक गरम पानी में डूबो रखने से लाभ होता है। उसके बाद उस पर उष्णकर गीली मिट्टी की पट्टी रखें।
3. दाद रोग की बढ़ी हुई दशा में और ठण्डा दाद होने पर उस स्थान को गुनगुने पानी में दिन में तीन बार डूबो कर रखें।
4. तत्पश्चात् उस पर गरम और ठण्डी सेंक दें।
5. प्रतिदिन रात को सोते समय दाद वाले स्थान पर उष्णकर गीली मिट्टी की पट्टी लगाकर सोयें।
6. सप्ताह में 1–2 बार पूरे शरीर पर गीली चादर की लपेट लगायें तथा प्रतिदिन दो बार कटि स्नान लें।
7. दिन में दो बार दाद पर भाप स्नान लेकर उसके बाद गीली मिट्टी की पट्टी रखने से भी लाभ होता है।
8. ज्वर रहने पर रात में पेडू पर भी गीली मिट्टी की पट्टी रखें।
9. पेट साफ न होने पर रसाहार, उपवास और एनिमा का प्रयोग करें।
10. रोगी को नीबू–पानी प्रचूर मात्रा में दे तथा भोजन सप्राण और सादा करायें।

**सावधानियाँ :–**

1. कब्ज न रहने दें।
2. शुद्ध वायु में भ्रमण करें।
3. शुद्ध पानी पीएँ।
3. नाखून काँट–छाँट कर साफ रखें।
4. चर्म रोगी के संपर्क से बचें।
5. हमेशा कीटाणुनाशक साबुन से नहाएँ।
6. हमेशा स्नान करें।
7. शरीर को साफ और पसीना रहित रखें।
8. साफ–सुथरे और धुले वस्त्र पहनें।

**6.4.3 पसीना अधिक निकलना :–** गर्मियों के मौसम में पसीना आना वैसे तो शरीर के लिए सेहतमंद होता है लेकिन जिन लोगों को बहुत अधिक पसीना आता है उन्हें डीहाइड्रेशन या नमक की कमी जैसी कई दिक्कतें हो सकती हैं। पसीने में मौजूद कीटाणु तेजी से बढ़ते हैं और इसी कारण पसीने से दुर्गंध आती है। बहुत अधिक पसीना आने की

स्थिति को हाइपरहाइड्रोसिस भी कहते है। पसीना अधिक निकलना कमजोरी की निशानी है और रक्त में विजातीय द्रव्य के भरने का संकेत है।

**लक्षण :**

1. रात में सोते समय अधिक पसीना छूटता है जो अस्वाभाविक है।
2. त्वचा के छिद्रों से अधिक पसीना रिसना।
3. शरीर में अस्वाभाविक रूप से अत्यधिक पसीना छूटने लगे तो इस रोग के लक्षण हैं।

**कारण :**

1. तनाव।
2. हार्मोनल बदलाव।
3. मसालेदार डाइट।
4. अधिक दवाएं,
5. स्वेट ग्लैंड में गड़बड़ी,
6. मौसम और मोटापा आदि।

**सामान्य चिकित्सा :–**

1. शरीर को सबल बनाने हेतु एनिमा, कटि–स्नान तथा कमर की गीली पट्टी का प्रयोग करे।
2. फल, दूध, ताजी सब्जी तथा सादा और सप्राण भोजन खास तौर से करना चाहिये।
3. रोगी के शरीर को दिन में दो–तीन बार और सोने जाने से पहले सहन योग्य गरम जल से भीगे और निचोड़ कपड़े से पोछ लेना चाहिये।
4. केवल हाथ–पैरों में पसीना आता हो तो उपर्युक्त उपचार के साथ–साथ हाथ पैरों पर आसमानी रंग के बोतल से सूर्य तप्त तेल की मालिश भी करें।
5. पानी अधिक से अधिक पीये।

## 6.5 उत्सर्जन तंत्र एवं त्वचीय तंत्र के रोगों की जल चिकित्सा

1. एनिमा
2. मेहन स्नान
3. गरम–ठंडा कटि स्नान
4. पैर का गरम नहान
5. भाप नहान
6. सारे बदन की गीली पट्टी
7. पेट की गरम–ठण्डी सेंक

**1.एनिमा**–यदि स्वभाविक रूप से मल का निष्कासन न हो रहा हो तो आँतों में चिपके हुए मल को निकालने के लिए एनिमा का उपयोग किया जाता है। यह एक निरापद उपचार है एवं यह कभी भी नुकसान नहीं करता है।

**साधन :** एनिमा पात्र, रबड़ की नली 4–5 एफ नोजल, एक कैथेटर–12 नम्बर, एक तखत, ऑयल या वैसलिन, कीटनाशक घोल, गर्म–ठण्डा पानी।

**एनिमा के प्रकार –**

1. साधारण ऐनिमा – यह एक से ड़ेढ़ लीटर गुनगुने पानी का होता है। (98.6 डिग्री फेरनहाइट से 99 डिग्री फेरनहाइट)

2. टानिक एनिमा – 250 से 350 मि.ली. ठण्डे पानी का होता है। 80 डिग्री फेरनहाइट शरीर तापमान से थोड़ा कम हो ठण्डा पानी ये साधारणतया बड़ी आँतो की कमजोरी को शक्ति प्रदान करने के लिए दिया जाता है।

3. गर्म पानी का एनिमा – ये कमजोर व बुजुर्ग लोगों को दिया जाता है। पानी की मात्रा 500 मि.ली., तापमान गुनगुने से थोड़ा ज्यादा। (100 डिग्री फेरनहाइट से 104 डिग्री फेरनहाइट)

4. आँतों में पानी रोकने वाला एनिमा – यह 100 से 150 मि.ली. पानी का होता है जो रात भर रोक के रखते है, इससे सुबह शौच करने में आसानी होती है।

5. मिश्रित ऐनिमा – यह पानी में जड़ी–बूटी, शहद नींबू आदि मिलाकर साधारण एनिमा की तरह दिया जाता है। जैसे–

- सूखे मल में तेल व पानी का एनिमा।
- पेट में कीड़े पड़ने पर नीम की पत्ती का एनिमा।
- वायु दोष में लहसुन पानी का एनिमा।
- कोलाईटिस में मट्ठा का एनिमा।

| **आयु** | **मात्रा** |
|---|---|
| 6 माह से 1 वर्ष | 100 –200 मि.ली. |
| 1 वर्ष से 6 वर्ष | 200 – 500 मि.ली. |
| 6 से 12 वर्ष | 500 मि.ली. से 1 लीटर |
| 12 से 25 वर्ष | 1 लीटर से 1.25 लीटर |
| 25 वर्ष से अधिक | 1.25 लीटर से 1.5 लीटर |

**सिद्धांत :**इस चिकित्सा द्वारा आँतों को बिना किसी उत्तेजना व जलन के मलरहित किया जाता है। मिश्रित एनिमा में ये लागू नहीं होता।

**विधि :–**

**एनिमा चार प्रकार से दिया जाता है :**

1. पीठ के बल लेटाकर।
2. पेट के बल लेटाकर।
3. दाहिनी तरफ लेटाकर।
4. उकडू बैठाकर।

प्रायः कमर के बल लेटाकर ही एनिमा दिया जाता है तखत को एक तरफ से उँचा कर लेते है और ऊँचाई के तरफ पैर रखते है। 3–4 फिट ऊँचाई पर एनिमा पॉट रखकर आवश्यकतानुसार पानी भर देते हैं। रोगी के पैर घुटने से मुडवा देते हैं, कैथेटर में वेसलीन या ऑयल लगा देते हैं और नोजन में लगा देते हैं। थोड़ा सा पानी कैथेटर से निकाल कर कैथेटर को गुदा द्वार में 3 से 4 इंच प्रवेश कराते हैं। रोगी को लम्बे गहरे श्वास लेने को कहते है तथा रोगी के पेट पर हल्के हाथ से घड़ी की विपरीत दिशा में मालिश करते है, पात्र में जब थोड़ा सा पानी रह जाये तो पानी बंद कर देते हैं। प्रायः 3 मिनट में पूरा पानी अंदर चला जाता है। अंत में रोगी को बॉंई करवट दो–दो मिनट, दाँई करवट तथा एक मिनट सीधा लेटाया जाता है।

अब रोगी को 5 से 10 मिनट तक सामर्थ्यानुसार पानी को अंदर रोककर शौच के लिए भेजा जाता है, यदि शौच न हो तो टहलने का निर्देश देते हैं और शौच करते समय जोर न देने का निर्देश देते हैं।

**क्रिया–प्रतिक्रिया :**

गुनगुने पानी से आँतो में फैलाव होता है, जिससे आँतों में चिपका हुआ मल स्थान छोड़ देता है। एनिमा द्वारा वह पानी में घुलकर शौच द्वारा आसानी से बाहर आ जाता है। ठण्डे पानी के एनिमा से आँते सजग बनती है और यह बड़ी आँतों को मजबूत करता है।

**उपयोगिता :**

कब्ज, दमा, सिर दर्द, त्वचा रोग, वायु विकार, मधुमेह पीलिया, गठिया, बड़ी आँत में प्रदाह या जलन, उपवास, फलाहार।

**निषेध :**

एनिमिया, रक्त स्त्राव कोलाइटिस, कमजोरी, खूनी बवासीर।

**सावधानियाँ:**

1. पानी अत्यधिक गर्म नहीं होना चाहिए। नहीं तो म्यूकस मेम्ब्रेन कमजोर हो जाती है।
2. पानी अत्यधिक ठण्डा नहीं होना चाहिए। नहीं तो आँतों में ऐंठन होने लगती है।
3. पात्र अच्छी तरह साफ होना चाहिए।
4. किसी भी अवस्था में बिठाकर एनिमा नहीं देना चाहिए।
5. खूनी बावासीर या अल्सराटिस कोलाईटिस में यदि रक्त स्त्राव न हो रहा हो तो एनिमा दे सकते हैं।
6. पानी की मात्रा सावधानीपूर्वक धीरे–धीरे देनी चाहिए।
7. हर रोंगी का कैथेटर अलग–अलग होना चाहिए।
8. एनिमा के दो घण्टे तक रोगी को कुछ खिलाना पिलाना नहीं चाहिए।
9. कमोड की व्यवस्था रखनी चाहिए।
10. लूजमोशन में एनिमा नहीं देते हैं।

**2.मेहन स्नान :–**

**परिचय :**मेहन शब्द का अर्थ होता है जननेद्रिय अतः हम इसे जननेंद्रिया मेहन स्नान भी कह सकते है। अत्यधिक कमजोर व्यक्ति जो कटि स्नान करने में असमर्थ हो उनके नाड़ी मण्डल के स्वास्थ्य को ठीक करने के लिये यह चिकित्सा दी जाती है।

**साधन :** कटि स्नान का टब, छोटा मुलायम कपड़ा, अर्ध चन्द्राकर तिपाई, बाल्टी, मग, घड़ी, ठण्डा पानी।

**सिद्धांत :**यह चिकित्सा नाड़ी मण्डल के अंतिम छोर को ठण्डक पहुँचाकर बल प्रदान करती है।

**विधि :** अर्द्धचन्द्राकार तिपाई को टब में रखकर पानी भरते है। पानी का स्तर इतना रहे कि वो तिपाई के ठीक नीचे तक आ जाए, पानी तिपाई के ऊपर नहीं आना चाहिए। रोगी के कपड़े उतरवाकर टब में बिठाते हैं, पैर टब से बाहर रखते हैं। अब मुलायम कपड़े को पानी से भिगो कर जननेन्द्रिय के बाह्य भाग व अग्र भाग को हल्के हाथ से पोंछते हैं। पुरूषों में (प्रोप्यूज), महिलाओं में (लेबियपा माडेंरा) इन दो भाग को पोछते हैं। यदि मुश्किल है तो पैरीनियम के भाग को पोछते हैं।

**क्रिया–प्रतिक्रिया :**पुरूष हो या स्त्री नाड़ी मण्डल का अंतिम छोर जननेन्द्रियों में स्थित होने से ठण्डे पानी के द्वारा शरीर की उत्तेजना शांत होती है और नाड़ी मण्डल सशक्त होता है, जीवनी शक्ति में वृद्धि होती है और जननांगों का तापमान कम होता है जो लोग कटि स्नान लेने में असमर्थ हों तो उसे इस स्नान के द्वारा लाभ पहुँचाया जा सकता है।

**उपयोगिता :**इस चिकित्सा से नाड़ी मण्डल में उत्तेजना आती है इसलिए यह चिकित्सा नाड़ी मण्डल से संबंधी रोगों के लिए अति उपयोगी है। जैसे :–

| | | | |
|---|---|---|---|
| चक्कर आना | थकान होना | श्वास फूलना | हृदय रोग |
| माइग्रेन | स्नायु दौर्बल्यता | रोग प्रतिरोधक क्षमता की कमी। | |

**निषेध :**

| | | | |
|---|---|---|---|
| जीर्ण रोगों | उपवास | ठण्डी, बुखार | नई सूजन। |

**सावधानियाँ :**

1. शरीर का शेष सारा भाग सूखा रहना चाहिये।
2. चिकित्सा के एक घण्टे तक नहाना या खाना नहीं चाहिये।
3. चिकित्सा का समय धीरे–धीरे बढ़ाना चाहिये।
4. रोगी को उत्तेजक आहार नहीं देना चाहिये।
5. चिकित्सा के बाद टहलाकर या कम्बल ओढ़कर गर्मी लाना चाहिये।
6. जो व्यक्ति कटि स्नान न ले सकें उन्हे यह स्नान दिया जाता है।

**3. गरम–ठण्डा कटि स्नान**

**परिचय :**यह पेट की गरम ठण्डी सेंक का वृहद रूप है, कटि प्रदेश में स्थित अंगों को स्वस्थ एवं सबल बनाने के लिए जल चिकित्सा मे स्थानीय चिकित्सा के रूप में यह उपचार दिया जाता है।

**साधन :**2 हिपबाथ टब, 1 स्टूल छोटा, बाल्टी, मग, गरम पानी और ठण्डा पानी, छोटा तौलिया।

**पानी का तापमान :**

| | **गरम पानी** | **ठण्डा पानी** |
|---|---|---|
| गर्मियों में | 102 से 106 डिग्री फेरनहाइट | 45 से 55 डिग्री फेरनहाइट |
| सर्दियों में | 106 से 110 डिग्री फेरनहाइट | 55 से 65 डिग्री फेरनहाइट |

**सिद्धांत :**यह चिकित्सा लगातार रक्त को कटि प्रदेश एवं अन्य अंगों में ले जाकर पम्प की भाँति कार्य करती है।

**विधि :** कटि स्नान के दो टब लेते हैं। एक में गर्म पानी और एक में ठण्डा पानी की मात्रा इतनी रखते हैं कि टब में बैठने के बाद नाभि के ऊपर पानी 1 से 1.5 ईंच ऊपर आ जाए। रोगी के कपड़ें उतार कर मौसम के अनुसार पानी पिलाकर रोगी को पहले गर्म पानी के टब मे तीन मिनट तक बिठाते हैं। रोगी का पैर स्टूल पर रखते हैं ताकि गीले न हों।

रोगी के सिर में ठण्डें पानी का भीगा तौलिया रखते है उसके बाद एक मिनट तक ठण्डे पानी के टब में बिठा देते हैं। यह क्रिया तीन बार करते हैं। अंत में तीन मिनट ठण्डे पानी में बिठाकर उपचार करते हैं।

अगर रोगी को ठंड लग रही हो तो अंतिम तीन मिनट को आवश्यकतानुसार कम किया जाता है। इसके बाद रोगी को ठंडे पानी से नहलाकर शीघ्रता से शरीर पोंछकर उसे कपड़ें पहना देते है।

**अवधि :**

| | **गर्म पानी** | **ठण्डा पानी** |
|---|---|---|
| प्रथम बार | 3 मिनट | 1 मिनट |
| द्वितीय बार | 3 मिनट | 1 मिनट |
| तृतीय बार | 3 मिनट | 1 मिनट |
| चतुर्थ बार | 3 मिनट | 3 मिनट |
| **कुल** | **12 मिनट** | **6 मिनट** |

**कुल योग 18 मिनट**

**क्रिया–प्रतिक्रिया :**गर्म पानी के प्रभाव से कटि प्रदेश में रक्त कोशिकाओं में फैलाव होता है, जिससे पैरों व धड़ की तरफ से रक्त कटि प्रदेश में तेजी से आता है और ठण्डे पानी में बैठानें से रक्त कोशिकाओं में संकुचन होता है जिससे पैरों में रक्त पुनः धड़ की तरफ वापस चला जाता है।

उपरोक्त क्रियाओं में रक्त पम्प की भांति कार्य करता है और कटि प्रदेश के अंगों में आरामदायक स्थिति उत्पन्न होती है। अंगों को पोषण मिलता है और उत्सर्जी पदार्थ उत्सर्जी अंगों द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है। बार–बार यह चिकित्सा देने से कटि प्रदेश में स्थित अंग स्वस्थ, शक्तिवान, सबल एवं सजीव हो जाते हैं।

**उपयोगिता :**

कब्ज अजीर्ण भूख न लगना मोटापा मधुमेह साइटिका
मूत्र रोग उच्चरक्त चाप स्लीप डिक्स लो बैक पेन स्त्री रोंग पीलिया
पेट संबंधी रोग कोलाइटिस B.P.H., I.B.S.

**निषेध :**

तीव्र उच्च रक्त चाप तीव्र ह्रदय रोग अम्ल पित्त घूटनों का दर्द सूजन साइटिका के तीव्र दर्द में अंतिम तीन मिनट ठण्डा पानी नहीं देते हैं।

**सावधानियाँ :**

1. रोगी को पहले पानी अवश्य पिलायें।
2. सिर पर ठण्डे पानी का तौलिया रखें।
3. भोजन के 3 से 4 घण्टे बार करें।
3. तेज हवा का झोंका नहीं लगना चाहिए।
4. मासिक धर्म में नहीं लेना चाहिए।
5. फल व दूध खाने पर एक डेढ़ घण्टे बाद लेना चाहिए।
6. आधे घण्टे के बाद तक कुछ न खायें।

**4.पैर का गरम नहान**

**परिचय :**कमर से ऊपर के अंगों के रोगों के लिए यह उपचार दिया जाता है। अगर भाप नहान की सुविधा उपलब्ध न हो तो पैर की गरम नहान से उसकी पूर्ति की जा सकती है।

**साधन :** एक पतली सूती चादर, एक कम्बल, एक बड़ी बाल्टी, एक बाल्टी, एक तौलिया, एक मग, कुर्सी या स्टूल, ठण्डा पानी और गरम पानी, रेक्सिन का कवर।

**पानी का तापमान :**

गर्मियों में 104 से 115 डिग्री फेरनहाइट

सर्दियों में 115 से 120 डिग्री फेरनहाइट

**सिद्धांत :**यह चिकित्सा कमर के ऊपर के अंगों में रक्त के दबाव को कम करने तथा रक्त के प्रवाह को पैरों की ओर ले जाने के लिए दी जाती है।

**विधि :**यदि एनिमा की आवश्यकता है, तो पहले एनिमा दी जाती है फिर कम्बल को कुर्सी पर इस प्रकार बिछातें है कि मरीज को कुर्सी पर बैठाकर चारों तरफ से लपेटा जा सके कम्बल के ऊपर सूती चादर बिछाते हैं। मौसम के अनुसार रोगी को पानी पिलाकर कपड़े उतारवाकर कुर्सी पर बिठाते हैं। अब बड़ी बाल्टी में सह सकनें लायक गरम पानी भरकर रोगी के पैर बाल्टी में रखवाते हैं। पानी इतना रहे कि मरीज के टखने पानी में रहें। रोगी के शरीर के पहले चादर से फिर कम्बल से इस प्रकार लपेटते हैं कि बाल्टी भी कम्बल के अंदर आ जाये अंत में कम्बल को रेक्सिन से ढक देते हैं। सिर पर गीला ठण्डे पानी से भीगी तौलिया रखते हैं। गरम पानी का तापमान बनाये रखने के लिए थोड़ी थोड़ी देर में गर्म पानी डालते रहते हैं बाल्टी में, सिर पर आवश्यकतानुसार ठण्डा पानी डालते रहें और प्यास लगने पर ठण्डा पानी पिलाया जाता है। चिकित्सा की अवधि पूरी होने पर रोगी को शीघ्रता से ठण्डे पानी से नहला दें या रोगी को गीले तौलिये से पोछ दें।

**अवधि :** सामान्यतः – 25 मिनट

गर्मियों में – 15 से 20 मिनट

सर्दियों में – 25 से 30 मिनट

**क्रिया–प्रतिक्रिया :**गर्म पानी में पैर रखने से पैर की रक्त कौशिकाओं में फैलाव होता है जिससे रक्त का प्रवाह पैरों की तरफ बढ़ जाता है और कमर के ऊपर के हिस्से में रक्त का दबाव कम हो जाता है। विजातीय द्रव्य रक्त के साथ घुलकर अपना स्थान छोड़ देते हैं।

ठण्डें पानी से नहलाने पर पूरे शरीर का रक्त संचार तीव्र हो जाता है जिससे विजातीय द्रव्य उत्सर्जीय अंगों में पहुँचकर शरीर से बाहर हो जाता हैं।

**उपयोगिता :**

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| सर्दी | जुकाम | गठिया | घुटनों का दर्द | कंधे का दर्द |
| खाँसी | कान का दर्द | | मधुमेह | साइनोसाईटिस |
| दमा | ब्रोन्काईटिस | | उच्च रक्त चाप | सिर दर्द |
| स्त्री रोग | निम्न रक्त चाप | सर्वाइकल | स्पॉनडिलाईटिस | निम्न रक्त चाप |

**निषेध :**

हाईपर एसीडिटि, नाड़ी दौर्बल्य, इर्न्टनल हेमरेज, लूजमोशन, चोट या घाव, लू लगना, त्वचा रोग।

**सावधानियाँ :**

1. तेज हवा का झोंका नहीं लगना चाहिए।
2. अत्यधिक निम्न रक्त चाप में नहीं देना चाहिए।
3. प्यास लगने पर पानी अवश्य पिलाते रहें सिर को हमेशा ठण्डे पानी से गीला बनायें रखें।

**5. भाप नहान :परिचय :** त्वचा पर स्थित स्वेद ग्रंथियों को सक्रिय बनाकर विजातीय द्रव्यों को पसीने के रूप में बाहर निकालने के लिए यह उपचार दिया जाता है।

**भाप नहान के दो प्रकार :**

1. स्थानीय भाप
2. पूरे शरीर का भाप नहान

**साधन :** भाप नहान का बक्सा, केतली, 2–3 मीटर लम्बा ट्यूब, गैस का चुल्हा, छोटा तौलिया, सिर पर रखने के लिए बड़ा तौलिया, ग्लिास, मग, सादा पानी, कटि स्नान टब।

**सिद्धांत :**

त्वचा हमारे शरीर का तापमान एक सा बनाये रखने में सहायक होती है। भाप नहान में जब शरीर लगाातार भाप के सम्पर्क में आता है तो त्वचा की ऊपरी भाग का तापमान बढ़ने लगता है। उसे सामान्य बनाये रखने के लिए त्वचा में स्थित श्वेत ग्रंथियाँ सक्रिय होकर रोम छिद्रों से पसीना निकालने लगती हैं।

**विधि :**

सबसे पहले केतली में पानी रख देते हैं। 700 से 800 ग्राम पानी सामान्य व्यक्ति के लिए आवश्यक है। टब का एक सिरा केतली में व दूसरा सिरा स्टिम बाक्स में रख देते हैं। जब केबिनेट भाप से गरम हो जाये तब रोगी को मौसम के अनुसार पानी पिलाकर उपचार देते हैं। कपड़े निकालकर ठण्डे पानी या गुनगुना पानी पिलाते हैं। उसके बाद बाक्स में ऊँचाई के अनुसार बिठा देते हैं। बाक्स बंद करके रोगी के सिर पर भीगा तौलिया रख देते हैं। बड़ी तौलिया गर्दन के चारों ओर इस तरह लपेट देते है कि भाप बाहर न निकल सकें। रोगी को हल्के हाथों से बाक्स के अन्दर ही रगड़नें या मालिश करने की सलाह देते हैं जिससे की मृत त्वचा, मैल आसानी से निकल जाये, आवश्यकतानुसार सिर में थोड़ी–थोड़ी देर में पानी डालते हैं। अवधि पूरी होने पर रोगी को कैबिनेट से बाहर निकाल कर 2–5 मिनट तक ठण्डा कटि स्नान देते है और सिर से ठण्डे पानी से नहलाकर शरीर पोंछकर कपड़े पहनाते हैं।

**अवधि :**

गर्मियों में 10 से 15 मिनट
सर्दियों में 15 से 20 मिनट

**क्रिया–प्रतिक्रिया :**भाप की गर्मी से त्वचा की रक्त कोशिकाओं में फैलाव होगा, रक्त प्रवाह या संचार आंतिरक अंगो से सतह की ओर तेज हो जाता है। श्वेत ग्रंथियाँ सक्रिय हो जाती हैं और रोमकूप खुल जाते हैं। इस प्रकार शरीर से विजातीय पदार्थ पसीने के रूप में बाहर निकल जाते हैं।

ठण्डे पानी से नहाने पर रक्त केशिकाओं में फैलाव और संकुचन होता है, इस प्रकार फैलाव और संकुचन से सारे शरीर में तीव्रता आ जाती है। रक्त केशिकाओं में अवरोध हो जाता है। उपापचय क्रिया ठीक ढंग से होती है। विजातीय द्रव्य उर्त्सजीय अंगों में पहुँचकर शरीर से बाहर निकल जाते हैं।

**नोट–** भाप नहान के समय पल्स रेट बढ़कर 140 से 150 तक पहुँच जाती है।

**उपयोगिता :**

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| मोटापा | निम्न रक्त चाप | चर्मरोग | जोड़ों का दर्द | जकड़न |
| एलर्जी | अपच | खाँसी | भूख न लगना | कफ |
| जुकाम | साइनोसाईटिस | अस्थमा | टान्सिलाईटिस | गठिया |

**निषेध :**

| | | | |
|---|---|---|---|
| उच्च रक्त चाप | खुली घाव | हृदय रोग | जला कटा हो |
| टी.बी. | आंतरिक रक्त स्त्राव | मिर्गी | हिस्ट्रिया (दौरा) |
| अधिक बूढ़े व्यक्ति | अत्यधिक कमजोर | | |

**सावधानियाँ :**

1. उपवास में नहीं देना चाहिए।
2. खाली पेट या खाने के तीन घण्टे बाद।
3. भाप नहान के पहले एनिमा देना है।
4. प्यास लगने पर पानी अवश्य पिलाते रहे।
5. सिर को हमेशा ठंडे पानी से गीला करें।
6. रोगी को घबराहट महसूस हो तो भाप नहान बंद कर रोगी को ठण्डे पानी से नहलायें।
7. यदि त्वचा पर कटी घाव है तो घाव पर ठण्डे पानी की पट्टी बाँधकर भाप नहान दिया जा सकता है।
8. यदि रक्त चाप बढ़ा हुआ है तो छाती पर ठण्डे पानी की पट्टी को बाँधकर भाप नहान दिया जा सकता है।
9. भाप नहान के बाद ठण्डा कटि स्नान 3 से 5 मिनट तक अवश्य दें क्योंकि कटि प्रदेश का तापमान शरीर में हमेशा सामान्य रहता है।

**6. सारे बदन की गीली पट्टी**

**परिचय :**मरीज यदि भाप नहान ले पाने की स्थिति में न हों तो यह उपचार उसे देकर लाभ प्राप्त किया जा सकता है अतः इसे भाप नहान का प्रतिरूप भी कह सकते हैं।

**साधन :**

एक तखत 6.5 फिट लम्बा, 3 कम्बल 8 फिट लम्बे – 5 फिट चौड़े, सूती चादर – 6.5 एवं 4.5 फिट, एक सूती कपड़े की पट्टी 0.5 मीटर चौड़ी और 1.5 मीटर लम्बी, एक बड़ी तौलिया, एक छोटी तौलिया, एक जाली का टुकड़ा, दो ईट, एक गर्म पानी की थैली और ठण्डा पानी।

**सिद्धांत :**शरीर को बिना अधिक गर्मी पहुंचाए लगातार आधे घण्टे पसीने निकालने तक यह चिकित्सा दी जाती है।

**विधि :**हवादार स्थान पर तखत लगाते हैं, सर्दियों में यह उपचार धूप में भी दिया जा सकता है। तखत को पैरों की तरफ से ईंट लगाकर ऊचाँ कर दें। सिर की तरफ रेक्सिन का तकिया रखते हैं। तकिये को ढ़कते हुए दो कम्बल बिछाते हैं। तखत के तीनों तरफ कम्बल लटकने देते हैं अब एक सूती चादर ठण्डे पानी में भिगोकर अच्छी तरह निचोड़कर कम्बल के ऊपर बिछाते हैं इसी तरह छाती की पट्टी भी नियत स्थान पर बिछा देते हैं, रोगी को मौसम के अनुसार पानी पिला कर, कपड़े उतरवाकर तखत पर पीठ के बल लेटाते हैं। रोगी के दोनों हाथ ऊपर कर पीठ एंव सिने पर छाती पट्टी लपेट देते हैं। अब हाथों को नीचे करवाकर चादर का दाहिना किनारा लेते हुए चादर को बायीं ओर लपेट देते है, इसी प्रकार पैरों को कसकर लपेट देते हैं।

अब चादर का ऊपरी बायां किनारा लेकर दाहिनी तरफ कसते हैं, ध्यान रहे कि रोगी गर्दन से लेकर पैरो तक अच्छी तरह ढक जाए। फिर क्रमशः पहला व दूसरा कम्बल लेकर विपरीत दिशाओं में ढकतें हुए अच्छी तरह लपेट देते हैं। यथा सम्भव चादर एवं कम्बल ढ़ीला नहीं छोड़ते। इसके बाद तीसरा कम्बल रोगी को ओढ़ा देते हैं। रोगी के गर्दन

में बड़ा तौलिया इस प्रकार लपेटते हैं कि रोगी को हवा न लगे, सिर को पानी से गिला करें, छोटे तौलिये को पानी से भिगो करके सिर पर रख देते हैं। यदि रोगी को ठंड लग रही हो तब उसके पैरों के तरफ गरम पानी की थैली रखकर कम्बल से ढ़क देते हैं। समय–समय पर सिर को पानी से गिला करते रहते हैं। चिकित्सा की अवधि पूरी होने पर रोगी को नहला कर अथवा गीले कपड़े से शरीर पोछकर शीघ्रता से कपड़े पहना देते हैं।

**अवधि :**

| | | |
|---|---|---|
| 45 मिनट | – | सामान्यतः |
| 45 से 60 मिनट | – | आवश्यकतानुसार |
| 20 से 30 मिनट | – | क्रानिक फिवर। |

**क्रिया–प्रतिक्रिया** :इसमें तीन तरह के प्रभाव देखने को मिलते हैः–

i. शीतकारी (Cooling)

चादर लपेटने के तुरन्त बाद 5 से 10 मिनट तक शीतकारी प्रभाव होता है इसमें रोगी को ठंड महसूस होती है। रक्त कोशिकाओं में संकुचन होने के कारण रक्त संचार आंतरिक भागों में होने लगता है।

ii. समकारी (Netural)

लगभग 10 मिनट के बाद रोगी सामान्य सा महसूस करता है, अब उसे न ठंड लगती है न गर्मी इस समय रक्त का संचार सामान्य हो जाता है। यह स्थिति 10 से 20 मिनट तक बनी रहती है।

iii. उष्णकारी (Warm)

कम्बल से ढके रहने के कारण 15 से 20 मिनट के बाद रोगी को गर्मी महसूस होती है इस समय रक्त संचार शरीर के आंतरिक अंगों से त्वचा या सतह की ओर होने लगता है, रोम छिद्र खुल जाते हैं और पसीना निकलने लगता है। रक्त संचार के तीव्र होने से कोशिकाओं को पोषण मिलता है। विजातीय द्रव्य उत्सर्जी अंगों में पहुंच जाता है या पसीने के द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है।

**उपयोगिता :**

| | | |
|---|---|---|
| नाड़ी संबंधी रोग | अवसाद | उच्च रक्त चाप |
| अनिद्रा | | |
| अम्ल–पित्त | चर्म रोग | निम्न रक्त चाप |
| मोटापा | | |
| ज्वर कम करने में | स्नायु दौबर्ल्य | स्नायु संस्थान के लिए। |

**निषेध :**

| | | |
|---|---|---|
| बहुमूत्र | तीव्र ह्रदय रोग | लूज मोशन |
| कमजोरी | | |
| त्वचा पर घाव | उल्टी मिचली | ठंड लगने पर। |
| आँव–दस्त | | |

**सावधानियाँ :**

1. खाली पेट या भोजन के तीन घण्टे बाद।
2. ठण्ड लग रही हो तो गरम थैली पैरों की तरफ रखना चाहिये।
3. रोगी को नींद आ जाए तो उठने पर ही पट्टी निकालें।

4. यदि किसी एक अंग में सूजन है तो पहले उस स्थान पर छाती की पट्टी की तरह पट्टी बाँध दें।
5. चादर को प्रयोग करने से पहले अच्छी तरह किसी कीटाणुनाशक घोल से साफ करें या सर्फ से अच्छी तरह साफ करके प्रयोग करें।
6. मक्खियाँ लग रही हो तो जाली से मुँह को ढाक दें।
7. यदि रोगी को उलझन हो तो हाथों को चादर से बाहर निकाल दें।

**7. पेट की गरम–ठण्डी सेंक :–**

**परिचय :**भोजन का पाचन, अवशोषण और अधपचे भोजन का निष्कासन यदि सही ढंग से नहीं हो रहा हो तो उससे उत्पन्न विकारों को दूर करने के लिए इस उपचार की आवश्यकता होती है। किसी भी अंग के मरम्मत के लिए महत्वपूर्ण उपचार है।

**साधन :** हॉट वाटर बैग, घड़ी, छोटा तौलिया, गरम थैली, ठण्डा व गरम पानी।

**पानी का तापमान :**

| | | |
|---|---|---|
| गरम पानी | – | 108 से 110 डिग्री फेरनहाइट |
| ठण्डा पानी | – | 65 से 70 डिग्री फेरनहाइट |

**सिद्धांत :**

यह चिकित्सा रक्त को बार–बार क्रमशः सतह पर एवं आंतरिक अंगों तक ले जाकर पम्प की भाँति कार्य करती है।

**विधि :**

रोगी को पीठ के बल आराम की स्थिति में लेटाकर पेट के कपड़े हटा देते हैं। सबसे पहले गरम पानी की थैली से तीन मिनट तक सेंकते हैं। इसके बाद ठण्डे पानी की एक भीगी तौलिया एक मिनट तक रखते हैं। यही क्रम तीन बार करते हैं और अंत में चौथी बार तीन मिनट तक ही ठण्डे पानी से भिगा तौलिया रखकर उपचार की प्रक्रिया पूरा करते हैं। हर बार ठण्डे पानी से भीगा हुआ तौलिया रखने से पहले तौलिया निचोड़ लेते हैं।

**अवधि :**

| गरम पानी की थैली | ठण्डे पानी का तौलिया |
|---|---|
| 3 मिनट | 1 मिनट |
| 3 मिनट | 1 मिनट |
| 3 मिनट | 1 मिनट |
| 3 मिनट | 3 मिनट |

कुल योग – 18 मिनट। (गरम पानी की थैली की सेंक 12 मिनट और ठण्डे पानी का तौलियां की सेंक 6 मिनट)

**क्रिया–प्रतिक्रिया :**

जब हम गरम सेंक देते हैं, तब उस स्थान की रक्त केशिकाऐं फैल जाती हैं। ठण्डे पानी से रक्त केशिकाओं में संकुचन होता है। जब रक्त केशिकाऐं फैलती हैं तो वहां रक्त संचार बढ़ जाता है। जब संकुचन होता है तो विजातीय द्रव्य को अपने साथ लेकर उस स्थान से हट जाती है या अन्दर की ओर चला जाता है। इस प्रकार विजातीय द्रव्य रक्त में घुलकर उत्सर्जी अंगों तक पहुंच जाता है।

**उपयोगिता :**

पेट दर्द वायु विकार कब्ज पेशाब रोग

यकृत रोग संधिवात श्वेत प्रदर अस्थमा
मधुमेह मासिक दर्द पीलिया बी.पी.
एच.

**निषेध :**

आंतरिक रक्त स्त्राव में नहीं देते। अम्ल पित्त अल्सर
जला व कटा घाव पेट में घाव।

**सावधानियाँ :**

1. पानी का तापमान सही हो।
2. रोगी को तेज हवा का झोंका नहीं लगना चाहिये।
3. खाली पेट या खाने के तीन से चार घण्टे बाद ही उपचार दें।
4. उपचार के बाद में एनिमा देते है, पहलें नहीं।

**अभ्यास प्रश्न**

1. निम्न में से कौन सा उत्सर्जन तंत्र का अंग नहीं है
अ. गुर्दा ब. पसली
स. मूत्रनली द. मूत्राशय।
2. गुर्दे का कार्य है
अ. खून साफ करना ब. पानी की मात्रा को नियंत्रित करना
स. शरीर में अम्ल और क्षार की मात्रा का निर्धारण करना द. उपरोक्त सभी।
3. यदि किसी कारण से प्रोस्टेट ग्रंथि में प्रदाह हो जाए तो उसे क्या कहते हैं?
अ. नेफ्रोटिक सिंड्रोम ब. ड्राप्सी
स. प्रोस्टेटाइटिस द. यूरीमिया।
4. पेशाब के रूकने के क्या कारण है?
अ. पथरी ब. मेरूदण्ड के रोग
स. प्रोस्टेट ग्रंथि की वृद्धि द. उपरोक्त सभी।
5. निम्न में से कौन से त्वचीय तंत्र के रोग हैं
अ. एक्जिमा ब. पसीना अधिक निकलना
स. चेचक द. उपरोक्त सभी।

## 6.6 सारांश

हमारे शरीर में प्रति क्षण ऐच्छिक एवं अनैच्छिक क्रियाएं होती रहती हैं, इस क्रिया से कुछ अवशिष्ट पदार्थ उत्पन्न होते रहते हैं। जल, कुछ निरर्थक लवण, यूरिया एवं कार्बन डाइ ऑक्साइड आदि पदार्थ को पसीने या स्वेद के रूप में बाहर निकलते रहते हैं। जिसका कार्य उत्सर्जन तंत्र के द्वारा किया जाता है।

प्रकृति ने हमारे शरीर की पेशियों एवं उत्तकों की रक्षा के लिये एक आवरण की व्यवस्था की है जिसे त्वचा कहते हैं। त्वचा शरीर की रक्षा कई प्रकार से करती है। त्वचा स्पर्शेन्द्री भी है। त्वचा के द्वारा हमें स्पर्श का ज्ञान होता है। त्वचा के सभी कार्यों में महत्वपूर्ण कार्य विजातीय पदार्थों को स्वेद के रूप में शरीर से बाहर निकलना है।

उत्सर्जन एवं त्वचा तंत्र संबंधित कई छोटे–छोटे सामान्य रोग होते हैं जिसे जल चिकित्सा के द्वारा सरलतापूर्वक दूर किया जा सकता है। इस प्रकार आप जान गये होंगे कि जल का कितना महत्व है एवं उसकी सहायता से किन–किन रोगों में व कैसे जल चिकित्सा कर सकते हैं।

## 6.7 पारिभाषिक शब्दावली

| | | |
|---|---|---|
| प्रदाह | – | सूजन |
| स्खलन | – | ढहना, गिरना |
| विषाक्त | – | दूषित |
| विजातीय | – | दूसरे गुणों वाला |
| चयापचय | – | जीवनयापन के लिये होने वाली रसायनिक प्रतिक्रिया |

## 6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ब 2. द 3. स 4. द 5. द।

## 6.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

चौहान जहान सिंह, (2011) क्लीनिकल डायग्नोसिस एण्ड ट्रीटमेण्ट्स, सुमित प्रकाशन, आगरा, उत्तरप्रदेश

आचार्य पं. श्रीराम शर्मा, पुनरावृत्ति (2011) पंच तत्वों द्वारा संपूर्ण रोगों का निवारण, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, उत्तरप्रदेश

दूरस्थ शिक्षा केन्द्र, (2008), वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियां, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड

मुखर्जी कुलरंजन, (2007), दैनन्दिन रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा, सादार्न ऑफसेट प्रिन्टर्स, कलकत्ता, पं. बंगाल

जिन्दल राकेश, (2005) प्राकृतिक आर्युविज्ञान, आरोग्य सेवा प्रकाश, मोदीनगर, उत्तरप्रदेश

कक्षा बारहवी, गृह विज्ञान, छत्तीसगढ़ संस्करण, युगबोध प्रकाशन, छत्तीसगढ़

## 6.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

नीरोग जीवन के महत्वपूर्ण सूत्र – पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

चिकित्सा उपचार के विविध आयाम – पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

जीवेम शरदः शतम् – पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

## 6.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. उत्सर्जन तत्रं एवं त्वचीय तंत्र क्या हैं?
2. त्वचीय तंत्र के रोग कौन–कौन से होते है? एवं किन्हीं दो रोगो को विस्तार से समझायें।
3. उत्सर्जन तंत्र से संबंधित रोग की जल चिकित्सा बताईये।
4. जल चिकित्सा का उत्सर्जन तत्रं एवं त्वचीय तंत्र में महत्व समझाइये।

# इकाई 7 तंत्रिका तंत्र एवं मानसिक रोगों की जल चिकित्सा


7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 तंत्रिका तंत्र का सामान्य परिचय
 7.3.1 तंत्रिका तंत्र के रोग – साइटिका
 7.3.2 लकवा
 7.3.3 मिरगी
7.4 मानसिक रोग का सामान्य परिचय
 7.4.1 विभिन्न मानसिक रोग – तनाव
 7.4.2 पागलपन
 7.4.3 अनिद्रा
 7.4.4 मूर्छा
 7.4.5 झिनझिनियां
7.5 तंत्रिका तंत्र व मानसिक रोगों की जल चिकित्सा पद्धितियाँ
7.6 सारांश
7.7 पारिभाषिक शब्दावली
7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
7.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.11 निबंधात्मक प्रश्न


## 7.1 प्रस्तावना :

इस इकाई के अर्न्तगत आप तंत्रिका तंत्र एवं मानसिक रोगों की जल चिकित्सा का अध्ययन करेंगें ताकि आप बता सकें कि इससे संबंधित रोगों के कारण व उपचार क्या हो सकते है?

जल चिकित्सा के महत्व को जानते हुए भारतीय प्राकृतिक चिकित्सकों ने बड़े ही स्पष्ट रूप से और विस्तार से इसके विषय में चर्चा की है कि जल का सामान्य उपयोग के अलावा चिकित्सा के क्षेत्र में कहाँ–कहाँ महत्व है व कौन–कौन से रोगों में लाभदायक है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप तंत्रिका तंत्र एवं मानसिक रोगों के कारण व उसकी जल चिकित्सा के महत्व को समझा सकेंगें तथा भारतीय प्राकृतिक चिकित्सकों के उपचारों का सम्यक् विश्लेषण कर सकेंगें।

## 7.2 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई द्वारा आप जान पायेंगें:–

- तंत्रिका तंत्र का सामान्य परिचय प्राप्त करेगें।
- मानसिक रोग से संबंधित जानकारी प्राप्त करेगें।
- तंत्रिका तंत्र से संबंधित रोगो की जानकारी प्राप्त करेगें।

- तंत्रिका तंत्र एवं मानसिक रोगो के लक्षण एवं कारण जान सकेगें और
- जल चिकित्सा द्वारा इन रोगों का निदान कर सकेगें।

## 7.3 तंत्रिका तंत्र का सामान्य परिचय

आप जानते है कि शरीर की प्रत्येक इन्द्रिय प्रणाली अपना कार्य करती रहती है, परन्तु इन सब पर अनुशासन चलाने के लिये एक इन्द्रिय प्रणाली होती है, जिसे नाड़ी तंत्र या तंत्रिका तंत्र कहते हैं। तंत्रिका तंत्र शरीर का एक जटिलतम तंत्र है, जो शरीर के अन्य तंत्रों को नियंत्रित करता है इसी कारण यह शरीर के महत्वपूर्ण तंत्रों में से एक है अर्थात् वह तंत्र जो सोचने समझने, किसी वस्तु को याद रखने के साथ शरीर के विभिन्न अंगों के कार्यो में सांमजस्य एवं संतुलन स्थापित करके शरीर पर नियंत्रण रखता है तंत्रिका तंत्र कहलाता है।

अन्य तंत्रों के समान तंत्रिका तंत्र भी विशेष प्रकार के ऊतक से बना होता है स्नायु तंत्र बनाने वाले ऊतक स्नायविक ऊतक कहलाते हैं।

स्नायविक ऊतक, स्नायविक कोशिकाओं तथा स्नायविक तंतुओं का बना होता है। ये कोशिकायें और तंतु आपस में एक विशेष प्रकार के संयोजी ऊतक से बंधे रहते है जिसे न्यूरोग्लिआ कहा जाता है।

### 7.3.1 तंत्रिका तंत्र के रोग :—

**साइटिका :—**

अब आप साइटिका रोग के विषय में अध्ययन करोगे। गृधस्य नाड़ी जिसका ऊपरी सिरा लगभग एक इंच मोटा होता है, प्रत्येक नितम्ब के नीचे से आरम्भ होकर टांग के पिछले भाग से गुजरती हुई पांव की एड़ी पर खत्म होती है। इस नाड़ी का नाम अंग्रेजी में साइटिका नर्व है। इसी नाड़ी में जब सूजन और प्रदाह के कारण पीड़ा होती है तो उसे गृधसी, रीघन या लंगड़ी का दर्द, वात—शूल अथवा अंग्रेजी में इसे साइटिका कहते हैं। इस रोग का आरम्भ अचानक और तीव्र वेदना के साथ होता है। स्त्रियों की अपेक्षा मर्दों में यह रोग अधिक पाया जाता है। इसके दौरे भी होते हैं। 30 और 50 वर्ष के बीच की आयु में इस रोग की उत्पत्ति होती है। साइटिका की पीड़ा प्रायः एक समय में एक ही पांव में होती है, साथ में प्रायः ज्वर भी रहता है।

**लक्षण :**

1. कमर के निचले हिस्सों से शुरू होकर पैरों के नीचे तक जाता है।
2. साइटिका नस रूट से शुरू होकर स्पाइनल कोड तक जाती है।
3. रोगी के कूल्हें में दर्द होता है।
4. यह दर्द नसों के द्वारा पूरे पैरों में उत्पन्न हो जाता है।

**कारण :**

1. अधिकांशतः अनियमित जीवनशैली।
2. उठने—बैठने के गलत तरीकों के कारण।
3. डिस्क प्रोलैप्स, सैक्रोलाइटिस, स्पाइनल कोड और स्पाइनल ट्यूमर में इंफेक्शन साइटिका की वजह मानी जाती है।

**सामान्य चिकित्सा :**

साइटिका रोग की चिकित्सा करते समय इन नियमों को आप हमेशा याद रखें।

1. प्राथमिक चिकित्सा के नियमों का अनुसरण करते हुए रोगी को भाप–स्नान देना लाभकारी है।
2. यदि एक बार में दर्द बंद न हो तो दूसरे–तीसरे सप्ताह तक इस क्रिया को दोहराना चाहिये।
3. दिन मे दो बार साधारण स्नान तथा दर्द रहने तक गुनगुने पानी से, परन्तु दर्द कम होने या बिल्कुल ही चले जाने पर ठण्डे पानी से स्नान करना चाहिये।
4. रात को सोने से पहले दस मिनट मेहन स्नान करना चहिये।
5. सुबह को थोड़ी देर धूप में बैठने के बाद कटि स्नान लेना चाहिये।

इस प्रकार साइटिका के विभिन्न स्तरों को ध्यान में रखते हुए आप इस रोग का सफलतापूर्वक इलाज कर सकते है।

**7.3.2 लकवा** :–लकवा या पक्षाघात को अंग्रेजी में 'Paralysis' कहते हैं। जब शरीर के किसी अंग या भाग का परिचालन, अंग या भाग के स्नायुओं द्वारा उनके अस्वस्थ होने के कारण, नहीं हो पाता है तो उस अंग अथवा भाग में लकवा मार जाना कहते है। कभी–कभी सम्पूर्ण शरीर में लकवा मार जाता है। जिस अंग या भाग में लकवा मारता है, वह अंग अथवा भाग चैतन्यशुन्य हो जाता है और धीरे–धीरे सूखने लग लगता है। एक प्रकार का लकवा और भी होता है जिसमें आक्रान्त अंग सदैव काँपता रहता है।

**लक्षण :**

आप निम्नलिखित लक्षणों के द्वारा लकवा रोग को पहचान सकते है।
1. जिस अंग या भाग में लकवा मारता है, वह अंग शिथिल या निष्क्रिय हो जाता है।
2. धीरे–धीरे अंग सूखकर कोई काम नहीं कर पाता है।
3. अंग सदैव काँपता रहता है।

**कारण :**

1. आकस्मिक दुर्घटना या मानसिक आघात लगना।
2. जीवनशक्ति का ह्रास।
3. रीढ़ में चोट लगना।
4. नस कट जाना।

**सामान्य चिकित्सा :**

लकवा रोग का निदान करते समय आपको निम्न बिन्दुओं का ध्यान रखना चाहियें।
1. स्नायु संबंधी अन्य रोगों की भांति प्राथमिक चिकित्सा द्वारा सर्व प्रथम पेट को साफ कर लेना चाहिये।
2. प्रतिदिन 2 घंटे तक धूप नहान लेना चाहिए।
3. पैरों को गरम जल में रखकर और सिर पर ठंडे पानी से भीगा कपड़ा रखकर 15 मिनट तक कटि स्नान करना चाहिये।
4. रोज रोगी के मेरूदण्ड पर 10–20 मिनट तक गरम और ठण्डी सेंक देना भी लाभकारी होता है।
5. जो अंग सुन्न हो गया हो उस पर कपड़े की गीली पट्टी बांधकर ऊपर से गरम कपड़ा लपेट देना चाहिये ताकि वह स्थान गरम रहे।
6. पट्टी को खोलने के बाद उस स्थान को भीगी तौलिया से पोछकर सूखी मालिश करके लाल कर देना चाहिये।
7. रोगी को नींबू का रस मिलाकर काफी मात्रा में पानी प्रतिदिन पिलाना चाहिये।

8. रक्तचाप यदि बढ़ा हो तो रोगी को नमक छोड़ देना चाहिये।
9. लकवा के रोगी को पीली बोतल के सूर्यतप्त जल की 6 खुराकें 50–50 ग्राम मात्रा की प्रतिदिन पिलानी चहिये।

### 7.3.3 मृगी या मिरगी :–

आज के इस दौर में साधारणतया मिरगी की बीमारी आम हो गई है। इसके विषय में आप विस्तार से जान पायेगें। मृगी या अपस्मार को अंग्रेजी में 'इप्लिप्सी' कहते हैं।

**लक्षण :**

1. रोगी बेहोश हो जाता है,
2. उसके अंग–प्रत्यंग कापने लगते हैं,
3. प्रायः मुंह से लार निकलती है।
4. कभी–कभी मृगी का दौरा अचानक ही आता है।
5. कभी–कभी रोगी की आंखें खुली रहने पर भी उसे होश नहीं रहता, वह अपनी जीभ काटने लगता है।
6. बेहोशी में पेशाब–पखाना कर देता है।
7. रोगी थक जाने के कारण प्रायः सो जाता है।

**कारण :**

1. शरीर में स्थित विजातीय द्रव्य या विषैले पदार्थ जब मस्तिष्क में पहुंचकर उसके कोषों पर दबाव डालते हैं तब मृगी रोग का दौरा या आक्रमण होता है।
2. स्नायु संबंधी रोग से पीड़ित तथा नशेबाजों की संतान मृगी–रोग का शिकार हो सकती है।
3. जो लोग तत्वहीन, क्षारहीन, तले–भुने तथा रूखा–सूखा खाने के आदि है विशेषतः उन्हें ही यह रोग पकड़ता है।

**सामान्य चिकित्सा :**

1. सर्वप्रथम उपवास द्वारा शरीर में स्थित अम्ल–विष से मुक्ति करना चाहिए।
2. उपवास–काल में शरीर और मन को पूरा–पूरा आराम करना चाहिए।
3. शयन पूर्व एनिमा द्वारा पेट की सफाई करनी चाहिए।
4. पानी और नींबू मिला जल प्रचुर मात्रा में कमजोरी होने लेना चाहिए।
5. फल या सब्जी का जूस लें।
6. फल एवं कच्ची सब्जियां, उबली सब्जियां 10–15 दिनों तक खानी चाहिये।
7. केवल भोजन सुधार से ही कितने ही रोगी उत्साह, मनःशक्ति पुनः प्राप्त होते हैं।
8. प्रतिदिन कोई हल्का व्यायाम भी नाड़ियों को सशक्त बनाने में सहायक है।
9. सुबह–शाम शक्ति भर टहलकर वायु सेवन करना एक अच्छा व्यायाम है।
10. स्थायी समाधान हेतु उपवास, रसाहार और फलाहार करने के बाद उपर्युक्त आहार के साथ–साथ कटि–स्नान, शुष्क घर्षण स्नान तथा शाम को मेंहन स्नान, स्पाइनल बाथ लेना चाहिये।
11. प्रतिदिन आधा घंटा तक धूप में पूरे शरीर की तेल मालिश होनी चाहिये, उसके बाद, खुरदुरे तौलिये से शरीर को रगड़–रगड़ कर पोछना चाहिये।
12. मेरूदण्ड पर दो मिनट भीगी तौलिया तथा एक मिनट ठण्डी तौलिया बारी–बारी से रखकर 10–20 मिनट तक सेंकना बहुत लाभ करता है।

## 7.4 मानसिक रोग का सामान्य परिचय

आधुनिक जीवन शैली ने मनुष्य समुदाय को अनेकों अभिशाप प्रदान किए है। आज के उन्नत एवं अभ्युदय के युग में हजारों मनुष्य अनेक प्रकार के मानसिक रोगों से पीड़ित है। वे अपनी व्यथाएँ, मनोवेदनाएँ मनाते नहीं थकते। एकान्त में कोने में पड़े पड़े निःश्वास निकालते और हाय–हाय करते हुए दिलों को धक्के दे रहे है। हृदय में ऐसे ऐसे रोग उत्पन हो गए है कि उनका मुखमंडल लाल एवं चेहरा विकृत सा हो उठा है। आधुनिक विज्ञान के अध्ययन–अनुसंधानकर्ताओं ने निष्कर्ष प्रस्तुत किया है, उसके अनुसार मानसिक विचारों की अधिकता, निस्तेजता अथवा विकृति ही मानसिक रोगों की उत्पत्ति के प्रमुख कारण है। आप इन मानसिक रोगों का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्राप्त करेगें।

### 7.4.1 विभिन्न प्रकार के मानसिक रोग :–

**तनाव :–**आँकड़े बताते है कि अमेरिका में 10 प्रतिशत व्यक्ति मानसिक तनाव से ग्रस्त हैं। भारत में वह प्रतिशत तो कम है किन्तु गांवों की अपेक्षा नगर में तनाव खूब पनप रहे हैं इसका कारण 80 प्रतिशत मनोवैज्ञानिक है। आजकल शहरी जीवन तथा स्पर्द्धा के कारण मन पर परिवेश जनित तनावों का बोझ बढ़ता ही जा रहा है। रोजी–रोटी से लेकर असुरक्षा की भावना, संयुक्त परिवारों की टूटन, सामाजिक संबंध जैसे शादी आदि की चिंता, महंगाई, संतानोत्पत्ति, गंभीर बीमारी आदि स्थितियां इन रोगों को जन्म देती है।

''तनाव'' शब्द का प्रयोग चिकित्सा शास्त्र में सन् 1940 के बाद ही प्रारंभ हुआ। आधुनिक युग में प्रत्येक मनुष्य तनाव ग्रस्त है। इस युग को यदि तनाव का युग कहा जाये तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी।

**कारण :**

1. जीवन में चिंता ग्रस्त होकर जीना।
2. अकारण क्रोध करना।
3. किसी पर विश्वास न होना।
4. निराशा।
5. भय का वातावरण।
6. समस्याओं को सुलझाने के स्थान पर उसे कल पर छोड़ना।
7. कार्य से डरना।
8. चंचलता।
9. घबराहट।
10. पाचन क्रिया तथा स्नायु तंत्र प्रभावित होने से।

**लक्षण :**

1. मानसिक रोग–स्नायु दौर्बल्यता, अवसाद, पागलपन, अनिद्रा आदि।
2. शारीरिक रोग–सिर दर्द, उच्च रक्तचाप, अल्सर, हृदय रोग, चर्म रोग, दमा, कब्ज, कैंसर, मधुमेह आदि ये रोग बिना बुलाए आ जाते हैं।

**सामान्य चिकित्सा :**

1. आहार– फल, सलाद का अधिक से अधिक उपयोग करें।
2. फल–सब्जियों का जूस दिन में 2–3 बार लें,
3. संतुलित और सात्विक आहार अपनायें।
4. गाय का धारोष्ण दूध व फलों का नाश्ता करें।

5. पानी ज्यादा से ज्यादा मात्रा में पीना चाहिए।
6. कटि स्नान भी करना चाहिए।
7. दिन में एक बार एनिमा लेना चाहिए।
8. संतुलित आहार लेना चाहिए।

**7.4.2 पागलपन :**मन की स्वाभाविक अवस्था में गड़बड़ी हो जाने को ही पागलपन या उन्माद कहते हैं। पागलपन मन की वह दशा है जिसमें मन संसार के साधारण व्यवहार करने में असमर्थ रहता है। मनोविक्षिप्ति और पागलपन दोनों शब्द असाधारण मनोदशा के बोधक है, परंतु जहाँ पागलपन एक साधारण प्रयोग का शब्द है, जिसका कानूनी उपयोग भी किया जाता है, वहाँ मनोविक्षिप्ति चिकित्साशास्त्र का शब्द है जिसका चिकित्सा में विशेष अर्थ है। पागल व्यक्ति को प्रायः अपने शरीर एवं कामों की सुध–बुध नहीं रहती। उसकी हिफाजत दूसरे लोगों को करनी पड़ती है। अतएव यदि वह कोई अपराध का काम कर डाले, तो उसे दंड का भागी नहीं माना जाता। इस रोग से पीड़ित व्यक्ति में साधारण असामान्यता से लेकर बिल्कुल पागलपन जैसे व्यवहार देखे जाते हैं। कुछ व्यक्ति थोड़ी ही चिकित्सा से अच्छे हो जाते हैं। ये समाज में रहते हैं और समाज का कोई भी अहित नहीं करते। उनमें अपराध की प्रवृत्ति नहीं रहती। इसके विपरीत, कुछ रोगियों में प्रबल अपराध की प्रवृत्ति रहती है। वे अपने भीतरी मन में बदले की भावना रखते हैं, जिसे विक्षिप्त व्यवहारों में प्रकट करते हैं। कुछ ऐसे विक्षिप्त भी होते हैं जिनसे अच्छे और बुरे व्यवहार में अंतर समझने की क्षमता ही नहीं रहती।

**कारण :**

1. स्नायु की दुर्बलता।
2. भावात्मक घटनाओं का घटित होना।
3. कोष्ठबद्धता के कारण आंतों में मल के सड़ने की वजह से दिमाग में गर्मी का चढ़ जाना।
4. आनुवांशिकी।
5. मस्तिष्क या मेरुदण्ड की यान्त्रिक बीमारियां।
6. शरीर में गहरी चोट लगना।
7. बहुत ज्यादा परिश्रम या उद्वेग, ज्यादा खाना–पीना या इन्द्रिय–परिचालन, ज्यादा शराब या गांजा पीना, स्वास्थ्य भंग, निराशा और मिर्गी आदि इस बीमारी के मुख्य कारण हैं।

**लक्षण :**

पागलपन से पीड़ित रोगी में कई प्रकार के लक्षण दिखाई देते हैं जैसे–

1. भूख न लगना।
2. जीभ पर लेप जमा होना।
3. मुंह से बदबु आना।
4. शरीर में अकड़न होना।
5. कब्ज बनना।
6. सिर भारी महसूस होना।
7. किसी भी काम को करने का मन ना करना आदि।

**सामान्य चिकित्सा :**

1. उपवास या रसाहार, फलाहार, एनिमा तथा उपयुक्त आहार का आश्रय लेकर सर्व प्रथम आंतों को साफ कर लेना चाहिये।

2. उन्माद के रोगी को ठण्डे पानी का एनिमा देनी चाहिये।
3. सुबह–शाम कटि–स्नान, मेहन स्नान, रात भर के लिये कमर की गीली पट्टी देना चाहिए।
4. सप्ताह में एक–दो बार शरीर पर एक घंटा के लिये गीली चादर की लपेट लगाना बहुत लाभकर है।
5. रोगी को प्रचुर मात्रा में नींबू पानी का रस दें।
6. रोगी को एक घंटे तक गरम पानी के टब में लिटाया जाना चाहिए।
7. सवेरे सोकर उठने के तुरन्त बाद और रात में सोने से तुरन्त पहले ठण्डे जल से भिगोई हुई तौलिया से रोगी का पूरा शरीर पोछ देना चाहिये।
8. दिन में दो–तीन बार सिर के उपर भीगे कपड़े की पट्टी रखना भी लाभकर है।

**7.4.3 अनिद्रा :–**अनिद्रा अर्थात् नींद का न आना एक कठिन और कष्टदायक रोग है। अनिद्रा या उन्निद्र रोग (इनसॉम्निया) में रोगी को पर्याप्त और अटूट नींद नहीं आती, जिससे रोगी को आवश्यकतानुसार विश्राम नहीं मिल पाता और स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। बहुधा थोड़ी सी अनिद्रा से रोगी के मन में चिंता उत्पन्न हो जाती है, जिससे रोग और भी बढ़ जाता है। घोर संताप या खिन्नता का उन्माद, मनोवैकल्य, संभ्रमात्मक विक्षिप्तता तथा उन्मत्तता भी अनिद्रा उत्पन्न करती हैं। वृद्धावस्था या अधेड़ अवस्था में मानसिक अवसाद के अवसरों पर, कुछ लोगों की, नींद बहुत पहले ही खुल जाती है ओर फिर नहीं आती, जिससे व्यक्ति चिंतित और अधीर हो जाता है। ऐसी अवस्थाओं में विद्युत् झटकों (इलेक्ट्रोशॉक) की चिकित्सा बहुत उपयोगी होती है। इससे किसी प्रकार की हानि होने की कोई आशंका नहीं रहती।

अनिद्रा चार प्रकार की होती है :
1. बहुत देर तक नींद न आना,
2. सोते समय बार बार निद्राभंग होना और फिर कुछ देर तक न सो पाना,
3. थोड़ा सोने के पश्चात् शीघ्र ही नींद उचट जाना और फिर न आना, तथा
4. बिल्कुल ही नींद न आना।

**कारण :** अनिद्रा रोग के कारण दो वर्गो के हो सकते है : शारीरिक और मानसिक। आसपास के वातावरण का कोलाहल, बहुमूत्रता, खुजलाहट, खाँसी तथा कुछ अन्य शारीरिक व्याधियाँ, शारीरिक पीड़ा ओर प्रतिकुल ऋतु (अत्यंत गरमी, अत्यंत शीत, इत्यादि) हैं। दूसरे प्रकार के कारणों में आवेग, जैसे क्रोध, मनस्ताप, अवसाद, उत्सुकता, निराशा, परीक्षा, नूतन प्रेम, अतिहर्ष और अतिखेद आदि हैं।
1. अति व्यस्तता।
2. तनाव।
3. अकर्मण्यता तथा असंतुलित भोजन।
4. कब्ज आदि रोगों के कारण रक्त का विषाक्त होना।
5. मस्तिष्क में रक्ताधिक्य,
6. सोने जाने से पहले अधिक भोजन अथवा अधिक दिमागी काम करना।
7. शारीरिक श्रम कम या बिल्कुल न करना।
8. शारीरिक व मानसिक उत्तेजना आदि।

**लक्षण :**
1. टूटी टूटी नींद आना।

2. बैचेनी रहना।
3. हाथ पैरों में दर्द बना रहना।
4. आंखों में जलन व आंखों में लालीमा छाई रहना।
5. करवटें बदलते रहना पड़ता है।
6. छाती में दबाव महसूस होता है।

**सामान्य चिकित्सा :–**

1. सर्व प्रथम जिन कारणों से अनिद्रा रोग उत्पन्न होता है उन्हें हटाने की भरपूर कोशिश करें।
2. सोने से पूर्व सत्साहित्य के अध्ययन से शीघ्र ही आंखें झपकने लगती है।
3. भोजन में नमक की मात्रा कम कर देने से भी नींद आना आसान हो जाता है।
4. शयन पूर्व मस्तिष्क को सभी प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त करें।
5. प्रतिदिन ठीक समय पर सोने का नियम बनाना चाहिए।
6. रक्त को शुद्ध बनाने वाला सात्विक और प्राकृतिक भोजन करना चाहिये।
7. कमर और गर्दन पर कपड़े की गीली पट्टी करना।
8. शयन पूर्व स्नान और गर्म जल सेवन दोनों नींद लाने में सहायक है।
9. शयन पूर्व 15 –30 मिनट तक मामूली गरम पानी से भरे टब में लेटना या रीढ़ स्नान करना अनिद्रा रोग की एक दवा है।
10. एनिमा, कटि–स्नान तथा पेडू की पट्टी आदि द्वारा पेट को स्वच्छ करना चाहिए।
11. नींबू का रस मिला पानी पीना चाहिए।
12. सुबह के वक्त भीगी घास पर टहलना चाहिए।

**7.4.4 मूर्छा :–**जीवन में अनेकानेक ऐसे प्रसंग आते है जिसमें शारीरिक शिथिलता के कारण व्यक्ति निस्तेज होकर अचेतन अवस्था में चला जाता है। मस्तिष्क में अचानक रक्त का अभाव हो जाता है तब मनुष्य मूर्छित हो जाता है।

**लक्षण :**

1. मुख पीला पड़ जाता है।
2. माथे से ठण्डा पसीना छूटने लगता है।
3. आंखों के सामने अंधेरा छा जाता है।
4. मनुष्य अचेत होकर गिर जाता है।

**कारण :**

1. मस्तिष्क में रक्त का अभाव।
2. लम्बा उपवास,
3. अचानक अधिक रक्त का शरीर से निकल जाना।
4. तीव्र वेदना या चोट।
5. दूषित गैस का श्वास के साथ भीतर चला जाना तथा भावावेग प्रधान है।

**सामान्य चिकित्सा :**

1. मूर्छा होते ही रोगी को आराम से उसके सिर को थोड़ा नीचा रखते हुए किसी हवादार स्थान में लिटा दें।
2. शरीर के कपड़ों को ढ़ीला कर दें।
3. छाती पर कपड़े की भीगी पट्टी देकर चेहरे पर ठण्डे पानी का छींटा मारें।

4. रीढ़ को भीगी तौलिया से पोंछना या उस पर गरम ठण्डी सेंक देना भी उपकारी होता है।

5. गुनगुने पानी का एनिमा देना और मेहन–स्नान करना चाहिए।

**7.4.5 झिनझिनियां :–**यह भी एक स्नायु संबंधी रोग है जिसका उद्गम स्थान शरीर का कोष्ठ प्रदेश है। यह रोग अधिक आयु के लोगों में ज्यादा होता है। शरीर के स्थान विशेष या पूरे शरीर में ही झनझनी होने लगती है। इस रोग से वही व्यक्ति पीड़ित होता है जिसको पुराने कब्ज की शिकायत होती है और जिसकी पाचन शक्ति बहुत दिनों से क्षीण होती चली आ रही है। फल यह होता है कि वह जो कुछ खाता है उसका रस न बनकर पेट में सड़ने लगता है, जिससे एक प्रकार की विषैली गैस उत्पन्न होती है, जो उर्ध्वगामी होकर उपर की ओर चढ़ने लगती है। मस्तिष्क तो स्नायु मण्डल का केन्द्र ठहरा, वह गैस वहां पहुंचकर उपद्रव आरम्भ करती है और उसके बाद वह स्नायुओं द्वारा शरीर के रग–रग में व्याप्त होकर गड़बड़ी पैदा कर देती है, और पैर के अंगूठे से लेकर सिर तक के सारे स्नायु रोगग्रस्त होकर उत्तेजित हो उठते हैं। यही झिनझिनियां रोग की उत्पत्ति का रहस्य हैं।

**कारण :**

1. अनियमित एवं असंतुलित भोजन करना।
2. गरिष्ठ भोजन करना।
3. अधिक नमक का सेवन करना।
4. कम पानी पीना।
5. शारीरिक श्रम का अभाव।
6. रक्त की कमी।

**लक्षण :**

1. कमजोरी महसूस होना।
2. सिर दर्द करना।
3. किसी काम में मन न लगना।
4. जहाँ झिनझिनी हो रही हो वहाँ चीटी के काटने जैसा अनुभव होना।

**सामान्य चिकित्सा :**

1. इस रोग के रोगी को झिनझिनियां के प्रभाव से प्रभावित होते ही कटि–स्नान तब तक कराते रहना चाहिये जब तक शरीर भलीभांति ठण्डा न हो जाये।
2. कटि–स्नान के समय टांगों और ऊपर के शरीर को शेष शरीर के साथ ठण्डा न किया जाये, क्योंकि उन भागों में रक्त का संचार कम होता है। अतः ऊनी कपड़े से ढ़के रहना चाहिये।
3. रोग प्रायः एक ही बार के स्नान से काबू में आ जाता है, पर यदि ऐसा न हो तो कटि–स्नान 24 घंटे में तीन बार दिया जा सकता है।
4. स्नायु संबंधी रोगों की प्राथमिक चिकित्सा के नियमों का पालन करते हुए उपर्युक्त चिकित्सा चलानी चाहिये।
5. सारे बदन की गीली पट्‌टी का प्रयोग करें।
6. एनिमा लेकर पेट साफ करें।

**आहार :**

चोकर समेत आटे की रोटी, ताजे मौसमी फल, ताजी साग–सब्जियां, गाढ़ी मूँग या उड़द की छिलके समेत दाल, नये चावल का मांड समेत भात तथा धरोष्ण दूध आहार में लेना चाहिये।

**निषेध :**

मसाला, नशे की चीजें, अधिक नमक, अधिक चिकनाई, सफेद चीनी, खटाई, सिरका, आचार, वनस्पति घी तथा तली–भुनी चीजों से बचें।

## 7.5 तंत्रिका तंत्र व मानसिक रोगों की जल चिकित्सा पद्धितियाँ

**1. एनिमा**

यदि स्वभाविक रूप से मल का निष्कासन न हो रहा हो तो आँतों में चिपके हुए मल को निकालने के लिए एनिमा का उपयोग किया जाता है।
यह एक निरापद उपचार है एवं यह कभी भी नुकसान नही करता है।

**साधन :**

एनिमा पात्र, रबड़ की नली 4–5 एफ नोजल, एक कैथेटर – 12 नम्बर, एक तख्त, आँयल या वैसलिन, कीटनाशक घोल, गर्म–ठण्डा पानी, एक बैड पेन।

**एनिमा के प्रकार –**

- साधारण एनिमा – यह एक से ड़ेढ़ लीटर गुनगुने पानी का होता है। (98.6 डिग्री 3. फेरनहाइट से 99 डिग्री 3. फेरनहाइट)
- टॉनिक एनिमा – 250 से 350 मी. ली. ठण्डे पानी का होता है। 80 डिग्री 3. फेरनहाइट शरीर तापमान से थोड़ा कम हो ठण्डा पानी ये साधारणतया बड़ी आँतो की कमजोरी को शक्ति प्रदान करने के लिए दिया जाता है।
- गर्म पानी का एनिमा – ये कमजोर व बुजुर्ग लोगों को दिया जाता है। पानी की मात्रा 500 मी. ली., तापमान गुनगुने से थोड़ा ज्यादा। (100 डिग्री 3. फेरनहाइट से 104 डिग्री 3. फेरनहाइट)
- आँतो में पानी रोकने वाला एनिमा :– यह 100 से 150 मी.ली. पानी का होता है जो रात भर रोक के रखते है, इससे सुबह शौच करने में आसानी होती है।
- मिश्रित एनिमाः– यह पानी में जड़ी–बूटी, शहद नींबू आदि मिलाकर साधारण एनिमा की तरह दिया जाता है। जैसे– सूखे मल में तेल व पानी का एनिमा, पेट में किड़े पड़ने पर नीम की पत्ती का एनिमा, वायु दोष में लहसुन पानी का एनिमा, कोलाइटिस में मट्ठा का एनिमा।

| **आयु** | **मात्रा** |
|---|---|
| 6 माह से 1 वर्ष | 100 –200 मि.ली. |
| 1 वर्ष से 6 वर्ष | 200 – 500 मि.ली. |
| 6 से 12 वर्ष | 500 मि.ली. से 1 लीटर |
| 12 से 25 वर्ष | 1 लीटर से 1.25 लीटर |
| 25 वर्ष से अधिक | 1.25 लीटर से 1.5 लीटर |

**सिद्धांत :**

इस चिकित्सा द्वारा आँतों को बिना किसी उत्तेजना व जलन के मल रहित किया जाता है। मिश्रित एनिमा में ये लागु नहीं होता।

**विधि :**

**एनिमा चार प्रकार से दिया जाता है :**

5. पीठ के बल लेटाकर।
6. पेट के बल लेटाकर।
7. दाहिनी तरफ लेटाकर।
8. उकड़ू बैठाकर।

प्रायः कमर के बल लेटाकर ही एनिमा दिया जाता है तखत को एक तरफ से ऊँचा कर लेते है और ऊँचाई के तरफ पैर रखते है। 3–4 फीट ऊँचाई पर एनिमा पॉट रखकर आवश्यकता अनुसार पानी भर देते है। रोगी के पैर घुटने से मुड़वा देते है, कैथेटर में वेसलीन या ऑयल लगा देते है और नोजन में लगा देते है। थोड़ा सा पानी कैथेटर से निकाल कर कैथेटर को गुदा द्वार में 3 से 4 इंच प्रवेश कराते है। रोगी को लम्बे गहरे श्वास लेने को कहते है तथा रोगी के पेट पर हल्के हाथ से घड़ी की विपरीत दिशा में मालिश करते है, पात्र में जब थोड़ा सा पानी रह जाये तो पानी बंद कर देते है। प्रायः 3 मिनट में पूरा पानी अंदर चला जाता है। अंत में रोगी को बायीं करवट दो–दो मिनट, दायीं करवट तथा एक मिनट सीधा लेटाया जाता है।

अब रोगी को 5 से 10 मिनट तक सामर्थ्य अनुसार पानी को अंदर रोककर शौच के लिए भेजा जाता है, यदि शौच न हो तो टहलने का निर्देश देते है और शौच करते समय जोर न देने का निर्देश देते है।

क्रिया–प्रतिक्रिया :गुनगुने पानी से आँतो में फैलाव होता है, जिससे आँतों में चिपका हुआ मल स्थान छोड़ देता है। एनिमा द्वारा वह पानी में घुलकर शौच द्वारा आसानी से बाहर आ जाता है। ठण्डे पानी के एनिमा से आँते सजग बनती है और यह बड़ी आँतों को मजबूत करता है।

**उपयोगिता :**

कब्ज, दमा, सिर दर्द, त्वचा रोग, वायु विकार, मधुमेह पीलिया, गठिया, बड़ी आँत में प्रदाह या जलन, उपवास, फलाहार।

**निषेध :**

एनीमिया, रक्त स्त्राव कोलाइटिस, कमजोरी, खूनी बवासीर।

**सावधानियाँ :**

1. पानी अत्यधिक गर्म नहीं होना चाहिए। नहीं तो म्यूकस मेम्ब्रेन कमजोर हो जाती है।
2. पानी अत्यधिक ठण्डा नहीं होना चाहिए। नहीं तो आँतों में ऐठन होने लगती है।
3. पात्र अच्छी तरह साफ होना चाहिए।
3. किसी भी अवस्था में बिठाकर एनिमा नहीं देना चाहिए।
4. खूनी बावासीर या अल्सराटिस कोलाइटिस में यदि रक्त स्त्राव न हो रहा हो तो एनिमा दे सकते है।
5. पानी की मात्रा सावधानी पूर्वक धीरे–धीरे देनी चाहिए।
6. हर रोगी का कैथेटर अलग–अलग होना चाहिए।
7. एनिमा के आधे घण्टे तक रोगी को कुछ खिलाना पिलाना नहीं चाहिए।
8. कमोड व बेट पेन की व्यवस्था रखनी चाहिए।
9. लूजमोशन में एनिमा नहीं देते है।

**2. मेहन स्नान**

**परिचय :**

मेहन शब्द का अर्थ होता है जननेंद्रिय। अतः आप इसे जननेंद्रिय या मेहन स्नान भी कह सकते है। अत्यधिक कमजोर व्यक्ति जो कटि स्नान करने में असमर्थ हो उनके नाड़ी मण्डल के स्वास्थ्य को ठीक करने के लिये यह चिकित्सा दी जाती है।

**साधन :**

कटि स्नान का टब, छोटा मुलायम कपड़ा, अर्ध चन्द्राकार तिपाई, बाल्टी, मग, घड़ी, ठण्डा पानी।

**सिद्धांत :**

यह चिकित्सा नाड़ी मण्डल के अंतिम छोर को ठण्डक पहुँचाकर बल प्रदान करती है।

**विधि :**

अर्द्धचन्द्राकार तिपाई को टब में रखकर पानी भरते है। पानी का स्तर इतना रहे कि वो तिपाई के ठीक नीचे तक आ जाए, पानी तिपाई के ऊपर नहीं आना चाहिए। रोगी के कपड़े उतरवाकर टब में बिठाते है, पैर टब से बाहर रखते है। अब मुलायम कपड़े को पानी से भिगोकर जननेन्द्रिय के बाह्य भाग अग्र भाग को हल्के हाथ से पोंछते है। पुरूषों में (प्रोप्यूज), महिलाओं में (लेबियपा माडेंरा) इन दो पार्ट को पोछते है। यदि मुश्किल है तो पैरीनियम के भाग को पोंछते है।

**क्रिया–प्रतिक्रिया :**

पुरूष हो या स्त्री नाड़ी मण्डल का अंतिम छोर जननेन्द्रियों में स्थित होने से ठण्डे पानी के द्वारा शरीर की उत्तेजना शांत होती है और नाड़ी मण्डल सशक्त होता है, जीवनी शक्ति में वृद्धि होती है और जननांगों का तापमान कम होता है जो लोग कटि स्नान लेने में असमर्थ हो तो उसे इस स्नान के द्वारा लाभ पहुँचाया जा सकता है।

**उपयोगिता :**इस चिकित्सा से नाड़ी मण्डल सशक्त होता है एवं शरीर की उत्तेजना शांत होती है इसलिए यह चिकित्सा नाड़ी मण्डल से संबंधी रोगों के लिए अति उपयोगी है। जैसे :–

| | | | |
|---|---|---|---|
| चक्कर | थकान | श्वास फूलना | हृदय रोग |
| माइग्रेन | स्नायु दौर्बल्यता | रोग प्रतिरोधक क्षमता की कमी। | |

**निषेध :**

| | | | |
|---|---|---|---|
| जीर्ण रोगों | उपवास | ठण्डी, बुखार | नई सूजन। |

**सावधानियाँ :**

1. शरीर का शेष सारा भाग सूखा रहना चाहिये।
2. चिकित्सा के एक घण्टे तक नहाना या खाना नहीं चाहिये।
3. चिकित्सा का समय धीरे–धीरे बढ़ाना चाहिये।
4. रोगी को उत्तेजक आहार नहीं देना चाहिये।
5. चिकित्सा के बाद टहलाकर या कम्बल ओढ़कर गर्मी लाना चाहिये।
6. जो व्यक्ति कटिस्नान न ले सके उन्हे यह स्नान दिया जाता है।

**3. गर–ठण्डा कटि स्नान**

**परिचय** :यह पेट की गरम ठण्डी सेंक का वृहद रूप है, कटि प्रदेश में स्थित अंगों को स्वस्थ एवं सबल बनाने के लिए जल चिकित्सा मे स्थानीय चिकित्सा के रूप में यह उपचार दिया जाता है।

**साधन :**

2 हिपबाथ टब, 1 स्टूल छोटा, बाल्टी, मग, गरम पानी और ठण्डा पानी, छोटा तौलिया।

**पानी का तापमान :**

| | गरम पानी | ठण्डा पानी |
|---|---|---|
| गर्मियों में | 102 से 106 डिग्री फेरनहाइट | 45 से 55 डिग्री फेरनहाइट |
| सर्दियों में | 106 से 110 डिग्री फेरनहाइट | 55 से 65 डिग्री फेरनहाइट |

**सिद्धांत :**

यह चिकित्सा लगातार रक्त को कटि प्रदेश एवं अन्य अंगों में ले जाकर पम्प की भाँति कार्य करती है।

**विधि :** कटि स्नान के दो टब लेते है। एक में गर्म पानी और एक में ठण्डा पानी की मात्रा इतनी रखते है कि टब में बैठने के बाद नाभि के ऊपर पानी 1 से 1.5 इंच ऊपर आ जाए। रोगी के कपड़ें उतार कर मौसम के अनुसार पानी पिलाकर रोगी को पहले गर्म पानी के टब मे तीन मिनट तक बिठाते है। रोगी का पैर स्टूल पर रखते है ताकि गीले न हों।

रोगी के सिर में ठण्डें पानी का भीगा तौलिया रखते है उसके बाद एक मिनट तक ठण्डे पानी के टब में बिठा देते है। यह क्रिया तीन बार करते है। अंत में तीन मिनट ठण्डे पानी में बिठाकर उपचार करते है।

अगर रोगी को ठंड लग रही हो तो अंतिम तीन मिनट को आवश्यकतानुसार कम किया जाता है। इसके बाद रोगी को ठंडे पानी से नहलाकर शीघ्रता से शरीर पोंछकर उसे कपड़ें पहना देते है।

**अवधि :**

| | गर्म पानी | ठण्डा पानी |
|---|---|---|
| प्रथम बार | 3 मिनट | 1 मिनट |
| द्वितीय बार | 3 मिनट | 1 मिनट |
| तृतीय बार | 3 मिनट | 1 मिनट |
| चतुर्थ बार | 3 मिनट | 3 मिनट |
| **कुल** | **12 मिनट** | **6 मिनट** |

**कुल योग 18 मिनट**

**क्रिया–प्रतिक्रिया :**

गर्म पानी के प्रभाव से कटि प्रदेश में रक्त कोशिकाओं में फैलाव होता है, जिससे पैरों व धड़ की तरफ से रक्त कटि प्रदेश में तेजी से आता है और ठण्डे पानी में बैठाने से रक्त कोशिकाओं में संकुचन होता है जिससे पैरों में रक्त पुनः धड़ की तरफ वापस चला जाता है।

उपरोक्त क्रियाओं में रक्त पम्प की भांति कार्य करता है और कटि प्रदेश के अंगों में आराम दायक स्थिति उत्पन होती है। उन अंगों को पोषण मिलता है और उत्सर्जिय

पदार्थ उत्सर्जी अंगों द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है। बार–बार यह चिकित्सा देने से कटि प्रदेश में स्थित अंग स्वस्थ, शक्तिवान, सबल एवं सजीव हो जाते है।

**उपयोगिता :**

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| कब्ज | अजीर्ण | भूख न लगना | मोटापा | मधुमेह साइटिका |
| मूत्र रोग | उच्चरक्त चाप | स्लीप डिक्स | लो बैक पेन | स्त्रीरोग पीलिया |
| पेट संबंधी रोग | कोलाइटिस | B.P.H., | I.B.S. | |

**निषेध :**

तीव्र उच्च रक्त चाप तीव्र हृदय रोग अम्ल पित्त घुटनों का दर्द एवं सूजन साइटिका के तीव्र दर्द में अंतिम तीन मिनट ठण्डा पानी नहीं देते है।

**सावधानियाँ :**

1. रोगी को पहले पानी अवश्य पिलायें।
2. सिर पर ठण्डे पानी का तौलिया रखें।
3. भोजन के 3 से 4 घण्टे बाद करें।
4. तेज हवा का झोका नहीं लगना चाहिए।
5. मासिक धर्म के समय नहीं लेना चाहिए।
6. फल व दूध खाने पर एक डेढ़ घण्टे बाद।
7. आधे घण्टे के बाद तक कुछ न खायें।

**4.पैर का गरम नहान**

**परिचय :**कमर से ऊपर के अंगों के रोगों के लिए यह उपचार दिया जाता है। अगर भाप नहान की सुविधा उपलब्ध न हो तो पैर की गरम नहान से उसकी पूर्ति की जा सकती है।

**साधन :** एक पतली सुती चादर, एक कम्बल, एक बड़ी बाल्टी, एक बाल्टी, एक तौलिया, एक मग, कुर्सी या स्टूल, ठण्डा पानी और गरम पानी, रेक्सिन का कवर।

**पानी का तापमान :**

गर्मियों में 104 से 115 डिग्री फेरनहाइट

सर्दियों में 115 से 120 डिग्री फेरनहाइट

**सिद्धांत :**यह चिकित्सा कमर से ऊपर के अंगों में रक्त के दबाव को कम करने तथा रक्त के प्रवाह को पैरों की ओर ले जाने के लिए यह चिकित्सा दी जाती है।

**विधि :** यदि एनिमा की आवश्यकता है, तो पहले एनिमा दी जाती है फिर कम्बल को कुर्सी पर इस प्रकार बिछाते है कि मरीज को कुर्सी पर बैठाकर चारों तरफ से लपेटा जा सके कम्बल के ऊपर सूती चादर बिछाते हैं। मौसम के अनुसार रोगी को पानी पिलाकर कपड़े उतारकर कुर्सी पर बिठाते है। अब बड़ी बाल्टी में सह सकनें लायक गरम पानी भरकर रोगी के पैर बाल्टी में रखवाते है। पानी इतना रहे कि मरीज के टखने पानी में रहे।

रोगी के शरीर के पहले चादर से फिर कम्बल से इस प्रकार लपेटते है कि बाल्टी भी कम्बल के अंदर आ जाये अंत में कम्बल को रेक्सिन से ढक देते है।

सिर पर गीला ठण्डे पानी से भीगी तौलिया रखते है।

गरम पानी का तापमान बनाये रखने के लिए थोड़ी थोड़ी देर में गर्म पानी डालते रहते है बाल्टी में, सिर पर आवश्यकता अनुसार ठण्डा पानी डालते रहे और प्यास लगने पर ठण्डे पानी पिलाया जाता है।

चिकित्सा की अवधि पूरी होने पर रोगी को शीघ्रता से ठण्डे पानी से नहला दे या रोगी को गीले तौलिये से पोंछ दे।

**अवधि :** सामान्यतः – 25 मिनट
गर्मियों में – 15 से 20 मिनट
सर्दियों में – 25 से 30 मिनट

**क्रिया–प्रतिक्रिया :**गर्म पानी में पैर रखने से पैर की रक्त कोशिकाओं में फैलाव होता है जिससे रक्त का प्रवाह पैरों की तरफ बढ़ जाता है और कमर के ऊपर के हिस्से में रक्त का दबाव कम हो जाता है। विजातीय द्रव्य रक्त के साथ घुलकर अपना स्थान छोड़ देते है।

ठण्डें पानी से नहलाने पर पूरे शरीर का रक्त संचार तीव्र हो जाता है जिससे विजातीय द्रव्य उत्सर्जीय अंगों में पहुँचकर शरीर से बाहर हो जाता है।

**उपयोगिता :**

सर्दी जुकाम गठिया घुटनों का दर्द कंधे का दर्द खाँसी कान का दर्द मधुमेहसाइनोसाइटिस दमा ब्रोन्काइटि उच्च रक्त चाप सिर दर्द स्त्री रोग निम्न रक्त चापसर्वाइकल स्पानडिलाइटिस निम्न रक्त चाप

**निषेध :**

| | | | |
|---|---|---|---|
| हाइपर | एसीडिटी | नाड़ी दौर्बल्यता | इर्न्टनल हेमरज |
| लूजमोशन | चोट या घाव | लू लगना | त्वचा रोग |

**सावधानियाँ :**

1. तेज हवा का झोंका नहीं लगना चाहिए।
2. अत्यधिक निम्न रक्त चाप में नहीं देना चाहिए।
3. प्यास लगने पर पानी अवश्य पिलाते रहें।
4. सिर को हमेशा ठण्डे पानी से गीला बनायें रखें।

**5. भाप नहान**

**परिचय :**त्वचा पर स्थित स्वेद ग्रंथियों को सक्रिय बनाकर विजातीय द्रव्यों को पसीने के रूप में बाहर निकालने के लिए यह उपचार दिया जाता है।

**भाप नहान के दो प्रकार :**

3. स्थानीय भाप
4. पूरे शरीर का भाप नहान

**साधन :**

भाप नहान का बक्सा, केतली, 2–3 मीटर लम्बा ट्यूब, गैस का चुल्हा, छोटा तौलिया, सिर पर रखने के लिए बड़ा तौलिया, गिलास, मग, सादा पानी, कटि स्नान टब।

**सिद्धांत :**

त्वचा हमारे शरीर का तापमान एक सा बनाये रखने में सहायक होती है। भाप नहान में जब शरीर लगाातार भाप के सम्पर्क में आता है तो त्वचा की ऊपरी भाग का तापमान बढ़ने लगता है। उसे सामान्य बनाये रखने के लिए त्वचा में स्थित श्वेत ग्रंथियाँ सक्रिय होकर रोम छिद्रों से पसीना निकालने लगती है।

**विधि :** सबसे पहले केतली में पानी रख देते है। 700 से 800 ग्राम पानी सामान्य व्यक्ति के लिए आवश्यक है। टब का एक सिरा केतली में व दूसरा सिरा स्टीम बाक्स में रख देते है। जब केबिनेट भाप से गरम हो जाय तब रोगी को मौसम के अनुसार पानी पिलाकर उपचार देते है। कपड़े निकालकर ठण्डा पानी या गुनगुना पानी पिलाते है। उसके बाद बॉक्स में ऊँचाई के अनुसार बिठा देते है। बॉक्स बंद करके रोगी के सिर पर भीगा तौलिया

रख देते है। बड़ी तौलिया गर्दन के चारों ओर इस तरह लपेट देते है कि भाप बाहर न निकल सकें। रोगी को हल्के हाथों से बॉक्स के अन्दर ही रगड़नें या मालिश करने की सलाह देते है जिससे कि मृत त्वचा, मैल आसानी से निकल जाये, आवश्यकतानुसार सिर में थोड़ी –थोड़ी देर में पानी डालते है। अवधि पूरी होने पर रोगी को कैबिनेट से बाहर निकाल कर 2–5 मिनट तक ठण्डा कटि स्नान देते है और सिर से ठण्डे पानी से नहलाकर शरीर पोंछकर कपड़े पहनाते है।

**अवधि :**

गर्मियों में 10 से 15 मिनट

सर्दियों में 15 से 20 मिनट

**क्रिया–प्रतिक्रिया :**भाप की गर्मी से त्वचा की रक्त कोशिकाओं में फैलाव होगा, रक्त प्रवाह या संचार आंतरिक अंगो से सतह की ओर तेज हो जाती है। श्वेत ग्रंथियाँ सक्रिय हो जाती है और रोमकूप खुल जाते है। इस प्रकार शरीर से विजातीय पदार्थ पसीने के रूप में बाहर निकल जाते हैं।

ठण्डे पानी से नहाने पर रक्त कोशिकाओं में संकुचन होता है, इस प्रकार फैलाव और संकुचन से सारे शरीर में तीव्रता आ जाती है।

रक्त कोशिकाओं में अवरोध हो जाता है।

उपापचय ठीक ढंग से होता है।

विजातीय द्रव्य उत्र्सजीय अंगों में पहुँचकर शरीर से बाहर निकल जाते है।

नोट – भाप नहान के समय पल्स रेट बड़कर 140 से 150 तक पहुँच जाती है।

**उपयोगिता :**

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| मोटापा | निम्न रक्त चाप | चर्मरोग | जोड़ों का दर्द | जकड़न |
| एलर्जी | अपच | खाँसी | भूख न लगना | कफ |
| जुकाम | साइनोसाइटिस | अस्थमा | टॉन्सिलाईटिस | गठिया |

**निषेध :**

| | | | |
|---|---|---|---|
| उच्च रक्त चाप | खुली घाव | ह्रदय रोग | जला कटा हो |
| टी.बी. | आंतरिक रक्त स्त्राव | मिर्गी | हिस्ट्रिया (दौरा) |
| अधिक बूढ़े व्यक्ति | अत्यधिक कमजोर | | |

**सावधानियाँ :**

1. उपवास में नही देना चाहिए।
2. खाली पेट या खाने के तीन घण्टे बाद।
3. भाप नहान के पहले एनिमा देना है।
4. प्यास लगने पर पानी अवश्य पिलाते रहे।
5. सिर पर हमेशा ठंडे पानी से गीला करें।
6. रोगी को घबराहट महसूस हो तो भाप नहान बंद कर रोगी को ठण्डे पानी से नहलायें।
7. यदि त्वचा पर घाव है तो घाव पर ठण्डे पानी की पट्टी बाँधकर भाप नहान दिया जा सकता है।
8. रक्त चाप बढ़ा हुआ है तो छाती पर ठण्डे पानी की पट्टी को बाँधकर भाप नहान देना चाहिए।
9. भाप नहान के बाद ठण्डा कटि स्नान 3 से 5 मिनट तक अवश्य दें क्योंकि कटि प्रदेश का तापमान शरीर में हमेशा सामान्य रहता है।

**6. सारे बदन की गीली पट्टी**

**परिचय :**मरीज यदि भाप नहान ले पाने की स्थिति में न हो तो यह उपचार उसे देकर लाभ प्राप्त किया जा सकता है अतः इसे भाप नहान का प्रतिरूप भी कह सकते है।

**साधन :** एक तखत 6.5 फीट लम्बा, 3 कम्बल 8 फीट लम्बे – 5 फीट चौड़े, सूती चादर – 6.5 एवं 4.5 फीट, एक सूती कपड़े की पट्टी 0.5 मीटर चौड़ी और 1.5 मीटर लम्बी, एक बड़ी तौलिया, एक छोटी तौलिया, एक जाली का टुकड़ा, दो ईंट, एक गर्म पानी की थैली और ठण्डा पानी।

**सिद्धांत :**शरीर को बिना अधिक गर्मी पहुंचाए लगातार आधे घण्टे पसीने निकालने तक यह चिकित्सा दी जाती है।

**विधि :** यह हवादार स्थान पर तखत लगाते है, सर्दियों में यह उपचार धूप में भी दिया जा सकता है। तखत को पैरों की तरफ से ईंट लगाकर ऊँचा कर दें। सिर की तरफ रेक्सिन का तकिया रखते है। तकिये को ढ़कते हुए दो कम्बल बिछाते है। तखत के तीनों तरफ कम्बल लटकने देते है अब एक सुती चादर ठण्डे पानी में भिगोकर अच्छी तरह निचोड़ कर कम्बल के ऊपर बिछाते है इसी तरह छाती की पट्टी भी नियत स्थान पर बिछा देते है, रोगी को मौसम के अनुसार पानी पिला कर, कपड़े उतरवाकर रोगी को तखत पर पीठ के बल लेटाते है। रोगी के दोनों हाथ ऊपर कर पीठ एंव सीने पर छाती पट्टी लपेट देते है। अब हाथों को नीचे करवाकर चादर का दाहिना किनारा लेते हुए चादर को बायी ओर लपेट देते है, इसी प्रकार पैरों को कसकर लपेट देते है।

अब चादर का ऊपरी बाँया किनारा लेकर दाहिनी तरफ कसते है, ध्यान रहे कि रोगी गर्दन से लेकर पैरो तक अच्छी तरह ढक जाए। फिर क्रमशः पहला व दूसरा कम्बल लेकर विपरीत दिशाओं मे ढँकते हुए अच्छी तरह लपेट देते है। यथा सम्भव चादर एवं कम्बल ढ़ीला नहीं छोड़ते। इसके बाद तीसरा कम्बल रोगी को ओढ़ा देते है। रोगी के गर्दन में बड़ा तौलिया इस प्रकार लपेटते है कि रोगी को हवा न लगे सिर को पानी से गीला करें, छोटे तौलिये को पानी से भिगों करके सिर पर रख देते है। यदि रोगी को ठंड लग रही हो तब उसके पैरों के तरफ गरम पानी की थैली रखकर कम्बल से ढ़क देते है। समय–समय पर सिर पानी से गिला करते रहते है। चिकित्सा की अवधि पूरी होने पर रोगी को नहला कर अथवा गीले कपड़े से शरीर पोंछकर शीघ्रता से कपड़े पहना देते है।

**अवधि :**

| | | |
|---|---|---|
| 45 मिनट | – | सामान्यतः |
| 45 से 60 मिनट | – | आवश्यकतानुसार |
| 20 से 30 मिनट | – | क्रॉनिक फीवर। |

**क्रिया–प्रतिक्रिया :**

इसमें तीन तरह के प्रभाव देखने को मिलते हैः–

i. शीतकारी (Cooling)

चादर लपेटने के तुरन्त बाद 5 से 10 मिनट तक शीतकारी प्रभाव होता है इसमें रोगी को ठंड महसूस होती है। रक्त कोशिकाओं में संकुचन होने के कारण रक्त संचार आंतरिक भागो में होने लगता है।

ii. समकारी (Netural)

लगभग 10 मिनट के बाद रोगी सामान्य सा महसूस करता है, अब उसे न ठंड लगती है न गर्मी इस समय रक्त का संचार सामान्य हो जाता है। यह स्थिति 10 से 20 मिनट तक बना रहती है।

iii. उष्णकारी (Warm)

कम्बल से ढंके रहने के कारण 15 से 20 मिनट के बाद रोगी को गर्मी महसूस होती है इस समय रक्त संचार शरीर के आंतरिक अंगो से त्वचा या सतह की ओर होने लगता है, रोम छिद्र खुल जाते है और पसीना निकलने लगता है। रक्त संचार के तीव्र होने से कोशिकाओं को पोषण मिलता है। विजातीय द्रव्य उत्सर्जी अंगों में पहुॅच जाता है या पसीने के द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है।

**उपयोगिता :**

नाड़ी संबंधी रोग अवसाद उच्च रक्त चाप अनिद्रा अम्ल–पित्त चर्म रोग निम्न रक्त चाप मोटापा ज्वर कम करने में स्नायु दौर्बल्यता स्नायु संस्थान के लिए।

**निषेध :**

बहुमूत्र तीव्र हृदय रोग लूजमोशन कमजोरी त्वचा पर घाव उल्टी मिचली ठंड लगने पर आँव–दस्त

**सावधानियाँ :**

1. खाली पेट या भोजन के तीन घण्टे बाद।
2. ठण्ड लग रही हो तो गरम थैली पैरों की तरफ रखना चाहिये।
3. रोगी को नींद आ जाए तो उठने पर ही पट्टी निकालें।
4. यदि किसी एक अंग में सूजन है तो पहले उस स्थान पर छाती की पट्टी की तरह पट्टी बाँध दे।
5. चादर को प्रयोग करने से पहले अच्छी तरह किसी कीटाणु नाशक घोल से साफ करे।
6. मक्खियाँ लग रही हो तो जाली से मुँह को ढाँक दे।
7. यदि रोगी को उलझन हो तो हाथों को चादर से बाहर निकाल दें।

**7. पेट की गरम–ठण्डी सेंक**

**परिचय :**भोजन का पाचन, अवशोषण और अध पचे भोजन का निष्कासन यदि सही ढंग से नही हो रहा हो तो उससे उत्पन्न विकारों को दूर करने के लिए इस उपचार की आवश्यकता होती है। किसी भी अंग के मरम्मत के लिए यह महत्वपूर्ण उपचार है।

**साधन :** हॉट वाटर बैग, घड़ी, छोटा तौलिया, गरम थैली, ठण्डा व गरम पानी।

**पानी का तापमान**

गरम पानी – 108 से 110 डिग्री 3. फेरनहाइट

ठण्डा पानी – 65 से 70 डिग्री 3. फेरनहाइट

**सिद्धांत :**यह चिकित्या रक्त को बार–बार क्रमशः सतह पर एवं आंतरिक अंगों तक ले जाकर पम्प की भाँति कार्य करती है।

**विधि :** रोगी को पीठ के बल आराम की स्थिति में लेटाकर पेट के कपड़े हटा देते है। सबसे पहले गरम पानी की थैली तीन मिनट तक सेंकते है। इसके बाद ठण्डे पानी की एक भीगी तौलिया एक मिनट तक रखते है। यही क्रम तीन बार करते हैं और अंत में चौथी बार तीन मिनट तक ही ठण्डे पानी से भिगा तौलिया रखकर उपचार की प्रक्रिया पूरा करते है। हर बार ठण्डे पानी से भीगा हुआ तौलिया रखने से पहले तौलिया निचोड़ लेते है।

**अवधि :**

| गरम पानी की थैली | ठण्डे पानी का तौलिया |
|---|---|
| 3 मिनट | 1 मिनट |
| 3 मिनट | 1 मिनट |
| 3 मिनट | 1 मिनट |
| 3 मिनट | 3 मिनट |

कुल योग – 18 मिनट। (गरम पानी की थैली की सेंक 12 मिनट और ठण्डे पानी का तौलिया की सेंक 6 मिनट)

**क्रिया–प्रतिक्रिया :**जब आप गरम सेंक देते है, तब उस स्थान की रक्त केशिकाऍ फैल जाती है। ठण्डे पानी से रक्त केशिकाओं में संकुचन होता है। जब रक्त केशिकाऍ फैलती है ता वहॉ रक्त संचार बढ़ जाता है। जब संकुचन होता है तो विजातीय द्रव्य को अपने साथ लेकर उस स्थान से हट जाती है या अन्दर की ओर चला जाता है। इस प्रकार विजातीय द्रव्य रक्त में घुलकर उत्सर्जी अंगों तक पहुँच जाते है।

**उपयोगिता :**

पेट दर्द वायु विकार कब्ज पेशाब रोग यकृत रोग संधिवात श्वेत प्रदर अस्थमा मधुमेह मासिक दर्द पीलिया बी.पी.एच.

**निषेध :**

आंतरिक रक्त स्त्राव में नहीं देते अम्ल पित्त अल्सर

जला व कटा घाव पेट में घाव।

**सावधानियाँ :**

1. पानी का तापमान सही हो।
2. रोगी को तेज हवा का झोका नहीं लगना चाहिये।
3. खाली पेट या खाने के तीन से चार घण्टे बाद ही उपचार दें।
4. उपचार के बाद में एनिमा देते है, पहलें नहीं।

**अभ्यास प्रश्न**

1. शरीर के सभी तंत्रों को नियंत्रित करने के लिए .............................. तंत्र की आवश्यकता होती है।
2. जिस रोग में पूरा शरीर या अंग विशेष चेतना शुन्य हो जाते है .................................. कहलाते है।
3. चिंता, क्रोध, निराशा, भय, घबराहट आदि कारणों से उत्पन्न रोग को ........................... कहते है।
4. नींद न आने की बीमारी को ............................................ कहते है।

## 7.6 सारांश

शरीर का प्रमुख अंग मस्तिष्क है। वह तंत्र जो सोचने, समझने, किसी वस्तु को याद रखने के साथ–साथ शरीर के विभिन्न अंगों के कार्यो में सामंजस्य एवं संतुलन स्थापित करके शरीर पर नियंत्रण रखता है वह तंत्रिका तंत्र कहलाता है। तंत्रिका तंत्र शरीर का केन्द्रिय भाग है इसकी इच्छा के बिना शरीर की कोई भी क्रिया स्वाभाविक रूप से नहीं हो सकती है। इस प्रकार तंत्रिका तंत्र हमारे शरीर का महत्वपूर्ण भाग है।

मानसिक रोगों की संख्या दिनों–दिन बढ़ती ही जा रही है। इन रोगों का उपचार प्राकृतिक जल चिकित्सा के द्वारा संभव है। अतः यह कह सकते है कि भौतिकता के इस युग में मनुष्य स्वयं को मानसिक रोगों से ग्रस्त अनुभव करता है।

आधुनिक युग की इस ज्वलंत समस्या से मुक्ति पाने के लिए इसका उपचार जल चिकित्सा द्वारा करके मनुष्य सुखी समुन्नत जीवनयापन कर सकता है। उपयुक्त मानसिक रोग को रोकने के लिए जल चिकित्सा को सर्वश्रेष्ठ उपाय बताया गया है। इनका यदि जीवन में पालन करे अभ्यास करे तो मनुष्य का जीवन मानसिक रोगों से मुक्त हो सकता है।

## 7.7 पारिभाषिक शब्दावली

| | | |
|---|---|---|
| घर्षण | – | दो तलों के बीच प्रतिरोधी बल |
| चैतन्य | – | जाग्रत |
| विकृत | – | खराब |
| कटि प्रदेश | – | कमर का हिस्सा |
| शिथलीकरण | – | आरामदायक स्थिति |

## 7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** तंत्रिका तंत्र **2.** लकवा **3.** तनाव **4.** अनिद्रा

## 7.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

चौहान जहान सिंह, (2011) क्लीनिकल डायग्नोसिस एण्ड ट्रीटमेण्ट्स, सुमित प्रकाशन, आगरा, उत्तरप्रदेश

आचार्य पं. श्रीराम शर्मा, पुनरावृत्ति (2011) पंच तत्वों द्वारा संपूर्ण रोगों का निवारण, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, उत्तरप्रदेश

दूरस्थ शिक्षा केन्द्र, (2008), वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियॉ, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड

मुखर्जी कुलरंजन, (2007), दैनन्दिन रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा, सादार्न ऑफसेट प्रिन्टर्स, कलकत्ता, पं. बंगाल

जिन्दल राकेश, (2005) प्राकृतिक आर्युविज्ञान, आरोग्य सेवा प्रकाश, मोदीनगर, उत्तरप्रदेश

## 7.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

प्राकृतिक चिकित्सा – राम गोपाल शर्मा

असाध्य रोगों की सरल चिकित्सा – डॉ. नागेन्द्र कुमार निरज

## 7.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. तंत्रिका तंत्र से आप क्या समझते है? इसके किन्ही दो रोगों का वर्णन करें।
2. मानसिक रोग के किन्हीं दो रोगों की जल चिकित्सा का वर्णन करें।
3. तंत्रिका तंत्र के मिरगी रोग का लक्षण एवं कारण का उल्लेख करें।
4. मानसिक रोगों में जल चिकित्सा किस प्रकार उपयोगी है?

# इकाई 8 हृदय रोगों में प्रयुक्त जल एवं मृदा के प्रयोग


8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 हृदय का सामान्य परिचय
    8.3.1 हृदय रोग के कारण
    8.3.2 तत्कालिक चिकित्सा
    8.3.3 हृदय रोग – उच्च रक्तचाप
    8.3.4 निम्न रक्तचाप
    8.3.5 राजयक्ष्मा
8.4 हृदय रोगो की पृथ्वी चिकित्सा पद्धतियाँ
    8.4.1 पृथ्वी (मिट्टी) की शक्ति एवं गुण
    8.4.2 मिट्टी की पट्टी
    8.4.3 सर्वांग मिट्टी लेप
8.5 हृदय रोगो की जल चिकित्सा पद्धतियाँ
8.6 सारांश
8.7 पारिभाषिक शब्दावली
8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
8.10 निबंधात्मक प्रश्न


## 8.1 प्रस्तावना :

आप जानते है कि अस्थिर एवं अस्थायी भावनात्मक संबंधों, तनाव युक्त जीवन हमारे दिन प्रतिदिन की कार्य पद्धति में शामिल हो गया है। इन कारणों से हृदयगत बीमारियों की संख्या बढ़ती जा रही है। भावनात्मक समस्याओं से सबसे पहले जहाँ पर दबाव पड़ता है, वह है हृदय, क्योंकि संवेदनाओं का गहरा संबंध हृदय से है। इससे नकारात्मक भाव हृदय को प्रभावित करता है और प्रभावित हृदय गंभीर हृदय रोगों को जन्म देता है; जबकि सकारात्मक, स्वस्थ एवं पवित्र भावनाएँ हृदय की व्यापकता एवं विकास का कारण बनती है।

दिल संबंधी बीमारियों के मामले में अपना देश प्रथम स्थान पर काबिज है, जिसकी 10 फीसदी आबादी दिल के रोगों से ग्रस्त है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार 2015 तक अपने देश में यह रोग सबसे बड़ी बीमारी के रूप में सामने आने वाला है।

स्वस्थ एवं पावन भावनाएँ हमारे अंदर दया, करूणा, सहाानुभूति, सेवा आदि गुणों के विकास में सहायक होती है। जल एवं मृदा के द्वारा हृदय रोगों की सफल चिकित्सा की जा सकती है।

## 8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :–

1. हृदय रोग की सामान्य जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
2. हृदय से सम्बंधित विभिन्न रोगों की सामान्य जानकारी प्राप्त कर सकेगें।

3. हृदय रोगों की जल चिकित्सा जान सकेंगें।
4. हृदय रोगों की मृदा चिकित्सा जान सकेंगें।

## 8.3 हृदय का सामान्य परिचय

हृदय शरीर का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। मनुष्य में यह छाती के मध्य में, थोड़ी सी बाईं ओर स्थित होता है और एक दिन में लगभग एक लाख बार एवं एक मिनट में 60–90 बार धड़कता है। यह हर धड़कन के साथ शरीर में रक्त को धकेलता करता है। हृदय को पोषण एवं ऑक्सीजन, रक्त के द्वारा मिलता है जो कोरोनरी धमनियों द्वारा प्रदान किया जाता है। यह अंग दो भागों में विभाजित होता है, दायां एवं बायां। हृदय के दाहिने एवं बाएं, प्रत्येक ओर दो चैम्बर (एट्रिअम एवं वेंट्रिकल नाम के) होते हैं। कुल मिलाकर हृदय में चार चैम्बर होते हैं। दाहिना भाग शरीर से दूषित रक्त प्राप्त करता है एवं उसे फेफड़ों में पम्प करता है और रक्त फेफड़ों में शोधित होकर हृदय के बाएं भाग में वापस लौटता है जहां से वह शरीर में वापस पम्प कर दिया जाता है। चार वॉल्व, दो बाईं ओर (मिट्रल एवं एओर्टिक) एवं दो हृदय की दाईं ओर (पल्मोनरी एवं ट्राइक्यूस्पिड) रक्त के बहाव को निर्देशित करने के लिए एक–दिशा के द्वार की तरह कार्य करते हैं।
हृदय में कई प्रकार के रोग हो सकते हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार से हैं:

1. उच्च रक्तचाप
2. निम्न रक्तचाप
3. राजयक्ष्मा
4. हृदय की विफलता
5. पेरिकार्डियल बहाव
6. हृदयाघात
7. रुमेटिक हृदय रोग
8. जन्मजात खराबियां

**हृदय रोग का सामान्य परिचय :**
आप यहाँ हृदय–रोग जानने के पूर्व हृदय रोग के भेद के बारे में जानकारी प्राप्त करेगें। हृदय–रोग के निम्नलिखित भेद होते हैं–

**1. हृत्कम्प :**

इसमें जोर–जोर से दिल के धड़कने के दौरे आते हैं। उस समय रोगी की घबराहट बढ़ जाती है और उसे मृत्यु भय सताने लगता है। यह रोग पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक होता है। आकस्मिक घटनाओं, भय या क्रोध की दशा में हृदय तीव्र गति से धड़कने लगता है। पेशियों की विशेषकर हृदय की पेशियों और स्नायुओं की निर्बलता इस रोग का मूल कारण है। नशीली चीजों का सेवन, 'चाय–कहवा पान', शारीरिक और मानसिक दुर्बलता, रक्तहीनता, अजीर्ण, अनियमित आहार–विहार, स्नायु विकार, हृदय दोष, वीर्य–विकार, खूनी बवासीर तथा पेट में अपच के कारण वायु की उत्पत्ति आदि इस रोग के अन्य कारण है।

**2. दिल की धड़कन का बंद होने लगना :**

दिल की धड़कन तो अकस्मात बंद हो जाती है। परन्तु उसके पूर्व रोगी को कितने ही लक्षणों द्वारा उसका आभास हो जाता है, जिसकी उपेक्षा करने और तुरंत कोई उपाय न कर पाने के कारण इस रोग से उसकी मृत्यु हो जाती है। हृदय की धड़कन हमेशा के

लिये बंद हो जाने से पहले उसमें कमी होने लगती है जिसे दिल का बैठना कहते है। साथ में हृदय में कभी–कभी दर्द भी होता है।

**3. हृदय शूल :**

हृदय की रक्त की कोठरियों से प्रकृति वहां एकत्र विजातीय द्रव्य को बाहर निकाल फेंकने की चेष्टा करती है तो रूकावटों को दूर करने में विजातीय द्रव्य के कणों में रगड़ और टक्कर होती है जिससे भयानक पीड़ा की अनुभूति होती है। यही हृदय शूल या दर्द दिल है। इसी दर्द को अंग्रेजी में 'एनजाइना पेक्टोरिस' कहते हैं। यदि समय पर इसका उपचार न किया जाये तो मृत्यु निश्चित है।

**4. हृदय का आकार में छोटा या बड़ा हो जाना :**

हृदय में या हृदय के आस–पास विजातीय द्रव्य के एकत्र हो जाने से रक्त नलिकाओं में दूषित पदार्थ भर जाते हैं जिससे वे कड़ी व तंग हो जाती है। साथ ही हृदय की दीवारें भी मोटी हो जाती हैं, जिससे हृदय आकार में बड़ा प्रतीत होने लगता है। विजातीय द्रव्य की गर्मी से जब हृदय सूख जाता है तब उस समय वह आकार में छोटा हो जाता है। इन दोनों हालातों में रक्त को शरीर के समस्त भागों में पहुँचाने के लिये हृदय को कड़ी मेहनत करनी पड़ती है जिससे जल्दी ही वह बेकार हो जाता है।

**5. हृदय शोथ :**

हृदय में शोथ या सूजन पैदा हो जाना इस बात को प्रमाण है कि हृदय में विजातीय द्रव्य काफी मात्रा में एकत्र हो गया है। हृदय भीतर–बाहर चारों तरफ से एक प्रकार की झिल्ली से ढका होता है। जब उपर की झिल्ली में सूजन हो जाती है तो उसे 'परिहार्दिक सूजन' या 'पेरिकार्डिटीस' कहते हैं और जब सूजन हृदय की भीतरी झिल्ली में होती है तो उसे अंतः हार्दिक सूजन या 'इन्डोकार्डिटिस' कहते हैं।

### 8.3.1 हृदय रोग के कारण :

मुख्य रूप से हृदय रोग के निम्न तीन कारणों मान सकते है – मानसिक तनाव, शारीरिक बढ़ाव और रक्त का दबाव। हैडिलवर्ग, जर्मनी के हृदय विशेषज्ञ डॉ. हिमेंज हुब्समैन का कहना है कि हृदय रोगों का सम्बंध उतना शारीरिक कारणों से नहीं जितना मानसिक परिस्थितियों से है।

1. हृदय में रक्त लाने और ले जाने वाली नाड़ियों में अवरोध आ जाना।
2. मानसिक घुटन एवं उत्तेजना का होना।
3. भावुक अथवा घुटन भरी परिस्थितियों में रहना।

### 8.3.2 सामान्य चिकित्सा :

1. पूर्ण मानसिक ओर शारीरिक विश्राम देने के लिये किसी साफ बिस्तर पर सिर को ऊँचा रखते हुए लिटा देना चाहिये।
2. शरीर के कपड़ों को ढ़ीला कर देना चाहिये।
3. रोगी को प्रतिदिन गुनगुने पानी का एनिमा देकर पेट साफ कर देना चाहिये।
4. रोज दो बार 15 मिनट से धीरे–धीरे बढ़ाकर 30 मिनट तक हृदय पर बदल–बदलकर कपड़े की ठण्डी पट्टी रखनी चाहिये और अंत में उस स्थान को फलालेन आदि किसी सूखे कपड़े से रगड़कर लाल कर लेना चाहिये।
5. श्वास लेने में कष्ट हो या कफ का जोर हो तो पैरों को गरम करने के लिये उन पर ऊनी पट्टी या गरम कपड़ा लपेट देना चाहिये।

6. हृदय पर ठण्डे पानी से भीगे कपड़े की एक पट्टी अलग से रखकर समूची छाती पर 1 घंटे के लिये छाती की भीगी पट्टी लगानी चाहिये। डॉ.केलाग ने कहा है कि **"कोई भी औषधि उतना कार्य नहीं कर पाती जितना केवल शीतल जल का स्पर्श करता है।"**
7. रीढ़ पर गरम ठण्डी सेंक देनी चाहिये और बीच–बीच में स्पंज बाथ और गरम पानी में भिगोकर निचोड़ी हुई कपड़े की पट्टी से हृदय को सेंकना चाहिये।
8. हृदय की धड़कन बढ़ने पर हृदय पर ठण्डी पट्टी आधे–आधे घंटे पर 20–20 मिनट के लिये देते रहना चाहये।
9. हृदय रोग के साथ यदि पेट की भी तकलीफ हो तो एनिमा के साथ पेट पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग करना चाहिये और अजीर्ण रोग की चिकित्सा चलानी चाहिये।
10. हृदय रोग के साथ ज्वर हो तो भी पेट पर मिट्टी की पट्टी का ही प्रयोग करना चाहिये या कटि–स्नान लेना चाहिये।
11. यदि हृदय रोग के रोगी को नींद न आती हो तो सोने के पहले 15 मिनट तक सिर पर ठण्डे जल से भीगा और निचाड़ा कपड़ा रखकर पैरों को गरम पानी में रखने से लाभ होगा।

**8.3.3 हृदय रोग – उच्च रक्तचाप–** रक्तचाप क्या हैः– हमें जीवित रखने के लिये रक्त हमारे शरीर के प्रत्येक भाग में धमनियों द्वारा निरंतर पहुंचकर उसे पोषण देता रहता है। यह अत्यंत आवश्यक कार्य हमारे हृदय द्वारा अनवरत सम्पन्न होता रहता है। वह पम्प की तरह खुलता दबता रहता है और रक्त को रक्तवाहिनी धमनियों और नलिकाओं में आगे बढ़ाता रहता है। हृदय को दबाकर रक्त को धमनियों में आगे बढ़ाने की क्रिया को रक्तचाप, खून का दबाव व ब्लड प्रेशर कहते हैं। यह एक सवर्था स्वाभाविक क्रिया है जिसके बिना हम जीवित नहीं रह सकते।

एक स्वस्थ बीस वर्ष के युवक का रक्तचाप साधारणतः सिस्टालिक 120 मिलीमीटर होता है। परीक्षण करके इस परिणाम पर पहुँचा गया है कि रक्तचाप का साधारण स्वरूप 120 से 130 मिलीमीटर तक मानना ठीक है। 130 मिलीमीटर से ऊपर वाले रक्त को अस्वाभाविक और बढ़ा हुआ रक्तचाप मानना चाहिये तथा 120 मिलीमीटर से यदि कम रक्तचाप हो तो उसे घटे हुये या अल्प रक्तचाप का आरम्भ मानना चाहिये। 110 मिलीमीटर तक पहुॅचा हुआ रक्तचाप असाधारण रूप से घटा हुआ रक्तचाप कहलाता है।

शरीर के सारे हिस्सों में रक्तचाप का रूप एक–सा नहीं होता है। हृदय से अंग विशेष की दूरी के अनुसार उसमें भिन्नता हुआ करती है। इसलिये यन्त्र द्वारा सही रक्तचाप जानने के लिये बायीं भुजा की धमनी को, जो ऊपरी हिस्से में सामने की ओर रहती है, जहां रक्त का दबाव शरीर के अन्य स्थानों से अधिक होता है क्योंकि यह स्थान हृदय के बहुत निकट होता है।

**उच्च रक्तचाप के निम्नलिखित कारण होते है –**
1. शारीरिक जोश और उमंग आने पर।
2. किसी प्रकार की जरा–सी घबराहट या भय होने पर।
3. खाना खा लेने के बाद।
4. किसी प्रकार की खुशी होने पर, यहां तक कि अत्यधिक खुशी में आदमी का रक्तचाप बढ़कर उसकी धमनियों और रक्त नलिकाओं को तोड़–फोड़ देता है जिससे उसकी मौत तुरन्त हो जाती है।
5. दिलचस्प दृश्य देखने से, तेज खूशबू या बदबू से, सुरीली या सख्त आवाज सुनने से।

6. क्रोध आदि अन्य मानसिक आवेगों के समय।
7. स्त्री–प्रसंग के समय।
8. श्वेतसार मैदा से बनी हुई चीजें, चीनी, मसाले, तेल, खटाई, तली–भुनी चीजें, प्रोटीन, रबड़ी, मलाई, दाल आदि। कॉफी, चाय तथा सिगरेट आदि का अधिक मात्रा में सेवन करना।
9. बार–बार या अधिक खाना।
10. मादक द्रव्यों का सेवन।
11. अपर्याप्त व्यायाम।
12. असंयम।
13. चिन्त, क्रोध, भय आदि मानसिक विकारों का बना रहना।
14. मूत्राशय के रोग उपदंश, पुराना आंव, कब्ज तथा मस्तिष्क की शून्यता।

**लक्षण :–**

1. सिरदर्द,
2. चक्कर आना,
3. थकान अनुभव करना,
4. घबराहट,
5. नाड़ी का धीरे–धीरे चलना,
6. मानसिक तनाव आदि।

**सामान्य चिकित्सा :–** जिन कारणों से रक्तचाप बढ़ने का रोग होता है उन कारणों से बचना इस रोग की प्रमुख चिकित्सा है। साथ ही स्वास्थ्य रक्षा के साधारण नियमों के नित्य–प्रति पालन करने की आदत डालनी चाहिये।

1. भोजन के समय पानी न पीना, उसके दो घंटे बाद खूब पानी पीना।
2. भोजन चबा–चबाकर करना।
3. भोजन के बाद पेशाब करना तथा कम से कम 50 कदम टहलना, तत्पश्चात् थोड़ा आराम करना।
4. सुबह–शाम शक्ति अनुसार टहलना।
5. उषापान करना।
6. नींबू का रस मिला जल दिन में प्रचुर मात्रा में पीना, शाम का खाना सूर्यास्त से पहले खा लेना, भूख न होने पर न खाना आदि स्वास्थ्य रक्षा के साधारण नियम हैं।

रक्तचाप के रोग में औषधियों का प्रयोग बहुत ही हानिकारक होता है। अतः इस रोग में भूल से भी औषधि प्रयोग नहीं करना चाहिये। लिवरपूल के हृदय अस्पताल के हृदय रोग विशेषज्ञ डा0 आई0हैरिस ने अपना अनुभव लिखते हुये एक जगह लिखा है कि ''औषधि द्वारा रक्तचाप की चिकित्सा कराना व्यर्थ ही नहीं अपितु इससे यथेष्ट अपकार भी होता है।''

इस रोग में अगर हो सके तो कुछ दिनों तक उपवास चलाया जाये; पर अगर यह संभव न हो तो 5 से 10 दिनों तक फलाहार या कच्ची और उबली सबिजयों पर रहें। यदि सब्जियों पर रहा जाये तो जलपान में गाजर, खीरे आदि का एक ग्लास जूस लिया जाये, दोपहर का भोजन केवल सलाद का हो तथा शाम को केवल उबली सब्जियां खायी जाये। यदि फलाहार पर रहा जाये तो दिन में केवल तीन बार फल खायें। एक समय केवल एक

प्रकार का फल खाया जाये। इन दिनों प्रतिदिन शाम को गुनगुने पानी का एनिमा भी लेना चाहिये।

तरकारी या फल का उपर्युक्त क्रम चलाने के बाद से एक मास तक सुबह मेहन–स्नान और शाम को कटि–स्नान करना चाहिये तथा रात भर के लिये कमर की पट्टी भी लगानी चाहिये। सप्ताह में एक बार एप्सम साल्ट बाथ और दो बार पैरों का गरम स्नान भी लेना चाहिये। अधिक तकलीफ हो तो 5 से 7 मिनट तक गरम जल में स्नान करना चाहिये और उसके बाद पेडू और खोपड़ी पर गीली मिट्टी की पट्टी बांधनी चाहिये। हृदय में धड़कन आदि का रोग हो तो गरम जल में स्नान नहीं करना चाहिये। आवश्यकता हो तो सप्ताह में 1–2 बार 45 मिनट से एक घंटा तक शरीर की भीगी चादर की लपेट भी लगावें। उस वक्त सिर पर ठण्डे पानी से भीगा गमछा और पैरों के पास गरम पानी से भरी बोतलें जरूर रखनी चाहिये तथा बाद में रोगी को एक शीतल घर्षण स्नान देना चाहिये।

तरकारी या फल का क्रम चलाने के बाद दो सप्ताह तक फल और दूध पर रहना चाहिये आर्थात् सुबह शाम फल, दूध या तरकारी दही लेना चाहिये और केवल दोपहर के खाने में सप्राण अन्न का उपयोग करना चाहिये। लहसुन का प्रयोग रक्तचाप के रोग में बड़ा उपकारी होता है।

**8.3.4 निम्न रक्तचाप (लोब्लड प्रेशर)–** जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, सिस्टोलिक 120 मिलीमिटर से नीचे उतरने पर अल्प या घटे हुए रक्तचाप का आरम्भ होता है और अगर यह उतरकर 110 पर पहुँच जाये तो इस स्थिति को भयावह समझनी चाहिये और उसका तुरन्त उपचार करनी चाहिये। कभी–कभी तो इस रोग में रक्तचाप घटकर 90 तक आ जाता है। घटा हुआ रक्तचाप बढ़े हुए रक्तचाप की तरह ही एक रोग है जिससे स्वास्थ्य और जीवन के लिये हर समय खतरा रहता है।

**कारण :**

1. यकृत ठीक से कार्य न करने,
2. पाचन क्रिया न होने,
3. मोटापे की चिन्ता, कम खाने,
4. रक्त में लोहा,
5. फास्फोरस खनिज की कमी से,
6. अधिक सहवास से तथा हस्तमैथुन आदि कारणों से हो सकता है।

**लक्षण :**

1. धमनियों और रक्त नलिकाओं की दीवारें ढ़ीली होकर फैल जाती है।
2. यदादाश्त की कमी।
3. सिरदर्द,
4. चक्कर आना,
5. थकान अनुभव करना,
6. घबराहट,
7. नाड़ी का धीरे–धीरे चलना,
8. मानसिक तनाव,
9. हाथ–पैर ठण्डे रहना,
10. भयभीत रहना आदि।

**सामान्य चिकित्सा :**

आइए जानते है इस रोग की सामान्य चिकित्सा।

1. इस रोग में कुछ दिनों तक उपवास करना चाहिए।
2. सुबह–शाम का उदर–स्नान और शाम को मेहन स्नान करना चाहिये।
3. कब्ज को दूर करने के लिए एनिमा लेते रहना चाहये।
4. प्रतिदिन मालिश, हल्का व्यायाम या टहलना, साधारण पानी से स्नान, विश्राम एवं शिथिलीकरण, मोजों आदि से पैरों को गरम रखना तथा रात को सोने से पहले गरम पानी में नींबू का रास निचोड़ कर पीना आदि उत्तम है।

**8.3.5 राजयक्ष्मा (टी0बी0)–** राजयक्ष्मा को संस्कृत में क्षय, यक्ष्मा, यक्ष्मी तथा शोष भी कहते है। इस रोग के आगे–पीछे तथा साथ–साथ अनेक अन्य रोग भी चलते हैं, इसलिये इसको राजरोग भी कहते हैं। हिकमत में इस रोग का नाम तपेदिक या सिल है। एलोपैथ में इसे 'कंजमशन', थाइसिस', या 'ट्यूबरक्लोसिस' कहा जाता है। इस रोग में दिनोंदिन शरीर का क्षय होता है अर्थात् शरीर की धातुओं का (रस, रक्त आदि) नाश होता है। इसलिए इसे क्षय या शोष कहते हैं। इसे टी0बी0 या ट्यूबरक्लोसिस कहते हैं क्योंकि इस रोग की उत्पत्ति का कारण एक 'ट्यूबरकल' नामक कीटाणु माना जाता है जो फेफड़ों आदि में उत्पन्न होकर उन्हें धीरे–धीरे खाकर नष्ट कर देता है। यह कीटाणु फेफड़ो, त्वचा, जोड़ों, कण्ठ, मेरूदण्ड, अंतड़ियों एवं हड्डियों आदि शरीर के सभी अवयवों पर समान रूप से आक्रमण करने की क्षमता रखता है।

क्षय रोग के तीन भेद होते हैं–फुफ्फुसीय क्षय, पेट का क्षय तथा अस्थि क्षय।

**लक्षण :** फुफ्फुसीय क्षय सर्वसाधारण को जल्दी पहचान में नहीं आता और शरीर के अन्दर बहुत दिनों तक छिपा रहकर बढ़ता रहता है। जब यह विकराल रूप धारण कर लेता है तब कही जाकर हमें पता लगता है कि यह तो क्षय रोग है। यही कारण है जो इस रोग से पीड़ित प्राणी बहुत कम बचते हैं। आजकल तो इस रोग का आक्रमण बूढ़े, जवान, बालक, स्त्री सब पर समान रूप से हो रहा है।

1. श्वास लेने में तकलीफ होती है।
2. अक्सर सिरदर्द रहता है।
3. पाचन ठीक नही रहता।
4. हड्डी गलने लगती है।
5. कन्धों में पीड़ा होती है।
6. कान या आंख की कोई बीमारी खड़ी होकर असली रोग पर पर्दा डाले रहती है।
7. रोगी की नाड़ी तेज और कभी–कभी असमान गति से चलती है।
8. पेचिस की शिकायत बहुधा बनी रहती है।
9. रोगी कभी–कभी उल्टी भी करता है।
10. जबान लाल हो जाती है।
11. शरीर का तापक्रम बढ़ा रहता।
12. गंदा पखाना हुआ करता है।
13. क्षय से रोगी को अच्छी नींद नहीं आती तथा चलते और सोते समय उसका मुँह खुला रहता है।
14. जीवनी शक्ति क्षीण हो जाती है जिससे वह दुर्बल हो जाता है।
15. चहेरा पीला पड़ जाता है।

**प्रकार :**

क्षय रोग के तीन दर्जे माने गये हैं–प्रारम्भिक, माध्यमिक तथा अंतिम।

आरम्भिक अवस्था में क्षय साध्य कहा जाता है। इसमें विशेषकर प्रातः काल खांसी उठती है। खांसी के साथ कभी कफ आता है, कभी नहीं आता और कभी कफ में रक्त के छींटे दिखाई देते हैं। शारीरिक शक्ति का ह्रास होने लगता है। भूख बंद हो जाती है। वजन घटने लगता है। थोड़ा भी परिश्रम करने पर रोगी थक जाता है और उसके शरीर से पसीना चलने लगता है। रात को अनायास पसीना आता है। तीसरे पहर हल्का ज्वर चढ़ता है और प्रातः काल कभी 'नॉर्मल' से भी नीचे चला जाता है।

माध्यमिक अवस्था में यक्ष्मा के जीवाणु रोगी के फेफड़े में गर्त बना देते है। शरीर का रक्त और मांस क्षीण होने लगता है। दोपहर के बाद जब ज्वर चढ़ता है तो जबड़े फूल जाते हैं और मुँह लाल हो जाता है। रात में पसीना अधिक आने लगता है। पेट में बीमारी बढ़ जाती है। सूखी खांसी अधिक उठती है। कफ का रंग सफेद झागदार से बदलकर गीला हो जाता है और उसके साथ–साथ रक्त भी गिरना आरंभ हो जाता है। वमन होती है। शरीर का वजन काफी घट जाता है। कष्ट बढ़ जाता है। मुँह चपटा हो जाता है। मुँह पर सूजन आ जाती है तथा बगलों में कभी–कभी सूइयां सी चूभती प्रतीत होती है। यह दशा कष्ट साध्य होती है।

अन्तिम अवस्था में ऊपर की सभी तकलीफें बढ़ जाती है। रोगी के दोनों फेफड़े खराब हो जाते हैं। कण्ठ विकृत हो जाता है। दस्त लग जाता है। नाक पतली हो जाती है। नथुनों के भीतर का भाग काला हो जाता है। कनपटियां भीतर की ओर धंस जाती है। घुटनों के निचले भाग में दर्द होता है। पैरों की एड़ियों का उपरी भाग भी सूज जाता है तथा रक्त का वमन होने लगता है। पर इस अवस्था में एक विचित्र बात यह होती है कि रोगी की भूख खुल जाती है और वह सोचने लगता है कि वह अच्छा हो रहा है लेकिन इस अवस्था को प्राप्त रोगी कम बचते हैं।

पेट के क्षय की पहचान भी बड़ी कठिन होती है। इसमें पेट के अन्दर क्षय की गांठें पड़ जाती है। यह रोग अपनी बढ़ी हुई अवस्था में संग्रहणी कहलाता है, जिसमें रोगी को दस्त आया करता है। हड्डी के क्षय में शरीर में जहाँ–तहाँ फोड़े और जख्म हो जाते हैं जो अच्छा होने का नाम नहीं लेते। इस प्रकार के क्षय की पहचान भी आसान है।

**कारण :**

1. खान–पान और रहन–सहन की गलतियों से।
2. यह रोग किसी दूसरे रोग की चिकित्सा में दी गई दवाओं के दुष्परिणाम स्वरूप भी होता है।
3. जिन बच्चों का सिर बड़ा होता है या जिन्हें गण्डमाला का रोग होता है उनमें क्षय रोग के किटाणु या तो उन्हें अपने माता–पिता से मिलते हैं या गलत तरीके के रहन–सहन अथवा उनके आरम्भिक जीवन में विषैली औषिधयों के प्रयोग से उत्पन्न होते हैं।
4. रक्त, मांस तथा वीर्य आदि सभी आवश्यक तत्वों की एकाएक कमी होने से।
5. क्षय रोग के किटाणु के शरीर में प्रवेश करने से।

**रोग की पहचान**

तपेदिक या क्षय छूत का रोग है। छूत से यह बड़ी शीघ्रता से फैलता है। इस रोग के कीटाणु होते हैं जो रोग के फैलने में मदद करते हैं। ये कीटाणु लम्बे, पतले और छड़ी की शक्ल के होते हैं। इनके ऊपर एक आवरण चढ़ा होता है जो चर्बी और मोम का बना होता है। रोगी की खांसी के साथ 24 घंटे में अधिक से अधिक जीवाणुओं का शरीर से

बाहर निकलने लगते है। सीलन, सड़न, धूल, गंदी हवा, तथा अंधेरी जगहें इनके निवास स्थान हैं। अधिक गर्मी, अधिक प्रकाश, स्वच्छ स्थान, स्वच्छ शरीर एवं शुद्ध रक्त के संपर्क में आते ही इनका खात्मा हो जाता है। ये मल से भरे शरीरों पर ही चोट कर सकते है और करते हैं। निर्मल शरीर में इनकी दाल नहीं गलती। इसीलिये यह आवश्यक नहीं है कि जब क्षय के कीटाणु किसी शरीर में पहुंच जाये तो उसे क्षय रोग हो ही। सिद्धांत भी यही है कि जहाँ गंदगी होती है वहीं कीड़े उत्पन्न होकर पनपते और वृद्धि को प्राप्त होते हैं। परन्तु जहाँ गंदगी नहीं, वहाँ कीड़ों की गुजर कहाँ? वहाँ तो उनकी मौत हो जाती है। अतः किसी रोग के किटाणु वस्तुतः उस रोग के कारण नहीं होते, अपितु वह रोग विशेष ही उस रोग के कीटाणुओं का कारण होता है। दूसरे शब्दों में इसे इस तरह कहेंगे कि रोगाणु रोग के परिणाम हैं।

**बचाव :**

यह जानना कि किसी व्यक्ति विशेष के शरीर में विजातीय द्रव्य का भार इतना है या नहीं कि जिससे क्षय के कीटाणुओं द्वारा उसके शरीर पर आक्रमण होकर उसे क्षय हो या न हो? यदि असंभव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य हैं। इसलिये यह अक्लमंदी की बात होगी कि जहाँ तक संभव हो क्षय के रोगी के संपर्क से अपने को बचाये रहा जाए। उसके थूक–खखार को प्रतिदिन जला दिया जाया करे, उसके बर्तन, कपड़े, आदि को दूसरा कोई इस्तेमाल न करे, उसके सभी कपड़े प्रतिदिन धूप में सूखायें जायें तथा उसे घर से दूर अलग किसी बगीचे आदि में बने कमरे में रखा जाये ताकि उसके शरीर के क्षय के किटाणु किसी को हानि न पहुंचा सकें। जो लोग ऐसे रोगी की दवा–दारू, सेवा–सुश्रुषा करें उन्हें चाहिये कि वे स्वास्थ्य के साधारण नियमों का तो पालन करें ही साथ ही साथ प्राकृतिक उपायों से अपने शरीर को विशुद्ध एवं विजातीय द्रव्यों से मुक्त जरूर कर लें, अन्यथा क्षय के कीटाणु उनके मलपूर्ण शरीरों में प्रवेश कर किसी भी समय उन्हें रोगी बना सकते हैं।

**सामान्य चिकित्सा :**

1. क्षय–रोग निवारण के लिये जल एवं मृदा चिकित्सा चलाने के पहले जिन कारणों से इस रोग के होने की संभावना होती है उन्हें सर्वथा त्याग देना चाहिये।
2. शुद्ध वायु का ही सेवन करना चाहिये।
3. शरीर पर जितनी देर हो सके स्वच्छ वायु और प्रकाश लगने देना चाहिये।
4. साफ हवा और रोशनी पर्याप्त मात्रा में मिलती रहनी चाहिये।
5. सोते समय मुंह को कदापि नहीं ढंकना चाहिये।
6. रोगी के पास दीपक, लालटेन या आग न जलने देना चाहिये। इससे वहां की वायु में ऑक्सीजन की कमी पड़ जाती है।
7. शारीरिक और मानसिक दोनों तरह का आराम करना चाहिये।
8. चिन्ता, क्रोध, भय आदि मानसिक उद्वेग से हमेश दूर रहना चहिए।
9. दुर्बल रोगी को उपवास नहीं करना चाहिये।
10. डॉक्टर कुलरंजन मुखोपाध्याय के अनुसार कुछ सप्ताह तक यदि रोगी को पूरा–पूरा आराम दिया जाये तो बहुत बार केवल इतना करने से ही रोगी की दुर्बलता, मंदाग्नि, अजीर्ण, ज्वर, खांसी आदि में कमी हो जाती है। इस तरह विश्राम करने से रोगी का वजन भी असाधारण रूप से बढ़ते देखा गया है। इसलिये जब तक रोगी का ज्वर न चला जाये, तब तक उसको शय्या पर लेटे रहकर पूर्ण विश्राम करना चाहिये।

## 8.4 हृदय रोगो की पृथ्वी चिकित्सा पद्धतियाँ

मिट्टी प्रकृति की मुफ्त की दवा है, जो सबको घर बैठे मिल जाती है। जिस मिट्टी का प्रयोग हम चिकित्सा में करें वह बिल्कुल स्वच्छ, ताजी और दुर्गन्ध रहित होनी चाहिये। उसे साफ करके प्रयोग में लेनी चाहिये। मिट्टी चार रंग की होती है– काली, पीली, सफेद और लाल। सब प्रकार के चर्म रोग, हथियारों के घाव, रक्त विकार, नासूर, फफोले, गांठ, कोढ़ हड्डी का टूटना, शरीर दर्द आदि में मिट्टी औषधी साबित हुई है। मिट्टी में रोग नाश की अद्भूत शक्ति है। उससे लाभ उठाकर हम आसानी से निरोग रह सकते है।

### 8.4.1 पृथ्वी (मिट्टी) की शक्ति एवं गुण

मिट्टी, जितनी सर्वसुलभ एवं नगण्य मानी जाती है, उसकी गुण–गरिमा उतनी ही महान है। नीचे मिट्टी के कुछ गुण दिये जाते हैं। :–

1. मिट्टी में विलक्षण विद्रावक शक्ति होती है। बड़े से बड़े फोड़े पर मिट्टी की पट्टी चढ़ाने से अपनी विद्रावक शक्ति से ही वह उसे पका देती है, बहा देती है और घाव को भी ठीक कर देती है।
2. मिट्टी में सर्दी और गर्मी रोकने की शक्ति होती है यही कारण है कि योगी लोग अपने शरीर पर मिट्टी लगाये रहते हैं जिससे कड़ी से कड़ी धूप और कड़ाके की सर्दी दोनों में उनके नंगे बदन की रक्षा स्वतः होती रहे।
3. सब प्रकार की दुर्गन्ध को मिटाने के लिए मिट्टी से बढ़कर संसार में और कोई वस्तु नहीं है। यही कारण है जो जनता मिट्टी से अपने घरों को लिपती है और दुर्गन्ध की जगह मिट्टी का प्रयोग करती है।
4. जल को निर्मल कर देने की अद्भुत शक्ति मिट्टी में होती है। कूपों, सरिताओं और स्त्रोतों का जल इसी कारण सदैव निर्मल रहता है। वैसे भी गंदे पानी को साफ करने के लिए बालू या मिट्टी में से उसे छानते हैं।
5. मिट्टी में विषादि को शोषण करने की विचित्र शक्ति होती है। सांप, बिच्छू आदि के काटने पर मिट्टी का युक्तिपूर्वक लेप आश्चर्यजनक रूप से कार्य करता है। कार्बकल जैसे भयानक फोड़े का विष चूसकर मिट्टी उसे कुछ ही दिनों में ठीक कर देती है जो उसकी विष शोषण शक्ति का प्रभाव होता है।
6. मिट्टी में जल तथा सब प्रकार की धातुएँ अर्थात् खनिज पदार्थों को धारण करने की शक्ति है। समुद्र, नदियां, पहाड़ादि पृथ्वी पर ही तो टिके हुए हैं।
7. मिट्टी में ही सभी प्राणियों के जीवन निर्वाह के लिए खाद्य पदार्थों को उनमें भिन्न–भिन्न रसों की प्रधानता के साथ उत्पन्न करने की शक्ति होती है।
8. मिट्टी, अग्नि की उष्णता का शोषण करके उसे शांत कर सकती है इसी से आग लगने पर उसे मिट्टी डालकर उसे बुझाते हैं।
9. मिट्टी, जल के योग से तरह–तरह के आकार धारण कर सकती है। मिट्टी के मकान, खेल के समान तथा बर्तन इसके उदाहरण हैं।
10. जिस प्रकार सारी सृष्टि की रचना मिट्टी से हुई है उसी प्रकार अंत में सबको आत्मसात कर लेने की शक्ति भी पृथ्वी में निहित है। कहा भी है :–

मिट्टी में रोगों को दूर करने की अपूर्व शक्ति है क्योंकि मिट्टी में जगत की सभी वस्तुओं का एक साथ रसायनिक समिश्रण सर्वाधिक विद्यमान है जबकि किसी एक दवा या कई दवाओं के मिश्रण में उतना रसायनिक समिश्रण कदापि नहीं हो सकता।

**प्रो. स्कांटलासा के अनुसार :** ''मिट्टी में एक प्रकार के रेडियम होता है जो शरीर की ग्रन्थियों को प्रभावित करके स्वास्थ्य वृद्धि करता है। मशीनों द्वारा रेडियम चिकित्सा प्रायः हानिकारक होती है, जबकि मिट्टी के प्राकृतिक रेडियम से तनिक भी हानि नहीं होती, बल्कि लाभ होता है।''

**डॉ. लिण्डल्हार के अनुसार :** '' मिट्टी त्वचा के रोम कूपों को खोलती, अन्दर के दर्द एवं रक्त संचय को दूर करती है और विजातीय द्रव्य को बाहर निकालती है।''

मनुष्य के अतिरिक्त इस पृथ्वी पर और भी बहुत से थलचर प्राणी है, जैसे पशु, सांपादि। ये सभी जीव जीवन पर्यन्त अपना संपर्क धरती माता से बनाये रखते हैं जिसके फलस्वरूप वे आनंद पूर्वक जीवन–यापन करते है। इनमें मनुष्य की भांति सभी बातों में कृत्रिमता नहीं होती। इनके लिए अलग से ओढ़ने–पहनने के लिए न तो अलग से वस्त्र की जरूरत होती है न बिछाने के लिए अलग से नरम बिस्तरे की। जिसका फल यह होता है कि वे स्वस्थ और बलशाली जीवन भर बने रहते है।।

### 8.4.2 मिट्टी की पट्टी

**परिचयः–**अर्थवेद संहिता अन्य पौराणिक ग्रंथों में मिट्टी के रोग निवारक गुणों एवं चिकित्सकिय महत्व का वर्णन मिलता है। पश्चात देशो ने भी मिट्टी के महत्व को स्वीकार किया। आधुनिक या वर्तमान काल में (एडोल्फ जस्ट) को मिट्टी के प्रयोग का जन्मदाता माना जाता हैं।

**साधनः–**साफ मिट्टी, पानी, टब, एक लकड़ी की ट्रे लगभग एक से सवा इंच लम्बाई और आठ इंच चौड़ी और एक इंच ऊँचाई होनी चाहिए, कम्बल का टुकड़ा लगभग ड़ेढ़ फूट लम्बाई, एक फूट चौड़ा।

**मिट्टी की विशेषता :**

1. यह आँतों में चिपके हुए मल को ढिला करती है।
2. ठंडक शीतलता प्रदान करती है।
3. शोषण की क्षमता – मिट्टी शरीर के विजातीय द्रव्यों को शोषित करती है।
4. मांसपेशीयों को मजबूत करती है।

**सिद्धांतः–**यह लगातार शरीर को आधे घण्टे तक ठंडक पहुँचाती है।

**विधिः–** मिट्टी की पट्टी बनाने के लिए किसी साफ जगह से मिट्टी की दो इंच नीचे से मिट्टी लेते है, फिर उसे धूप में सुखाया जाता है (8–10 घण्टे तक) जिससे वह किटाणु रहित हो जाये। उसके बाद पीस या कुट कर छान लेते है, जिससे कंकड़ पत्थर निकल जाय इस मिट्टी को 8–10 घण्टे या रात भर के लिए भीगा देते है, अब मिट्टी को पेस्ट बनाकर लकड़ी के ट्रे पर पहले सुखी मिट्टी बिछा कर तैयार पेस्ट को उस पर फैला देते है, अंत में गिले हाथ से मिट्टी की सतह को चिकने बना देते है।

रोगी को लेटा कर पेट या पेडू पर से कपड़े हटा देते है। उसके बाद मिट्टी को पेडू पर इस तरह पलटते है कि पट्टी नाभी से दो तीन इंच ऊपर तक ढक जाये, इसके ऊपर कम्बल का टुकड़ा ढक देते है। रोगी को ठंड लगने पर उसे कम्बल ओढ़ाया जाता है, समय पूरा होने पर पेट से मिट्टी हटा कर पेट को कपड़े से पोछ देते है।

मिट्टी की पट्टी के पश्चात् एनिमा देने पर आँतों में चिपका मल ढीला होकर शौच के साथ बाहर आ जाता है।

**अवधिः–**

20–30 मिनट

**क्रिया प्रतिक्रियाः–**

जिस स्थान पर मिट्टी की पट्टी रखी जाती है वहाँ के मांसपेशियों एवं रक्त नलिकाओं में संकुचन पैदा होने लगता है, जिससे रक्त का संचार अन्दर के अंगो के तरफ बड़ जाता है, विजातीय द्रव्य अपना स्थान छोड़ कर वे उत्सर्जी अंगो की ओर चला जाता है, इससे पाचन संस्थान स्वस्थ हो जाता है, मल ढीला होकर स्थान छोड़ देता है और वह आसानी से मल निष्कासन मार्ग से आसानी से बाहर निकल जाता है।

**उपयोगिताः–**

बवासीर, तीव्र बुखार, कब्ज, टायफायड, जीर्ण रोग, आँख लीवर की सूजन, वायु दोष, मुहाँसे, किड़ा काटने पर, पीलिया, अपच, दस्त, मधुमेह, आँतों में घाव, सफेद दाग, पेशाब में जलन, अल्सर, त्वचा रोग, घमोरी, चर्म रोग, एक्जिमा।

**निषेधः–**

साइटिका, दमे की उग्र अवस्था, ठंडक, कप्कपी, बुखार।

**सावधानियाँः–**

1. मिट्टी चिकनी हो, चुभने वाली न हो।
2. खाली पेट या भोजन के 3 घण्टे बाद मिट्टी की पट्टी दी जा सकती है।
3. रोगी को ठंड लगने पर कम्बल ओढ़ा दे ।
4. जले कटे या बहने वाला घाव हो तो मिट्टी को सूती कपड़े पर रखे ।

**8.4.3 सर्वांग मिट्टी लेपः–**

**परिचयः–**प्राकृतिक चिकित्सा में मिट्टी का महत्वपूर्ण स्थान है, मिट्टी में अवशोषण की विलक्षण शक्ति होती है, इससे ठण्डक पहुँचाने का कार्य किया जाता है।

**साधनः–**शुद्व मिट्टी, पानी, टब, बाल्टी।

**सिद्वांतः–**यह चिकित्सा पूरे शरीर को लगातार ठण्डक पहुँचाती है जिससे संकुचन द्वारा रक्त में स्थित विकार उत्सर्जी अंगो में पहुँच जाती है, यह त्वचा की ऊपरी सतह पर स्थित विजातिय द्रव्यों को अवशोषित कर लेती है।

**विधिः–** किसी साफ जगह से 2–3 फिट गहराई से ली गई मिट्टी को धुप में सुखाकर छान लेते है, उपयोग करने से पहले 8–10 घण्टे तक मिट्टी को भीगो देते है। फिर उसको अच्छी तरह मिलाकर पेस्ट या लेप बनाते है। किसी खुली जगह में तथा सर्दियों में धुप में रोगी को स्टूल में बिठा कर कान को रूई से बंद कर देते है, रोगी के कपड़े ऊतरवा कर आँख को बचाते हुए पैर से सिर तक मिट्टी की एक परत चढाते या लगाते है जब मिट्टी सुखने लगे तो दूसरा आवश्यकतानुसार तीसरा परत चढाते जाते है। लेप की मोटाई रोगी की शारीरिक क्षमता के अनुसार ही रखी जाती है, कमजोर व दुर्बल रोगी के लिए एक ही परत ही काफी है, कुछ समय बाद मिट्टी सुखकर अपने आप ही गिरने लग जाती है ऐसे में आसनी से उतारा जा सकता है, मुलायम कपड़े या हल्के हाथ से रगड़ कर रोगी को ठण्डे पानी से नहाने की सलाह दी जाती है, स्नान के द्वारा मिट्टी शरीर से पूरी तरह साफ हो जानी चाहिए।

**अवधिः–**

45–60 मिनट सामान्य व्यक्ति

30–45 मिनट कमजोर व्यक्ति

**क्रिया प्रतिक्रियाः–**मिट्टी, मृत त्वचा को हटाकर त्वचा को स्वच्छ या साफ बनाती है इससे रोम कूप खुल जाते है और स्वेत ग्रंथियाँ सक्रिय होती है, यह अपनी शीतलता के कारण

रक्त संचार को तीव्र कर देती है, तथा अपने अवशोषक गुणों के कारण दूषित तत्वों को सोख लेती है।

**उपयोगिताः–**चर्म रोग, घमोरी, सफेद दाग, उच्च रक्त चाप, प्रदाह या जलन, एकजिमा, सोराईसिस।

**निषेधः–**अत्यधिक दुर्बल, कमजोर, ठण्ड लगी हो, तीव्र हृदय रोग, घाव, त्वचा के जले कटे, एनिमिया।

**सावधानियाँः–**

1. सर्दियों में नहीं उपयोग करते।
2. मिट्टी में चुभने वाली चीजे नहीं होनी चाहिए ।
3. आँखों को बचा कर लेप लगाये।
4. सर्दियों में धुप में ही लेप लगाये।
5. खाली पेट या भोजन के 3–4 घण्टे बाद।
6. गर्मियो में शाम को भी दी जा सकती है।

## 8.5 हृदय रोगो की जल चिकित्सा पद्धतियाँ

1. एनिमा
2. मेहन स्नान
3. गरम–ठंडा कटि स्नान
4. पैरों का गरम नहान
5. भाप नहान
6. सारे बदन की गीली पट्टी
7. पेट की गरम ठंडी सेक

**1. एनिमा**

यदि स्वभाविक रूप से मल का निष्कासन न हो रहा हो तो आँतों में चिपके हुए मल को निकालने के लिए एनिमा का उपयोग किया जाता है। यह एक निरापद उपचार है एवं यह कभी भी नुकसान नहीं करता है।

**साधन :** एनिमा पात्र, रबड़ की नली 4–5 एफ नोजल, एक कैथेटर–12 नम्बर, एक तखत, ऑयल या वैसलिन, कीटनाशक घोल, गर्म–ठण्डा पानी।

**एनिमा के प्रकार –**

1. साधारण ऐनिमा – यह एक से ड़ेढ़ लीटर गुनगुने पानी का होता है। (98.6 डिग्री फेरनहाइट से 99 डिग्री फेरनहाइट)

2. टानिक एनिमा – 250 से 350 मि.ली. ठण्डे पानी का होता है। 80 डिग्री फेरनहाइट शरीर तापमान से थोड़ा कम हो ठण्डा पानी ये साधारणतया बड़ी आँतो की कमजोरी को शक्ति प्रदान करने के लिए दिया जाता है।

3. गर्म पानी का एनिमा – ये कमजोर व बुजुर्ग लोगों को दिया जाता है। पानी की मात्रा 500 मि.ली., तापमान गुनगुने से थोड़ा ज्यादा। (100 डिग्री फेरनहाइट से 104 डिग्री फेरनहाइट)

4. आँतों में पानी रोकने वाला एनिमा – यह 100 से 150 मि.ली. पानी का होता है जो रात भर रोक के रखते है, इससे सुबह शौच करने में आसानी होती है।

5. मिश्रित ऐनिमा – यह पानी में जड़ी–बूटी, शहद नींबू आदि मिलाकर साधारण एनिमा की तरह दिया जाता है। जैसे–

- सूखे मल में तेल व पानी का एनिमा।
- पेट में कीड़े पड़ने पर नीम की पत्ती का एनिमा।
- वायु दोष में लहसुन पानी का एनिमा।
- कोलाईटिस में मट्ठा का एनिमा।

| **आयु** | **मात्रा** |
|---|---|
| 6 माह से 1 वर्ष | 100 –200 मि.ली. |
| 1 वर्ष से 6 वर्ष | 200 – 500 मि.ली. |
| 6 से 12 वर्ष | 500 मि.ली. से 1 लीटर |
| 12 से 25 वर्ष | 1 लीटर से 1.25 लीटर |
| 25 वर्ष से अधिक | 1.25 लीटर से 1.5 लीटर |

**सिद्धांत :**इस चिकित्सा द्वारा आँतों को बिना किसी उत्तेजना व जलन के मलरहित किया जाता है। मिश्रित एनिमा में ये लाग नहीं होता।

**विधि :**–एनिमा चार प्रकार से दिया जाता है :

1. पीठ के बल लेटाकर।
2. पेट के बल लेटाकर।
3. दाहिनी तरफ लेटाकर।
4. उकडू बैठाकर।

प्रायः कमर के बल लेटाकर ही एनिमा दिया जाता है तखत को एक तरफ से उँचा कर लेते है और ऊँचाई के तरफ पैर रखते है। 3–4 फिट ऊँचाई पर एनिमा पॉट रखकर आवश्यकतानुसार पानी भर देते हैं। रोगी के पैर घुटने से मुडवा देते हैं, कैथेटर में वेसलीन या ऑयल लगा देते हैं और नोजन में लगा देते हैं। थोड़ा सा पानी कैथेटर से निकाल कर कैथेटर को गुदा द्वार में 3 से 4 इंच प्रवेश कराते हैं। रोगी को लम्बे गहरे श्वास लेने को कहते है तथा रोगी के पेट पर हल्के हाथ से घड़ी की विपरीत दिशा में मालिश करते है, पात्र में जब थोड़ा सा पानी रह जाये तो पानी बंद कर देते हैं। प्रायः 3 मिनट में पूरा पानी अंदर चला जाता है। अंत में रोगी को बाँई करवट दो–दो मिनट, दाँई करवट तथा एक मिनट सीधा लेटाया जाता है।

अब रोगी को 5 से 10 मिनट तक सामर्थ्यानुसार पानी को अंदर रोककर शौच के लिए भेजा जाता है, यदि शौच न हो तो टहलने का निर्देश देते हैं और शौच करते समय जोर न देने का निर्देश देते हैं।

**क्रिया–प्रतिक्रिया :**

गुनगुने पानी से आँतो में फैलाव होता है, जिससे आँतों में चिपका हुआ मल स्थान छोड़ देता है। एनिमा द्वारा वह पानी में घुलकर शौच द्वारा आसानी से बाहर आ जाता है। ठण्डे पानी के एनिमा से आँते सजग बनती है और यह बड़ी आँतों को मजबूत करता है।

**उपयोगिता :**

कब्ज, दमा, सिर दर्द, त्वचा रोग, वायु विकार, मधुमेह
पीलिया, गठिया, बड़ी आँत में प्रदाह या जलन, उपवास,
फलाहार।

**निषेध :**

एनिमिया, रक्त स्त्राव कोलाइटिस, कमजोरी, खूनी बवासीर।

**सावधानियाँ:**

1. पानी अत्यधिक गर्म नहीं होना चाहिए। नहीं तो म्यूकस मेम्ब्रेन कमजोर हो जाती है।
2. पानी अत्यधिक ठण्डा नहीं होना चाहिए। नहीं तो आँतों में ऐंठन होने लगती है।
3. पात्र अच्छी तरह साफ होना चाहिए।
4. किसी भी अवस्था में बिठाकर एनिमा नहीं देना चाहिए।
5. खूनी बावासीर या अल्सराटिस कोलाईटिस में यदि रक्त स्त्राव न हो रहा हो तो एनिमा दे सकते हैं।
6. पानी की मात्रा सावधानीपूर्वक धीरे–धीरे देनी चाहिए।
7. हर रोंगी का कैथेटर अलग–अलग होना चाहिए।
8. एनिमा के दो घण्टे तक रोगी को कुछ खीलाना पिलाना नहीं चाहिए।
9. कमोड की व्यवस्था रखनी चाहिए।
10. लुजमोशन में एनिमा नहीं देते हैं।

**2.मेहन स्नान**

**परिचय :**मेहन शब्द का अर्थ होता है जननेद्रिय अतः हम इसे जननेंद्रिया मेहन स्नान भी कह सकते है। अत्यधिक कमजोर व्यक्ति जो कटि स्नान करने में असमर्थ हो उनके नाड़ी मण्डल के स्वास्थ्य को ठीक करने के लिये यह चिकित्सा दी जाती है।

**साधन :** कटि स्नान का टब, छोटा मुलायम कपड़ा, अर्ध चन्द्राकर तिपाई, बाल्टी, मग, घड़ी, ठण्डा पानी।

**सिद्धांत :**यह चिकित्सा नाड़ी मण्डल के अंतिम छोर को ठण्डक पहुँचाकर बल प्रदान करती है।

**विधि :** अर्द्धचन्द्राकार तिपाई को टब में रखकर पानी भरते है। पानी का स्तर इतना रहे कि वो तिपाई के ठीक नीचे तक आ जाए, पानी पिपाई के ऊपर नहीं आना चाहिए। रोगी के कपड़े उतरवाकर टब में बिठाते हैं, पैर टब से बाहर रखते हैं। अब मुलायम कपड़े को पानी से भिगो कर जननेन्द्रिय के बाह्य भाग व अग्र भाग को हल्के हाथ से पोंछते हैं। पुरूषों में (प्रोप्यूज), महिलाओं में (लेबियपा माडेंरा) इन दो भाग को पोछते हैं। यदि मुश्किल है तो पैरीनियम के भाग को पोछते हैं।

**क्रिया–प्रतिक्रिया :**पुरूष हो या स्त्री नाड़ी मण्डल का अंतिम छोर जननेन्द्रियों में स्थित होने से ठण्डे पानी के द्वारा शरीर की उत्तेजना शांत होती है और नाड़ी मण्डल सशक्त होता है, जीवनी शक्ति में वृद्धि होती है और जननांगों का तापमान कम होता है जो लोग कटि स्नान लेने में असमर्थ हों तो उसे इस स्नान के द्वारा लाभ पहुँचाया जा सकता है।

**उपयोगिता :**इस चिकित्सा से नाड़ी मण्डल में उत्तेजना आती है इसलिए यह चिकित्सा नाड़ी मण्डल से संबंधी रोगों के लिए अति उपयोगी है। जैसे :–

चक्कर आना थकान होना श्वास फूलना हृदय रोग

माइग्रेन स्नायु दौर्बल्यता रोग प्रतिरोधक क्षमता की कमी।

**निषेध :**

जीर्ण रोगों उपवास ठण्डी, बुखार नई सूजन।

**सावधानियाँ :**

1. शरीर का शेष सारा भाग सूखा रहना चाहिये।
2. चिकित्सा के एक घण्टे तक नहाना या खाना नहीं चाहिये।
3. चिकित्सा का समय धीरे–धीरे बढ़ाना चाहिये।
4. रोगी को उत्तेजक आहार नहीं देना चाहिये।
5. चिकित्सा के बाद टहलाकर या कम्बल ओढ़कर गर्मी लाना चाहिये।
6. जो व्यक्ति कटि स्नान न ले सकें उन्हे यह स्नान दिया जाता है।

**3. गरम–ठण्डा कटि स्नान**

**परिचय :**यह पेट की गरम ठण्डी सेंक का वृहद रूप है, कटि प्रदेश में स्थित अंगों को स्वस्थ एवं सबल बनाने के लिए जल चिकित्सा मे स्थानीय चिकित्सा के रूप में यह उपचार दिया जाता है।

**साधन :**2 हिपबाथ टब, 1 स्टूल छोटा, बाल्टी, मग, गरम पानी और ठण्डा पानी, छोटा तौलिया।

**पानी का तापमान :**

| | **गरम पानी** | **ठण्डा पानी** |
|---|---|---|
| गर्मियों में | 102 से 106 डिग्री फेरनहाइट | 45 से 55 डिग्री फेरनहाइट |
| सर्दियों में | 106 से 110 डिग्री फेरनहाइट | 55 से 65 डिग्री फेरनहाइट |

**सिद्धांत :**

यह चिकित्सा लगातार रक्त को कटि प्रदेश एवं अन्य अंगों में ले जाकर पम्प की भाँति कार्य करती है।

**विधि :**

कटि स्नान के दो टब लेते हैं। एक में गर्म पानी और एक में ठण्डा पानी की मात्रा इतनी रखते हैं कि टब में बैठने के बाद नाभि के ऊपर पानी 1 से 1.5 ईंच ऊपर आ जाए। रोगी के कपड़ें उतार कर मौसम के अनुसार पानी पिलाकर रोगी को पहले गर्म पानी के टब मे तीन मिनट तक बिठाते हैं। रोगी का पैर स्टूल पर रखते हैं ताकि गीले न हों।

रोगी के सिर में ठण्डें पानी का भीगा तौलिया रखते है उसके बाद एक मिनट तक ठण्डे पानी के टब में बिठा देते हैं। यह क्रिया तीन बार करते हैं। अंत में तीन मिनट ठण्डे पानी में बिठाकर उपचार करते हैं।

अगर रोगी को ठंड लग रही हो तो अंतिम तीन मिनट को आवश्यकतानुसार कम किया जाता है। इसके बाद रोगी को ठंडे पानी से नहलाकर शीघ्रता से शरीर पोंछकर उसे कपड़ें पहना देते है।

**अवधि :**

| | **गर्म पानी** | **ठण्डा पानी** |
|---|---|---|
| प्रथम बार | 3 मिनट | 1 मिनट |
| द्वितीय बार | 3 मिनट | 1 मिनट |

| | | |
|---|---|---|
| तृतीय बार | 3 मिनट | 1 मिनट |
| चतुर्थ बार | 3 मिनट | 3 मिनट |
| **कुल** | **12 मिनट** | **6 मिनट** |

**कुल योग 18 मिनट**

**क्रिया–प्रतिक्रिया :**गर्म पानी के प्रभाव से कटि प्रदेश में रक्त कोशिकाओं में फैलाव होता है, जिससे पैरों व धड़ की तरफ से रक्त कटि प्रदेश में तेजी से आता है और ठण्डे पानी में बैठानें से रक्त कोशिकाओं में संकुचन होता है जिससे पैरों में रक्त पुनः धड़ की तरफ वापस चला जाता है।

उपरोक्त क्रियाओं में रक्त पम्प की भांति कार्य करता है और कटि प्रदेश के अंगों में आरामदायक स्थिति उत्पन होती है। अंगों को पोषण मिलता है और उत्सर्जी पदार्थ उत्सर्जी अंगों द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है। बार–बार यह चिकित्सा देने से कटि प्रदेश में स्थित अंग स्वस्थ, शक्तिवान, सबल एवं सजीव हो जाते हैं।

**उपयोगिता :**कब्ज अजीर्ण भूख न लगना मोटापा मधुमेह साइटिका मूत्र रोग उच्च रक्त चाप स्लीप डिक्स लो बैक पेन स्त्री रोंग पीलिया

पेट संबंधी रोग कोलाइटिस B.P.H., I.B.S.

**निषेध :**

तीव्र उच्च रक्त चाप तीव्र हृदय रोग अम्ल पित्त घूटनों का दर्दसूजन साइटिका के तीव्र दर्द में अंतिम तीन मिनट ठण्डा पानी नहीं देते हैं।

**सावधानियाँ :**

1. रोगी को पहले पानी अवश्य पिलायें।
2. सिर पर ठण्डे पानी का तौलिया रखें।
3. भोजन के 3 से 4 घण्टे बार करें।
3. तेज हवा का झोंका नहीं लगना चाहिए।
4. मासिक धर्म में नहीं लेना चाहिए।
5. फल व दूध खाने पर एक डेढ़ घण्टे बाद लेना चाहिए।
6. आधे घण्टे के बाद तक कुछ न खायें।

**4.पैर का गरम नहान**

**परिचय :**कमर से ऊपर के अंगों के रोगों के लिए यह उपचार दिया जाता है। अगर भाप नहान की सुविधा उपलब्ध न हो तो पैर की गरम नहान से उसकी पूर्ति की जा सकती है।

**साधन :** एक पतली सूती चादर, एक कम्बल, एक बड़ी बाल्टी, एक बाल्टी, एक तौलिया, एक मग, कुर्सी या स्टूल, ठण्डा पानी और गरम पानी, रेक्सिन का कवर।

**पानी का तापमान :**गर्मियों में 104 से 115 डिग्री फेरनहाइट

सर्दियों में 115 से 120 डिग्री फेरनहाइट

**सिद्धांत :**यह चिकित्सा कमर के ऊपर के अंगों में रक्त के दबाव को कम करने तथा रक्त के प्रवाह को पैरों की ओर ले जाने के लिए दी जाती है।

**विधि :** यदि एनिमा की आवश्यकता है, तो पहले एनिमा दी जाती है फिर कम्बल को कुर्सी पर इस प्रकार बिछातें है कि मरीज को कुर्सी पर बैठाकर चारों तरफ से लपेटा जा सके कम्बल के ऊपर सूती चादर बिछाते हैं। मौसम के अनुसार रोगी को पानी पिलाकर कपड़े उतारवाकर कुर्सी पर बिठाते हैं। अब बड़ी बाल्टी में सह सकनें लायक गरम पानी भरकर रोगी के पैर बाल्टी में रखवाते हैं। पानी इतना रहे कि मरीज के टखने पानी में रहें। रोगी

के शरीर के पहले चादर से फिर कम्बल से इस प्रकार लपेटते हैं कि बाल्टी भी कम्बल के अंदर आ जाये अंत में कम्बल को रेक्सिन से ढक देते हैं। सिर पर गीला ठण्डे पानी से भीगी तौलिया रखते हैं। गरम पानी का तापमान बनाये रखने के लिए थोड़ी थोड़ी देर में गर्म पानी डालते रहते हैं बाल्टी में, सिर पर आवश्यकतानुसार ठण्डा पानी डालते रहें और प्यास लगने पर ठण्डा पानी पिलाया जाता है। चिकित्सा की अवधि पूरी होने पर रोगी को शीघ्रता से ठण्डे पानी से नहला दें या रोगी को गीले तौलिये से पोछ दें।

**अवधि :**

सामान्यतः – 25 मिनट
गर्मियों में – 15 से 20 मिनट
सर्दियों में – 25 से 30 मिनट

**क्रिया–प्रतिक्रिया :**गर्म पानी में पैर रखने से पैर की रक्त कौशिकाओं में फैलाव होता है जिससे रक्त का प्रवाह पैरों की तरफ बढ़ जाता है और कमर के ऊपर के हिस्से में रक्त का दबाव कम हो जाता है। विजातीय द्रव्य रक्त के साथ घुलकर अपना स्थान छोड़ देते हैं।

ठण्डें पानी से नहलाने पर पूरे शरीर का रक्त संचार तीव्र हो जाता है जिससे विजातीय द्रव्य उत्सर्जीय अंगों में पहुँचकर शरीर से बाहर हो जाता हैं।

**उपयोगिता :**

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| सर्दी | जुकाम | गठिया | घुटनों का दर्द | कंधे का दर्द |
| खाँसी | कान का दर्द | | मधुमेह | साइनोसाईटिस |
| दमा | ब्रोन्काईटिस | | उच्च रक्त चाप | सिर दर्द |
| स्त्री रोग | निम्न रक्त चाप | सर्वाइकल | स्पॉनडिलाईटिस | निम्न रक्त चाप |

**निषेध :**हाईपर एसिडिटि , नाड़ी दौब्लय, इर्न्टनल हेमरज, लुज मोषन, चोट या घाव, लु लगना, त्वचा रोग।

**सावधानियाँ :**

1. तेज हवा का झोंका नहीं लगना चाहिए।
2. अत्यधिक निम्न रक्त चाप में नहीं देना चाहिए।
3. प्यास लगने पर पानी अवश्य पिलाते रहें सिर को हमेशा ठण्डे पानी से गीला बनायें रखें।

**5. भाप नहान :**

**परिचय :**त्वचा पर स्थित स्वेद ग्रंथियों को सक्रिय बनाकर विजातीय द्रव्यों को पसीने के रूप में बाहर निकालने के लिए यह उपचार दिया जाता है।

**भाप नहान के दो प्रकार :**

1. स्थानीय भाप
2. पूरे शरीर का भाप नहान

**साधन :** भाप नहान का बक्सा, केतली, 2–3 मीटर लम्बा ट्यूब, गैस का चुल्हा, छोटा तौलिया, सिर पर रखने के लिए बड़ा तौलिया, गिलास, मग, सादा पानी, कटि स्नान टब।

**सिद्धांत :**त्वचा हमारे शरीर का तापमान एक सा बनाये रखने में सहायक होती है। भाप नहान में जब शरीर लगाातार भाप के सम्पर्क में आता है तो त्वचा की ऊपरी भाग का तापमान बढ़ने लगता है। उसे सामान्य बनाये रखने के लिए त्वचा में स्थित श्वेत ग्रंथियाँ सक्रिय होकर रोम छिद्रों से पसीना निकालने लगती हैं।

**विधि :** सबसे पहले केतली में पानी रख देते हैं। 700 से 800 ग्राम पानी सामान्य व्यक्ति के लिए आवश्यक है। टब का एक सिरा केतली में व दूसरा सिरा स्टिम बाक्स में रख देते हैं। जब केबिनेट भाप से गरम हो जाये तब रोगी को मौसम के अनुसार पानी पिलाकर उपचार देते हैं। कपड़े निकालकर ठण्डे पानी या गुनगुना पानी पिलाते हैं। उसके बाद बाक्स में ऊँचाई के अनुसार बिठा देते हैं। बाक्स बंद करके रोगी के सिर पर भीगा तौलिया रख देते हैं। बड़ी तौलिया गर्दन के चारों ओर इस तरह लपेट देते है कि भाप बाहर न निकल सकें। रोगी को हल्के हाथों से बाक्स के अन्द ही रगड़नें या मालिश करने की सलाह देते हैं जिससे की मृत त्वचा, मैल आसानी से निकल जाये, आवश्यकतानुसार सिर में थोड़ी –थोड़ी देर में पानी डालते हैं। अवधि पूरी होने पर रोगी को कैबिनेट से बाहर निकाल कर 2–5 मिनट तक ठण्डा कटि स्नान देते है और सिर से ठण्डे पानी से नहलाकर शरीर पोंछकर कपड़े पहनाते हैं।

**अवधि :**

गर्मियों में 10 से 15 मिनट

सर्दियों में 15 से 20 मिनट

**क्रिया–प्रतिक्रिया :**भाप की गर्मी से त्वचा की रक्त कोशिकाओं में फैलाव होगा, रक्त प्रवाह या संचार आंतिरक अंगो से सतह की ओर तेज हो जाता है। श्वेत ग्रंथियाँ सक्रिय हो जाती हैं और रोमकूप खुल जाते हैं। इस प्रकार शरीर से विजातीय पदार्थ पसीने के रूप में बाहर निकल जाते हैं।

ठण्डे पानी से नहाने पर रक्त केशिकाओं में संकुचन होता है, इस प्रकार फैलाव और संकुचन से सारे शरीर में तीव्रता आ जाती है। रक्त केशिकाओं में अवरोध हो जाता है। उपापचय क्रिया ठीक ढंग से होती है। विजातीय द्रव्य उर्त्सजीय अंगों में पहुँचकर शरीर से बाहर निकल जाते हैं।

**नोट–** भाप नहान के समय पल्स रेट बढ़कर 140 से 150 तक पहुँच जाती है।

**उपयोगिता :**

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| मोटापा | निम्न रक्त चाप | चर्मरोग | जोड़ों का दर्द | जकड़न |
| एलर्जी | अपच | खाँसी | भूख न लगना | कफ |
| जुकाम | साइनोसाईटिस | अस्थमा | टान्सिलाईटिस | गठिया |

**निषेध :**

| | | | |
|---|---|---|---|
| उच्च रक्त चाप | खुली घाव | ह्रदय रोग | जला कटा हो |
| टी.बी. | आंतरिक रक्त स्त्राव | मिर्गी | हिस्ट्रिया (दौरा) |
| अधिक बुढ़े व्यक्ति | अत्यधिक कमजोर | | |

**सावधानियाँ :**

1. उपवास में नहीं देना चाहिए।
2. खाली पेट या खाने के तीन घण्टे बाद।
3. भाप नहान के पहले एनिमा देना है।
4. प्यास लगने पर पानी अवश्य पिलाते रहे।
5. सिर को हमेशा ठंडे पानी से गीला करें।
6. रोगी को घबराहट महसूस हो तो भाप नहान बंद कर रोगी को ठण्डे पानी से नहलायें।
7. यदि त्वचा पर कटी घाव है तो घाव पर ठण्डे पानी की पट्टी बाँधकर भाप नहान दिया जा सकता है।

8. यदि रक्त चाप बढ़ा हुआ है तो छाती पर ठण्डे पानी की पट्टी को बाँधकर भाप नहान दिया जा सकता है।

9. भाप नहान के बाद ठण्डा कटि स्नान 3 से 5 मिनट तक अवश्य दें क्योंकि कटि प्रदेश का तापमान शरीर में हमेशा सामान्य रहता है।

**6. सारे बदन की गीली पट्टी**

**परिचय** :मरीज यदि भाप नहान ले पाने की स्थिति में न हों तो यह उपचार उसे देकर लाभ प्राप्त किया जा सकता है अतः इसे भाप नहान का प्रतिरूप भी कह सकते हैं।

**साधन** : एक तखत 6.5 फिट लम्बा, 3 कम्बल 8 फिट लम्बे – 5 फिट चौड़े, सूती चादर – 6.5 एवं 4.5 फिट, एक सूती कपड़े की पट्टी 0.5 मीटर चौड़ी और 1.5 मीटर लम्बी, एक बड़ी तौलिया, एक छोटी तौलिया, एक जाली का टुकड़ा, दो ईट, एक गर्म पानी की थैली और ठण्डा पानी।

**सिद्धांत** :शरीर को बिना अधिक गर्मी पहुंचाए लगातार आधे घण्टे पसीने निकालने तक यह चिकित्सा दी जाती है।

**विधि** : हवादार स्थान पर तखत लगाते हैं, सर्दियों में यह उपचार धूप में भी दिया जा सकता है। तखत को पैरों की तरफ से ईंट लगाकर ऊचाँ कर दें। सिर की परफ रेक्सिन का तकिया रखते हैं। तकिये को ढ़कते हुए दो कम्बल बिछाते हैं। तखत के तीनों तरफ कम्बल लटकने देते हैं अब एक सुती चादर ठण्डे पानी में भिगोकर अच्छी तरह निचोड़कर कम्बल के ऊपर बिछाते हैं इसी तरह छाती की पट्टी भी नियत स्थान पर बिछा देते हैं, रोगी को मौसम के अनुसार पानी पिला कर, कपड़े उतरवाकर तखत पर पीठ के बल लेटाते हैं। रोगी के दोनों हाथ ऊपर कर पीठ एंव सिने पर छाती पट्टी लपेट देते हैं। अब हाथों को नीचे करवाकर चादर का दाहिना किनारा लेते हुए चादर को बायीं ओर लपेट देते है, इसी प्रकार पैरों को कसकर लपेट देते हैं।

अब चादर का ऊपरी बायां किनारा लेकर दाहिनी तरफ कसते हैं, ध्यान रहे कि रोगी गर्दन से लेकर पैरो तक अच्छी तरह ढक जाए। फिर क्रमशः पहला व दूसरा कम्बल लेकर विपरीत दिशाओं में ढकतें हुए अच्छी तरह लपेट देते हैं। यथा सम्भव चादर एवं कम्बल ढ़ीला नहीं छोड़ते। इसके बाद तीसरा कम्बल रोगी को ओढ़ा देते हैं। रोगी के गर्दन में बड़ा तौलिया इस प्रकार लपेटते हैं कि रोगी को हवा न लगे, सिर को पानी से गिला करें, छोटे तौलिये को पानी से भिगो करके सिर पर रख देते हैं। यदि रोगी को ठंड लग रही हो तब उसके पैरों के तरफ गरम पानी की थैली रखकर कम्बल से ढ़क देते हैं। समय–समय पर सिर को पानी से गिला करते रहते हैं। चिकित्सा की अवधि पूरी होने पर रोगी को नहला कर अथवा गीले कपड़े से शरीर पोछकर शीघ्रता से कपड़े पहना देते हैं।

**अवधि** :

| | | |
|---|---|---|
| 45 मिनट | – | सामान्यतः |
| 45 से 60 मिनट | – | आवश्यकतानुसार |
| 20 से 30 मिनट | – | क्रानिक फिवर। |

**क्रिया–प्रतिक्रिया** :

इसमें तीन तरह के प्रभाव देखने को मिलते हैः–

i. शीतकारी (Cooling)

चादर लपेटने के तुरन्त बाद 5 से 10 मिनट तक शीतकारी प्रभाव होता है इसमें रोगी को ठंड महसूस होती है। रक्त कोशिकाओं में संकुचन होने के कारण रक्त संचार आंतरिक भागों में होने लगता है।

ii. समकारी (Netural)

लगभग 10 मिनट के बाद रोगी सामान्य सा महसूस करता है, अब उसे न ठंड लगती है न गर्मी इस समय रक्त का संचार सामान्य हो जाता है। यह स्थिति 10 से 20 मिनट तक बनी रहती है।

iii. उष्णकारी (Warm)

कम्बल से ढके रहने के कारण 15 से 20 मिनट के बाद रोगी को गर्मी महसूस होती है इस समय रक्त संचार शरीर के आंतरिक अंगों से त्वचा या सतह की ओर होने लगता है, रोम छिद्र खुल जाते हैं और पसीना निकलने लगता है। रक्त संचार के तीव्र होने से कोशिकाओं को पोषण मिलता है। विजातीय द्रव्य उत्सर्जी अंगों में पहुंच जाता है या पसीने के द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है।

**उपयोगिता :**

| | | |
|---|---|---|
| नाड़ी संबंधी रोग | अवसाद | उच्च रक्त चाप |
| अनिद्रा | | |
| अम्ल–पित्त | चर्म रोग | निम्न रक्त चाप |
| मोटापा | | |
| ज्वर कम करने में | स्नायु दौबर्ल्य | स्नायु संस्थान के लिए। |

**निषेध :**

| | | |
|---|---|---|
| बहुमूत्र | तीव्र हृदय रोग | लूज मोशन |
| कमजोरी | | |
| त्वचा पर घाव | उल्टी मिचली | ठंड लगने पर। |
| आँव–दस्त | | |

**सावधानियाँ :**

1. खाली पेट या भोजन के तीन घण्टे बाद।
2. ठण्ड लग रही हो तो गरम थैली पैरों की तरफ रखना चाहिये।
3. रोगी को नींद आ जाए तो उठने पर ही पट्टी निकालें।
4. यदि किसी एक अंग में सूजन है तो पहले उस स्थान पर छाती की पट्टी की तरह पट्टी बाँध दें।
5. चादर को प्रयोग करने से पहले अच्छी तरह किसी कीटाणुनाशक घोल से साफ करें या सर्फ से अच्छी तरह साफ करके प्रयोग करें।
6. मक्खियाँ लग रही हो तो जाली से मुँह को ढाक दें।
7. यदि रोगी को उलझन हो तो हाथों को चादर से बाहर निकाल दें।

**7. पेट की गरम–ठण्डी सेंक**

**परिचय :**भोजन का पाचन, अवशोषण और अधपचे भोजन का निष्कासन यदि सही ढंग से नहीं हो रहा हो तो उससे उत्पन्न विकारों को दूर करने के लिए इस उपचार की आवश्यकता होती है। किसी भी अंग के मरम्मत के लिए महत्वपूर्ण उपचार है।

**साधन :** हॉट वाटर बैग, घड़ी, छोटा तौलिया, गरम थैली, ठण्डा व गरम पानी।

**पानी का तापमान :**

गरम पानी – 108 से 110 डिग्री फेरनहाइट
ठण्डा पानी – 65 से 70 डिग्री फेरनहाइट

**सिद्धांत** :यह चिकित्सा रक्त को बार–बार क्रमशः सतह पर एवं आंतरिक अंगों तक ले जाकर पम्प की भाँति कार्य करती है।

**विधि** : रोगी को पीठ के बल आराम की स्थिति में लेटाकर पेट के कपड़े हटा देते हैं। सबसे पहले गरम पानी की थैली से तीन मिनट तक सेंकते हैं। इसके बाद ठण्डे पानी की एक भीगी तौलिया एक मिनट तक रखते हैं। यही क्रम तीन बार करते हैं और अंत में चौथी बार तीन मिनट तक ही ठण्डे पानी से भिगा तौलिया रखकर उपचार की प्रक्रिया पूरा करते हैं। हर बार ठण्डे पानी से भीगा हुआ तौलिया रखने से पहले तौलिया निचोड़ लेते हैं।

| **अवधि** :गरम पानी की थैली | ठण्डे पानी का तौलिया |
|---|---|
| 3 मिनट | 1 मिनट |
| 3 मिनट | 1 मिनट |
| 3 मिनट | 1 मिनट |
| 3 मिनट | 3 मिनट |

कुल योग – 18 मिनट। (गरम पानी की थैली की सेंक 12 मिनट और ठण्डे पानी का तौलियां की सेंक 6 मिनट)

**क्रिया–प्रतिक्रिया** :जब हम गरम सेंक देते हैं, तब उस स्थान की रक्त केशिकाऐं फैल जाती हैं। ठण्डे पानी से रक्त केशिकाओं में संकुचन होता है। जब रक्त केशिकाऐं फैलती हैं तो वहां रक्त संचार बढ़ जाता है। जब संकुचन होता है तो विजातीय द्रव्य को अपने साथ लेकर उस स्थान से हट जाती है या अन्दर की ओर चला जाता है। इस प्रकार विजातीय द्रव्य रक्त में घुलकर उत्सर्जी अंगों तक पहुंच जाता है।

**उपयोगिता** :

पेट दर्द वायु विकार कब्ज पेशाब रोग यकृत रोग संधिवात श्वेत प्रदर अस्थमा मधुमेह पीलिया मासिक दर्द बी.पी.एच.

**निषेध** :आंतरिक रक्त स्त्राव में नहीं देते, अम्ल पित्त, अल्सर, जला व कटा घाव, पेट में घाव।

**सावधानियाँ** :

1. पानी का तापमान सही हो।
2. रोगी को तेज हवा का झोंका नहीं लगना चाहिये।
3. खाली पेट या खाने के तीन से चार घण्टे बाद ही उपचार दें।
4. उपचार के बाद में एनिमा देते है, पहलें नहीं।

## 8.6 सारांश :–

हमारी अपाकृतिक असंतुलित, अनियमित, तनावमय, जीवन शैली हृदय रोग का प्रमुख कारण होती हैं। जैसे गलत खान–पान, मादक दुर्व्यसनों का सेवन, भोजन, पानी और हवा के सेवन के नियमों का पालन न करना, बिल्कुल परिश्रम न करना अथवा क्षमता से अधिक शारीरिक अथवा मानसिक श्रम करना।

जल एवं मृदा चिकित्सा द्वारा हृदय रोग का प्रभावशाली उपचार किया जा सकता है। प्रत्येक उपचार हृदय रोग से मुक्ति दिलाने में सक्षम होता है। इस इकाई में आप हृदय रोग की प्राकृतिक उपचार पद्धति जिसमें जल एवं मृदा के ज्ञान से अवगत हुए।

1. ''कोई भी औषधि उतना कार्य नहीं कर पाती जितना केवल शीतल जल का स्पर्श करता है।'' किसने कहा है–

अ. डॉ. फिनले ने ब. डॉ. कलाम स. डॉ. फेलाग द. डॉ. माथुर

2. हृदय रोग का भेद कौन सा नहीं है–

अ. हृत्कम्प ब. हृदय शूल स. हृदय शोथ द. हृदय मर्जन

3. एक स्वस्थ व्यक्ति का रक्तचाप कितना होना चाहिये–

अ. 120 से 130 मिलीमीटर ब. 80 से 120 मिलीमीटर

स. 100 से 120 मिलीमीटर द. 120 से 140 मिलीमीटर

4. 'ट्यूबरक्लोसिस' को और किस नाम से जाना जाता है–

अ. क्षम रोग ब. अक्षय रोग स. क्षय रोग द. दमा

5. मिट्‌टी की पट्‌टी देते समय मिट्‌टी कैसी होनी चाहिये–

अ. कड़क ब. कंकंड़ युक्त स. मोटी द. चिकनी एवं मुलायम।

## 8.7 पारिभाषिक शब्दावली

उत्सर्जन – निकलना

झिल्ली – परत

मर्दन – मालिश

क्षीण – समाप्त होना

हृदय बैठना – हृदय का कार्य करना बंद कर देना।

## 8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. स 2. द 3. अ 4. स 5. द

## 8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

चौहान जहान सिंह, (2011) क्लीनिकल डायग्नोसिस एण्ड ट्रीटमेण्ट्स, सुमित प्रकाशन, आगरा, उत्तरप्रदेश

आचार्य पं. श्रीराम शर्मा, पुनरावृत्ति (2011) पंच तत्वों द्वारा संपूर्ण रोगों का निवारण, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, उत्तरप्रदेश

दूरस्थ शिक्षा केन्द्र, (2008), वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियॉ, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड

मुखर्जी कुलरंजन, (2007), दैनन्दिन रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा, सादार्न ऑफसेट प्रिन्टर्स, कलकत्ता, पं. बंगाल

जिन्दल राकेश, (2005) प्राकृतिक आर्युविज्ञान, आरोग्य सेवा प्रकाश, मोदीनगर, उत्तरप्रदेश

## 8.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. हृदय रोग के भेद बताइये।
2. हृदय रोग से सम्बंधित किन्ही दो रोगो का वर्णन कीजिए।
3. हृदय रोगों की जल चिकित्सा को विस्तारपूर्वक समझाइये।
4. मृदा चिकित्सा के प्रकार एवं लाभ का वर्णन कीजिए।
5. क्षय रोग का वर्णन करे एवं बताइये कि कौन सी जल चिकित्सा इसके लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है?

# इकाई 9–पृथ्वी तत्व की अवधारणा एवं पृथ्वी चिकित्सा परिचय

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 प्रकृति के गुण एवं परिभाषाएं
9.4 अर्थ एवं महत्व
9.5 पृथ्वी तत्व की अवधारणा
9.6 पृथ्वी चिकित्सा की प्राचीनता
9.7 पृथ्वी चिकित्सा का परिचय
9.8 सारांश
9.9 शब्दावली
9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.12 निबंधात्मक प्रश्न

## 9.1 प्रस्तावना

जब हम यह कहते है कि मानव प्रकृति की सुन्दरतम कृति है, तो हमारा आशय होता है कि प्रकृति ने अपने सर्वश्रेष्ठ तत्वों और सर्वोत्कृष्ट प्रयासों द्वारा मानव शरीर का गठन किया है। प्राकृतिक तत्वों के संतुलन और ममतापूर्ण गठन का नाम ही तो स्वास्थ्य है मानव शरीर में प्राकृतिक तत्वों का यह संतुलन जैसे ही गड़बड़ाता है, मनुष्य अस्वथ हो जाता है। अतः स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए प्राकृतिक तत्वों के संतुलन का प्रयास ही 'प्राकृतिक चिकित्सा' है। पृथ्वी तत्व भारी, स्थूल तथा रूप और आकार से युक्त है। इस प्रकार आप समझ गये होंगे कि मानव शरीर में जो भी ठोस, भारी, स्थूल तथा रूपाकार से युक्त भाग है, सभी कुछ पृथ्वी तत्व की ही देन है। हमारे शरीर में तत्वों की कमी या अधिकता से असंतुलन पैदा हो जाता है जो कि अपने साथ विभिन्न प्रकार के शारीरिक और मानसिक रोग अपने साथ लेकर आता है। जिन पंचतत्वों से हमारा शरीर बना है, पृथ्वी तत्व उसमें सबसे अधिक प्रधान है।

## 9.2 उद्देश्य

एक शैक्षणिक प्रणाली में प्राकृतिक चिकित्सा के विभिन्न प्रायोगिक व सैद्धांतिक पहलुओं की जाकारी विद्यार्थियों को स्वास्थ्य की दिशा में जागरूक करने व उसको अपने जीवन धारण करने हेतु महत्वपूर्ण कदम सिद्ध होगा। इस इकाई का ध्येय है कि विद्यार्थी को प्राचीन पद्धतियों की जानकारी देना साथ ही इस दिशा में स्नातक और परास्नातक के साथ साथ वह इससे जुड़ी गूढ़ पद्धतियों को सरल एव सामान्य रूप से प्रस्तुत कर सके। इस क्षेत्र में

नए शोध कर स्वयं को व समाज और प्रकृति का आपसी सामंजस्य स्थापित कर सकने में सक्षम हो सके। पृथ्वी तत्व द्वारा जड़–चेतन वस्तुओं को धारण करने से इसे धरती, धरित्री, धरा आदि नामो से भी जाना जाता है। यह एक ऐसी प्राचीन विधा है जिसे हमने कुछ समय के लिये बिसरा दिया लेकिन आज के परिदृश्य को देखते हुए हमें फिर से वापस उसी ओर जाना है जहॉं से हम भटक गये थे। इस इकाई के में पृथ्वी तत्व की अवधारणा एवं इससे होने वाली चिकित्सा पद्धति के परिचय का विवेचन करना है।

## 9.3 प्रकृति के गुण तथा परिभाषायें

प्रकृति के गुणों को ज्ञात कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है, जिससे यह स्पष्ट हो सके कि पूर्ण स्वास्थ्य को प्राप्त करने के लिये किस प्रकार की जीवनशैली अपनानी चाहिये, जिससे जीवन के सभी सुखों का आनन्द लिया जा सके।

1. प्रकृति निष्पक्ष, न्यायप्रिय, आत्म अनुशासित तथा मूल स्वरूप धारी है। इसके नियम सदैव अटल तथा सार्वभौमिक होते हैं। भौतिक विज्ञानों की तरह इनके विषय में भविष्यवाणी की जा सकती है।
2. वह प्रत्येक जीवधारी चाहे मनुष्य हो अथवा कोई भी जीव–जन्तु माता के समान देखभाल करती है। वह उन प्रयत्नों को उपयोग में लाती है, जिनसे शरीर की स्थिति स्वास्थ्यपूर्ण बनी रहती है। प्रकृति के नियम सदैव स्वास्थ्य–वर्धक होते है। इनकी प्रभावपूर्णता मनुष्य की जीवनशैली तथा पर्यावरण की किस्म पर निर्भर होती है।

3. प्रकृति के कार्य अनन्त हैं तथा वे सभी मानव के हित के लिये हैं। व्यक्ति यदि उन नियमों से समझौता करके जीवनयापन करता है तो सुखी रहता है। अतः यह मानव के हित में है, कि वह प्रकृति के सूक्ष्म नियमों की खोज करे, जिससे स्वस्थ जीवन जीने की कला का विशेषज्ञ बन सके।
4. प्रकृति की सत्ता प्रत्येक जीवधारी में विद्यमान होती है। अतः यदि उसके विपरीत कार्य किये जाते हैं तो वह प्रतिक्रिया करती है, परिणामस्वरूप रोग परिलक्षित होते हैं।

**परिभाषाएं**

- **कुने लुईस 1967** ''प्राकृतिक प्रणाली जिसका कि चिकित्सा के रूप में उपयोग करते हैं तथा जो दूसरी पद्धतियों से गुण में बहुत अच्छी है, बिना औषधि या आपरेशन के उपचार की आधार की शिक्षा है।''
- **जुस्सावाला जे0 एम0 (1966)–** ''प्राकृतिक चिकित्सा एक विस्तृत शब्द है जो रोगोपचार के सभी प्रणालियों के लिये उपयोग किया जाता है जिसका उद्देश्य प्राकृतिक शक्ति एवं शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता के साथ सहयोग करना है। यह व्याधि से मुक्त कराने का एक भिन्न तरीका है जिसका जीवन स्वास्थ्य एवं रोग के संबन्ध में अपना स्वयं का एक दर्शन है।

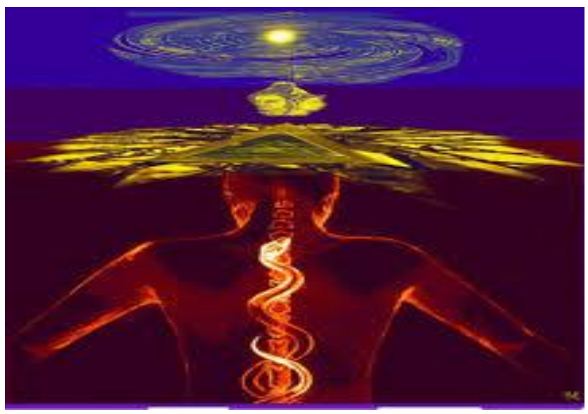

- **बेनजामिन हेरी–**''प्राकृतिक चिकित्सा व्याधि से मुक्त करने तथा रोग का दर्शन है।'' प्राकृतिक चिकित्सा शरीर की स्वयं की आंतरिक सफाई एवं शुद्धिकरण की स्वीकृति देती है। इस प्रकार यह अशुद्धता एवं अनुपयोगी पदार्थ जो कि अधिक वर्षों के कारण एकत्र हो गया तथा जो सामान्य कार्य में बाधा उत्पन्न करता था उसें निकाल फेंकता है।
- **महात्मा गांधी–** ''प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति से रोग मिट जाने के साथ ही रोगी के लिये ऐसी जीवन पद्धति का आरम्भ होता है जिसमें पुनः रोग के लिये कोई गुंजाइश ही नहीं रहती।''
- **पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य–** ''प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ है प्राकृतिक पदार्थों विशेषतः प्रकृति के पांच मूल तत्वों द्वारा स्वास्थ्य रक्षा और रोग निवारक उपाय करना।''

## 9.4 अर्थ एवं महत्व

सर्वप्रथम आप प्रकृति के इस पृथ्वी तत्व के अर्थ को समझ लें कि प्राकृतिक चिकित्सा के माध्यम से क्या कहा जा रहा है, और किस लिये कहा जा रहा है। क्योकि जब तक अर्थ व महत्व नहीं समझेंगे तब तक आप सही दिशा प्राप्त नही कर सकते। पृथ्वी चिकित्सा न केवल उपचारात्मक विधि है बल्कि यह एक जीवन पद्धति पहले है। इस चिकित्सा का मूल उद्देश्य सही दिशा का कराना, जिससे पूर्ण स्वास्थ्य और प्रसन्नता प्राप्त हो सके। मानव

आज ऐसी अनेक शारीरिक व्याधियों से ग्रस्त होता जा रहा है, जिसका प्रभाव न केवल व्यक्ति विशेष पर पड़ता है बल्कि उनके द्वारा समाज की सामाजिक – आर्थिक दशा प्रभावित होती है। साथ ही अनुसंधानों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि यदि पर्याप्त स्वास्थ्य सुविधाएं जन–जन तक पहुॅचायी जा सकें तो अधिकांश बीमारियों को रोका जा सकता है। और यह भी प्रमाणित हो चुका है कि जब तक स्वास्थ्य के संबन्ध में लोगों को शिक्षित नहीं किया जायेगा तब तक कोई भी कार्यक्रम सफल नहीं हो सकता है। अतः लोगों को रोगों के कारण तथा स्वास्थ आदतों के विषय में ज्ञान कराना आवश्यक होता है। यह चिकित्सा पद्धति दोषपूर्ण एवं हानिकारक जीवन आदतों में सुधार लाने का प्रयत्न करती है, साथ ही साथ स्वास्थ संवर्धन के प्रति सचेत भी करती है। इसका आशय व्यक्ति को आत्म नियंत्रण, उचित आदतों का निर्माण, रोगों की रोकथाम तथा शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ करने के तरीकों का ज्ञान कराना है।

पृथ्वी चिकित्सा एक ऐसी पद्धति है, जिसमें प्राकृतिक साधनों एवं श्रोतों का उपयोग व्यक्ति को निरोगी एवं स्वस्थ बनाने के लिए किया जाता है। व्यक्ति प्रकृति का अभिन्न अंग है तथा प्रकृति के तत्वों से बना है। जब शरीर में इन तत्वों का असंतुलन हो जाता है तो शरीर में दूषित पदार्थ एकत्रित होने लगते हैं और व्यक्ति रोगी हो जाता है। इन रोगों को मिट्‌टी चिकित्सा के उपयोग से दूर किया जाता है।

हम शरीर को तो आहार देते है पर ''प्राण शक्ति'' को आहार देने की चिंता नही करते, जिससे हमारी प्राण शक्ति घटती रहती है और व्यक्ति आलसी तथा निर्बल होता जाता है। गलत आहार, विहार और आचार, विचार से दूषित मानसिक तरंगें पैदा होती हैं, जो जीवनी शक्ति का क्षय करती है। इसकी अपेक्षा शुद्ध आचार विचार और सकारात्मक चिंतन आदि गुण हमारे अंदर शक्तिप्रद तरंगे उत्पन्न करती हैं जो जीवनीशक्ति को प्रखर एवं शक्तिशाली बनाती हैं। हमारे जीवन का आधार जीवनीशक्ति (प्राण) ही हैं इनके दो भेद हैं– प्राण (स्थूल शरीर में) और उपप्राण (सूक्ष्म शरीर में)। यह दोनों पांच–पांच होते हैं–

1. अपान।
2. समान।
3. प्राण।
4. उदान।
5. व्यान।

ये पांचों स्थूल शरीर के नष्ट हो जाने से नष्ट हो जाते है। सूक्ष्म शरीर के पांच उपप्राण हैं–

1. देवदत्त।
2. कूकल।
3. कूर्म।
4. नाग।
5. धनंजय।

स्वस्थ बने रहने के लिए जिन मयार्दाओं का पालन करना होता है वे मात्र पॉच है। इन्हें निरोगता के पंचशील कह सकते हैं–

1. सात्विक भोजन।
2. उपयुक्त श्रम।
3. गहरी नींद।

4. स्वच्छता।
5. शांत मन।

इन पांचो के पालन करने से स्वास्थ्य अक्षुण बना रहता है। यदि किसी कारणवश स्वास्थ्य बिगड़ गया है, तो भूल सुधार लेने से प्रकृति क्षमा कर देती है, और खोया हुआ स्वास्थ्य पुनः लौट आता है। उपरोक्त बातों से आप समझ गये होंगे कि पृथ्वी चिकित्सा का हमारे जीवन में कितना महत्व है। प्राण वह जीवनी शक्ति है जो शरीर रूपी यंत्र को इंजन की भांति चलाती है। इसी शक्ति से ही शरीर के भीतरी अंग, हृदय, यकृत, वृक्क आदि अबाध रूप से सतत क्रियाशील रहते हैं। प्राणशक्ति ही शरीर के विभिन्न अंगो को आवश्यकतानुसार शक्ति देती है, तथा इनके कार्यों को संचालित करती रहती है साथ ही एक दूसरे से समन्वय बनाए रखती है। जिसे हम चेतनाशक्ति कहते हैं या ज्योंति कहते हैं वह इस विशाल ब्रहमाण्ड में विद्यमान है, वही शक्ति इस लघुपिण्ड शरीर में पाई जाती है। इस शक्ति के द्वारा ही मन तथा इन्द्रियां अपना काम करती हैं। प्राण से ही शरीर में उष्णता, कंपन, स्फूर्ति और चेतना आदि प्रकट होती है। प्राणशक्ति को संयम, नियम, शुद्व आहार, मन पर नियंत्रण आदि के द्वारा बलवान बनाया जा सकता है। लेकिन जब व्यक्ति प्रकृति के विपरीत आचरण करने लगता है तो यह शक्ति क्षीण होने लगती है, परिणाम स्वरूप हमारे शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है, और शरीर रोगी होने लगता है। अतः प्राणशक्ति को सबल, शक्तिशाली बनाने के लिये प्राकृतिक नियमों का पालन अनिवार्य रूप से करना पड़ता है।

## 9.5 पृथ्वी तत्व की अवधारणा

मानव का निर्माण इसी से होता है, जिससे पृथ्वी को माता कहते हैं। इसका संबन्ध जल, वायु, अग्नि, तथा आकाश से है। मानव के जीवन के लिये समस्त खाद्य पदार्थ चाहे अनाज हो या विविध प्रकार की फल सब्जियां अथवा पशुओं द्वारा दिया गया दूध, दही–मक्खन आदि सब इसी की देन है। पृथ्वी और मानव का संबन्ध शाष्वत है और यही कारण है कि मिट्टी जीवन के लिये अनिवार्य है। इसके अनेकानेक गुण विद्यमान हैं। दुर्गन्ध मिटाने के लिये मिट्टी अति उत्तम वस्तु है। मिट्टी में सर्दी और गर्मी रोकने की असीमित शक्ति होती है। विलक्षण विद्रावक क्षमता के कारण बड़े से बड़े फोड़े पर मिट्टी की पट्टी रखने से वह उसे पका देती है, बहा देती है तथा घाव को भर देती है। मिट्टी में विषादि को सोखने की क्षमता होती है। इसमें रोगों को दूर करने की क्षमता होती है क्योकि मिट्टी में संसार की सभी वस्तुये, रासायनिक मिश्रण मिले होते हैं, जबकि किसी भी दवा के मिश्रण में में उतने रासायनिक नहीं हो सकते है।

आप परिचित हुये होंगे सब जड़ चेतन वस्तुओं को अपने में समेटे होने के कारण ही इसे धरा, पृथ्वी जैसे नामों से पुकारा जाता है। मनुष्य इसे खोद खाद करके और इस पर कचरा फैलाकर जो अपराध करते हैं, उन्हे क्षमा करने से इसे क्षमा भी कहते है। इसके गर्भ में कई रत्न और खनिज पदार्थ भरे रहने से इसे रत्नगर्भा, वसुधा, वसुन्धरा, वसुमती (धन संपदा वाली) रत्न प्रसविनी आदि कहते हैं। सभी रत्न पृथ्वी में मौजूद हैं। इसके गर्भ में खाद्य पदार्थ पोशक तत्व ग्रहण करते हैं, जिन्हे खाकर हम स्वस्थ बनते हैं, इसलिये इसे रसा भी कहते हैं। विश के प्रभाव को नष्ट करने के कारण इसे अमृता भी कहा जाता है। भाव प्रकाश भी मिट्टी के सात नाम बताकर इस (धरती, पृथ्वी, मिट्टी) से कई रोग नष्ट करने का वर्णन करता है। भागवत पुराण में कथा आती है कि राजा पृथु ने पृथ्वी को सजा सवांर कर उससे सब प्रकार की औषधियों का दोहन करके मानव जाति का कल्याण किया था। इसीलिए तभी से पृथ्वी कहा गया है। मिट्टी का अर्थ है, इस सृष्टि पर हर प्रकार की नित्य नई वस्तुएं बनाकर उन्हें मिटाना व मिट्टी में मिलाना। लगभग सारे रोगों को दूर करने में सक्षम हाने के कारण इसे सर्वरोगहारी भी कह सकते हैं। पृथ्वी, पंचतत्वों में पांचवा और अन्तिम तत्व है। यह अन्य चार तत्वों– आकाश, वायु, अग्नि तथा जल का रस है।

यथाः–**''एषां भूतानां पृथ्वी रसः''**

–छान्दोग्योग्योपनिषद

आप जान गये होंगे कि जिन पांच तत्वों से हमारा शरीर बना है, मिट्टी तत्व उसमें सबसे अधिक प्रधान है। धरती में सभी महाभूतों का समावेश है। श्रुति में पृथ्वी को अन्न भी कहा है।

बाईबिल के अनुसार– ''ईश्वर ने धरती की धूल से आदमी का पुतला बनाया, उसके नथुनों में प्राण फूंके और वह सजीव प्राणी हो गया।''

“The first man is of the earth earthy” (I Corinthians XV 47)

वेदों के अनुसारः **''पृथिवी माता धौः नः पिता''** अर्थात् पृथ्वी हमारी माता और आकाश पिता है।

हमारी पृथ्वी आकाश में अपने रास्ते पर सूर्य के चारों ओर प्रति एक सेकेण्ड में 18.5 मील की चाल से चक्कर लगाती रहती है, पर यह कितने आश्चर्य की बात है कि हमको इस तेज चाल का भान तक नहीं होता। दूसरी आश्चर्य की बात है पृथ्वी का वजन गणित द्वारा ठीक–ठीक निकालना। क्या यह असंभव नहीं है? फिर भी गणितज्ञों ने कोशिश की और उनका अनुमान है कि इस पृथ्वी का वजन छः ट्रिलियन टन एवरडो पाईज या 6000000000000000000000 टन है।

पृथ्वी, नौ ग्रहों में से एक है जो इतनी बड़ी होते हुये भी सूर्य एवं बड़े नक्षत्रों के मुकाबले में एक अणु के समान भी नहीं है। पृथ्वी के संबन्ध में आश्चर्यजनक बात जो है, वह है उससे पृथ्वी पर रहने वाले जीवों की उत्पत्ति। तैत्तरीय उपनिषद में वर्णन है कि आत्मा से आकाश की उत्पत्ति हुई, आकाश से वायु की, वायु से अग्नि की, अग्नि से जल की, जल से पृथ्वी की, पृथ्वी से औषधि वनस्पतियों की, औषधि से अन्न की और अन्न से मनुश्य की उत्पत्ति हुई। अतः मानवी सृष्टि की उत्पादक पृथ्वी ही है। गीता में कहा गया हैः– **अन्नाद्भन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न संभवः**। अर्थात्– संपूर्ण प्राणी अन्न (पृथ्वी) से उत्पन्न होते हैं और अन्न की उत्पत्ति वृष्टि से होती है।

शुद्ध शुक्रार्तव हाने पर जब माता–पिता के युक्तिपूर्वक संयोग से बालक गर्भ में आता है, तब पूर्व जन्मों के शुभाशुभ कर्मों से प्रेरित जीवात्मा, उस गर्भ में प्रवेश करता है। जैसे अन्न–बीज में उसका वृक्ष सन्निहित रहता है, अरणी–काश्ठ में अग्नि रहती है, किन्तु युक्तिपूर्वक बीज वपन करने पर ही समय पाकर वृक्ष उगता है, युक्तिपूर्वक घर्षण करने से ही अरणी से अग्नि निकलती है इसी तरह शुक्रार्तव से गर्भ स्थिर होता है और जिस प्रकार स्फटिक मणि, बिल्लोर पत्थर को सूर्य रश्मि पार करती है, किन्तु पार करते समय उसका पार करना दिखता नहीं है, उसी तरह स्त्री के गर्भस्थ गर्भ में जीव प्रविष्ट होता है, फिर वह गर्भ माता के आहार रूपी अन्न–रस (पृथ्वी–तत्व) द्वारा क्रमषः बढ़कर भुमिष्ट होता है। यही कारण है कि हम पृथ्वी को माता कहते हैं। क्योंकि हम सबकी उत्पत्ति धरती से ही हुई है। शास्त्रों में पृथ्वी (मिट्टी) गंगाजल की भांति ही पवित्र मानी गयी है।

प्राकृतिक चिकित्सा का मानना है कि ''उपवास शरीर के पाचन संस्थान को पूर्ण विश्राम देता है।'' उपवास करने का अर्थ यह नहीं कि हम खाना नही खाते तो उपवास हो गया। उपवास वह कि जिसमें पाचन संस्थान को ठीक रखने के लिये और साथ साथ शरीर, मन, इन्द्रियों पर नियंत्रण करने में मदद करता है। उपवास शारीरिक अंगों को विश्राम देने की

प्रक्रिया है। इस प्रकिया के दौरान पाचन प्रणाली के विश्राम में होने के कारण भोजन का पाचन करने वाली प्राण ऊर्जा पूर्ण रूप से निष्कासन की प्रक्रिया में लग जाती है मल को शरीर से बाहर निकालने के लिये महर्षि चरक ने अपने ग्रन्थ ''चरक संहिता'' में लंघन को शरीर शुद्धि का प्रमुख साधन मानते हुए इसको दस भागों में विभक्त किया है जिसमें से एक उपवास भी है। बर्नर मैककैडन के अनुसार ''उपवास वह रामबाण है जो रोगों की अचूक औषधि है। उपवास के माध्यम से हम अपने अंदर विजातीय द्रव्य बनने से रोकते हैं और जो विजातीय पदार्थ शरीर से बाहर निकालते हैं। इस प्रकार उपवास शरीर शुद्धि का उपाय ही नहीं अपितु शारीरिक, मानसिक, विकारों को दूर करने के लिये एक उत्कृष्ट चिकित्सा विधि है।

## 9.6 पृथ्वी चिकित्सा की प्राचीनता—

मानव जीवन की प्रगति के साथ ही साथ चिकित्सा प्रणालियों में भी परिवर्तन, परिवर्धन तथा नवीनीकरण आता गया। सभ्यता की प्रगति के साथ–साथ रहन–सहन के ढंग बदलने लगे। पूर्व में जड़ी बूटियां व्यवहार में लायीं गयीं फिर उनसे तरह तरह की औषधियां बनने लगी। विश्व में सबसे पहले औषधियों तथा शल्य चिकित्सा का कार्य भारत में ही आविष्कृत हुआ। सन् 1808 में प्रकाशित पुस्तक ''हिस्ट्री ऑफ मेडिसिन एमॉग एशियाटिक्स'' में वाइज ने लिखा हे कि आयुर्वेदिक औषधियों का प्रचार प्रसार सबसे पहले भारत में ही हुआ था। ईसा के जन्म से चार सौ वर्श पहले ग्रीस के हिपोक्रेट्स प्राकृतिक चिकित्सा के जनक कहे जाते हैं। उनकी धारणा थी कि प्रकृति में ही रोग निवारण करने की क्षमता है। हर्षवर्धन के समय भी

प्राकृतिक चिकित्सा का अस्तित्व मिलता है। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने जलाशयों, स्नानागारों तथा उपचार हेतु जलस्नानों का वर्णन किया है। इसी प्रकार मुस्लिमकाल में भी प्राकृतिक चिकित्सा का वर्णन मिलता है।

**महाबग्ग नामक बौद्ध ग्रन्थ के अनुसार—** इस ग्रन्थ में लिखा है कि एक बार भगवान बुद्ध श्रावस्ती नगर से राजगृह जाते हुये कलंद निवाद नामक संघ में रूके थे। वहॉ एक बौद्ध भिक्षु को सांप ने काट लिया। इसकी सूचना भगवान बुद्ध को मिली, उन्होंने सलाह दी कि विष नाश करने के लिये चिकनी मिट्टी, गोबर, मूत्र, और राख का उपयोग किया जाय। इसी प्रकार यह भी प्रसंग मिलता है कि पिलीद वक्क नामक भिक्षु के बीमार होने पर भगवान बुद्ध ने मिट्टी स्नान, जल स्नान तथा भाप स्नान की सलाह दी थी।

वर्तमान शताब्दी में प्राकृतिक चिकित्सा को नया जीवन देने का श्रेय राष्ट्रपिता महात्मा गॉधी को जाता है। उन्हें भारत का प्रथम प्राकृतिक चिकित्सक या जनक कहा जाता है। एक बार उन्हें कब्ज की शिकायत हो गयी तो उन्होंने अनेको उपचार किये लेकिन पूर्ण रूपेण सफलता नहीं मिली। फिर उनके एक मित्र ने जुस्ट की पुस्तक ''रिटर्न टू नेचर'' दी। उसमें मिट्टी चिकित्सा का वर्णन पढ़ करके गॉधी जी ने मिट्टी उपचार फौरन प्रारंभ कर दिया। मिट्टी चिकित्सा का प्रभाव अद्भुत हुआ। गॉधी जी साफ खेत की लाल या काली मिट्टी ठण्डे पानी में मिलाकर साफ भीगे पतले कपड़े में रखकर पेट पर बांध लेते थे। रात में जब जगते तो पट्टी हटा देते थे। इससे उन्हें कब्ज से हमेशा के लिये छुटकारा मिल गया। इससे आप समझ ही गये होंगे कि इस प्राचीन चिकित्सा पद्धति का हमारे जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

## 9.7 पृथ्वी चिकित्सा का परिचय

क्षिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित यह अधम शरीरा।।

हमारा शरीर पंचतत्वों से बना है जिसमें पंचतत्वों में पृथ्वी तत्व अत्यन्त महत्वपूर्ण है जिसमें मनुष्य की उत्पत्ति उसका पालन पोषण वृद्धि, विकास तथा विनाश पृथ्वी पर पूर्णतया निर्भर है मानव जीवन इन्हीं पर निर्भर है यही कारण है कि पृथ्वी को माता कहा गया है। मिट्टी से अनाज, अनाज से पौष्टिकता प्राप्त होती है। मिट्टी विषैले तत्व को नष्ट करती है।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इन तत्वों में ज्यादा स्थूल पृथ्वी तत्व है बाइबिल – ईश्वर ने पृथ्वी से धूल उठाकर पुतला बनाया और फिर उसके नथुने में फूल मारकर उसे सजीव प्राणी बना दिया इसी कारण पृथ्वी को माता और आकाश को पिता कहा गया है। मिट्टी सभी रोगों की रामबाण औषधि है इसमें विषैले तत्व को नष्ट करने की शक्ति होती है मिट्टी चिकित्सा एक ऐसी विशिष्ट चिकित्सा पद्धति है मिट्टी का उपयोग केवल रोगों के उपचार हेतु नहीं अपितु शरीर को बलशाली, पुष्ट एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता की वृद्धि के लिये भी करते हैं। मिट्टी चिकित्सा अमूल्य पद्धति है जिसका शरीर तथा मन दोनों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

**महात्मा गांधी–** ''मिट्टी से हमारा शरीर बना है इसी मिट्टी में जन्म हुआ है और एक दिन मर कर भी इसी मिट्टी में मिलकर राख बन जाना है।''

**कबीर दास जी–** ''माटी कहे कुम्हार से तू क्या रौंदे मोय।
एक दिन ऐसा आयेगा, मैं रोंदूंगी तोय।''

कहते हैं कि माटी का पुतला है काहे को इतना शरीर पर घमण्ड करें एक दिन इस शरीर को खाक मिल जाना है।

प्रकृति जीव का संचालन करती है जो प्रत्येक जीवन के पार्श्व में रहकर उसके जन्म, मरण, स्वास्थ्य एवं रोग आदि का ध्यान रखती है, उस महान शक्ति को जीवनी शक्ति, प्राण आदि कहते हैं। शरीर की समस्त क्रियायें इसी के माध्यम से संपन्न होती हैं। हमारा खाना पीना, बोलना चालना, उठना बैठना सब इसी पर निर्भर है। मां अपने बच्चे के लिये इन सब बातों का जैसे ध्यान रखती है वैसे ही प्रकृति भी हमारा क्ष्याल रखती है, और जब तक बच्चा मां के पास रहता है वह अपने आप को सुरक्षित महसूस करता है। जिस प्रकार खाना खिलाते समय यदि खाना अटक जाये तो मां बच्चे को पीठ पर जोर से मारती है पानी पिलाती है। ठीक इसी प्रकार से प्रकृति भी हर तरह से ध्यान रखती है। जब खाना गलती से श्वांस नली में चला जाता है तो मां के समान ही तुरंत खांसी उत्पन्न कर उसे बाहर निकाल देती है। इसी प्रकार जब कोई भी जहरीली चीज मुंह में चली जाती है तो तुरंत उल्टी होने लगती है और जहर बाहर निकल जाता है। घाव हो जाने पर उसे कौन भरता है, हड्डी टूट जाने पर उसे कौन जोड़ता है। चिकित्सक केवल सहारा देता है, लेकिन हड्डी को जोड़ नहीं सकता। यह कार्य केवल और केवल प्रकृति रूप में मां ही कर सकती है। संसार में प्रकृति से बड़ा चिकित्सक कोई नहीं है, प्रकृति ही सभी साध्य व असाध्य रोगों का उपचार करती है। प्राकृतिक चिकित्सा तो प्रकृति के कार्य में सहायक के रूप में कार्य करता है।

एक उर्दू शायर ने क्या खूब कहा है–

**खाक का पुतला बना है खाक की तस्वीर है।**
**खाक में मिल जायेगा फिर खाक दामनगीर है।।**

मनुष्य के अतिरिक्त इस पृथ्वी पर और बहुत से थलचर प्राणी हैं, जैसे पशु, पंक्षी, कीट, आदि। ये सभी जीव जीवन पर्यन्त अपना संपर्क धरती माता से बनाए रखते हैं जिसके फलस्वरूप वे आनन्दपूर्वक जीवन यापन करते हैं। इनमें मनुष्य की भांति सभी बातों में

कृत्रिमता नहीं होती। इनके लिये ओढ़ने पहनने को न तो अलग से वस्त्र की जरूरत होती है और न बिछाने को अलग से नरम बिस्तरे की। जिसका फल यह होता है कि वे स्वस्थ और बलशाली जीवन–भर बने रहते हैं।

प्रकृति का यह नियम है कि उसने जिस जीव को जिस जगह के लिये, जिस ढंग से रहने के लिये रचा है, उसे उस जगह, उसी ढंग से रहना युक्तिसंगत है। संसार में तीन प्रकार के जीव वास करते हैं नभचर, जलचर, तथा थलचर। जिनमें नभचर तथा थलचर तो इस प्राकृतिक नियम का पालन करते हैं और मनुष्य के अतिरिक्त सभी थलचर जीव भी। परन्तु मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो अपनी इच्छा से या विवश होकर पर अवश्य ही अज्ञानवश, प्रकृति के इस लाभदायक नियम को भंग करके अपने को अपनी स्नेहमयी माता से धरती माता से दूर–दूर बहुत दूर रहता है। ऐसी दशा में अपनी माता की गोद से बिछुड़ कर उसके आशीर्वाद से वंचित रहकर कौन सी संतान कष्ट को प्राप्त न करेगी। कौन सी संतान जीवन पर्यन्त कमजोर और रोगी रह कर समय से पहले ही काल कवलित न हो जायेगी? वर्तमान जीवनशैली में हमें अनेकों प्रकार की बीमारियों ने जकड़ लिया है। क्योंकि हमारा उठना–बैठना, पारिवारिक वातावरण, आहार–विहार आदि में अनियमितता ही इसका मुख्य कारण है। हमे फिर से जमीन जुड़कर अर्थात् प्रकृति की गोद में ही जाकर इसका समाधन मिल सकेगा। आपने पिछले पृष्ठों पर पंचतत्वों के सिद्धांतों का अध्ययन किया है। और उन्हीं पंचतत्वों के महत्पूर्ण तत्व मिट्टी (पृथ्वी) की तथा उसके चिकित्सकीय गुणों की बारीकियों पर चर्चा कर रहें हैं। इसकी चिकित्सा के अनेको उदाहरण मिलते हैं। और वर्तमान में इस पर अधिक से अधिक जोर दिया जा रहा है। और जन सामान्य के लिये सर्वसुलभ बनाये जाने का प्रयास किया जा रहा है।

आप को ज्ञात हो गया होगा की इस अति प्राचीन चिकित्सा पद्धति का क्या महत्व है। इस संबन्ध में गॉधीजी ने कहा है कि '' मेरा यह अनुभव है कि सिर पर मिट्टी पट्टी की पुल्टिस बांधी जाये, तो सिरदर्द चला जाता है। मैने सैकड़ों लोगों पर करके आजमाया है।'' मिट्टी का प्रयोग फोड़ों पर भी अपना जादू सा असर दिखता है, उसे पका देने व बहा देने साथ ही घाव को भरने में इसका प्रयोग महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। यदि कोई विषैला जन्तु, डंक मार देता है तो मिट्टी की पुल्टिस से तुरंत आराम होता है। बिच्छू के डंक मारने पर जो प्रभाव अन्य दवाओं का होता है वही प्रभाव मिट्टी पट्टी का होता है। उच्च ज्वर में उदरदर्द तथा सिरदर्द में मिट्टी पट्टी रखने से तुरंत लाभ मिलता है।

**अभ्यास प्रश्न–एक शब्द में उत्तर दीजिए।**

1. प्राण के कितने भेद है।
2. उप प्राणो की संख्या बतायें।
3. पृथ्वी को किसकी संज्ञा दी गई है।
4. पृथ्वी के कोई दो पर्यायवाची नाम बतायें।

## 9.8 सारांश

**''माटी ओढ़ना माटी बिछौना, माटी दाना–पानी रे।''**

कबीरदास जी ने अपनी इस बानी में इस बात की ओर संकेत किया है कि मनुष्य थलचर प्राणी है। अर्थात् आप समझ गये होंगे कि मनुष्य पृथ्वी पर विचरने वाला जीव है अतः उसका कल्याण इसी में है कि वह सदा–सर्वदा पृथ्वी से ही संसर्ग रखे। यहॉ तक कि मिट्टी ही शरीर पर धारण करके (जैसा योगी लोग करते हैं) उससे ओढ़ने का काम लें

और मिट्टी के ही बिस्तर अर्थात् पृथ्वी पर ही सोये ठीक उसी प्रकार जिस वह मिट्टी से उपजे फल–अन्नादि का भोजन करके जीवित रहता है। क्योंकि मनुष्य की उत्पत्ति मिट्टी से ही हुई है और उसे एक दिन मिट्टी में ही मिलना है। अतएव उत्पत्ति और मरण के बीच की अवधि में भी प्रकृतितः उसे मिट्टी से ही संपर्क बनाए रखना चाहिए तभी वह सुख–शांति का भागी हो सकता है अन्यथा नहीं।

## 9.9 शब्दावली

थलचर– जमीन में निवास करने वाले प्राणी
नभचर– आकाश में निवास करने वाले प्राणी
खाक– राख
अस्थि–हड्डी
नवनीत–मक्खन

## 9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 5
2. 5
3. माता
4. रत्नगर्भा

## 9.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. कूने, लूई (हिन्दी अनुवाद) आकृति से रोग की पहचान, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, दिल्ली, 1990।
2. मिश्र, प्रयागदीन, प्राकृतिक चिकित्साः सिद्धांत एवं व्यवहार, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1998।
3. जिंदल, राकेश, प्राकृतिक आयुर्विज्ञान, केन्द्रीय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनसंधान परिषद, नई दिल्ली
4. जुस्ट, एडाल्फ प्राकृतिक जीवन की ओर, आरोग्य मन्दिर प्रकाशन, गोरखपुर 1951।
5. गौड़, रामदास, स्वास्थ्य साधन, हिन्दी पुस्तक ऐजेन्सी, कलकत्ता।
6. मैकफेडेन, वर्नर (हन्दी अनुवाद) उपवास चिकित्सा
7. हीरालाल, साइटिफिक नेचर क्योर, प्राकृतिक चिकित्सा परिषद, दिल्ली 1993।
8. शर्मा लक्ष्मन, प्रेक्टिकल नेचुरोपैथी, नेचरसेनीटोरियम, तमिलनाडु।
9. वर्मा जानकीशरण, रोगों की अचूक चिकित्सा, भारती भण्डार प्रकाशन, इलाहाबाद 1992।


## 9.12 निबंधात्मक प्रश्न

**1.**पृथ्वी तत्व का परिचय देते हुए प्रकृति के गुणों का वर्णन कीजिए।

# इकाई – 10 मिट्टी के प्रकार गुण सिद्धान्त तथा महत्व

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 मिट्टी के प्रकार
10.4 मिट्टी के गुण
10.5 मिट्टी के सिद्धांत एवं महत्व
10.6 सारांश
10.7 शब्दावली
10.8 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
10.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
10.10 निबंधात्मक प्रश्न

## 10.1 प्रस्तावना

हर मनुष्य की प्रवृत्ति स्वस्थ ओर निरोग रहने की होती है। यह प्रवृत्ति मनुष्य में आदिकाल से ही है। प्राचीनकाल में मनुष्य का जीवन उसके स्वास्थ्य और शारीरिक शक्ति पर निर्भर था, जो लोग कमजोर और अस्वस्थ हो जाते थे, उनके जीवन का अंत समझा जाता था, किन्तु मनुष्य का जीवन इतना प्राकृतिक था कि वह रोगों से मुक्त रहता था। स्वच्छ हवा में घूमना, शीतल छाया में विश्राम करना, कंदमूल और फल खाना, मिट्टी से सीधा संबन्ध बनाए रखना उनका जीवन था। फलतः लोग व्याधिमुक्त होते थे। इस इकाई निर्माण में उन्हीं सब पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है जिनसे की आज के परिदृश्य में रहने वाला समाज इस ओर आकर्षित हो सके और प्राकृतिक जीवन की वास्तविकता को जान सके। प्राचीन चिकित्सा पद्धति के साथ साथ जैसे जैसे सभ्यता विकसित होती गयी, जनसंख्या बढ़ती गयी, रहने के लिये नगरों व गावों का निर्माण होता गया, वैसे वैसे स्वास्थ्यवर्धक वातावरण दूषित होने लगा। मनुष्य की कियाएं भी अस्वस्थकारी होने लगी। उसके जीवन में न तो नैसर्गिक स्वच्छंदता रह गयी और न प्राकृतिक वातावरण रहा, जिसके परिणाम स्वरूप वह रोग की चपेट में धीरे धीरे बढ़ता गया। उक्त दृष्टिकोण से ज्ञात होता है कि वर्तमान में प्रकृति के गुणों को ज्ञात कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है, जिससे यह स्पष्ट हो सके कि पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिये किस प्रकार की जीवनशैली अपनानी चाहिये, जिससे जीवन के सभी सुखों का आनन्द लिया जा सके।

## 10.2 उद्देश्य

**प्रस्तुत इकाई में आप**

- मिट्टी के प्रकारों का विश्लेषण कर सकेगे।
- मिट्टी के गुणों का अध्ययन करेगें।
- मिट्टी के महत्व को जान सकेगें।

## 10.3 मिट्टी के प्रकार

- **काली मिट्टी** –यह चिकनी होती है बालों को साफ करने के उपयोग में लाई जाती है। इस मिट्टी में सोखने की क्षमता कम होती है इसलिये इसमें बालू मिलाते हैं।

- **लाल मिट्टी** –यह मिट्टी पहाड़ी जगह में पाई जाती है, गेरू भी इसी प्रकार की होती है जो मकान रंगने व पुताई करने में और विशेष रूप पित्त होने पर करते हैं। सामान्य रूप से भी इसका प्रयोग किया जा सकता है।

- **मुल्तानी मिट्टी**– त्वचा के रोगों में विशेष लाभकारी होती है, इसे प्रायः उबटन के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। इसके उपयोग से त्वचा में चमक आती है।

➢ **ईटों के भट्ठे की मिट्टी –**इस मिट्टी का प्रयोग किसी भी प्रकार के घाव पर किया जाता है। इसमें वैक्टीरिया व जीवाणु नहीं होते हैं।

➢ **सज्जी मिट्टी –** इस मिट्टी का उपयोग कपड़े साफ करने में किया जाता है।

➢ **पीली मिट्टी–** इसमें ठण्ड तथा गरमी को रोकने की क्षमता अधिक होती है, और जल को सोखने वाली होती है, इसे सामान्य रोगों में इस्तेमाल कर सकते हैं।

- **पिण्डोर (चिकनी मिट्टी)** – यह अधिक चिकनी होती है और शरीर की सफाई के लिये विशेषकर बालों की सफाई के लिये बहुत उपयोगी है लेकिन चिकित्सा के लिये बालू अवश्य मिलाते हैं जिससे सोखने की क्षमता बढ़ती है।

**मिट्टी के प्रयोग**

अप्राकृतिक आहार, अनियमित दिनचर्या एवं दूषित चिचारों से जब शरीर में विजातीय दृव्य (विष) की मात्रा बहुत अधिक बढ़ जाता है तब इस विष को निकालने के लिये हमारे शरीर के प्रमुख मल निष्कासक अंग (त्वचा, ऑत, फेफड़े एवं गुर्दे) भी अक्षम हो जाते हैं। इस स्थिति में उक्त विष शरीर के अन्दर एकत्र होकर रोग पैदा करता है। प्राकृतिक चिकित्सा में इस विष को मिट्टी, पानी धूप, हवा और आकाश तत्वों की सहायता से विकसित उपचारों द्वारा शरीर का शोधन कर रोग मुक्त किया जाता है। मात्र पृथ्वी तत्व के कृछ प्रयोग से भी शरीर का शोधन कर सकते है।

1. **रज स्नान** (विधि) शुद्ध साफ मिट्टी को कपड़े से छानकर उसे संपूर्ण शरीर पर रगड़ने के पश्चात् 10–20 मिनट धूप में बैठें, तत्पश्चात् ताजे पानी से स्नान कर लें।

**लाभ–** त्वचा नरम, लचीली एवं कोमल हो जाती है। शरीर के रोमछिद्र खुल जाने से शरीर का विजातीय दृव्य पसीने के माध्यम से बाहर निकल जाता है। त्वचा के समस्त रोग एवं बरसाती फोड़े–फुन्सियां इस स्नान से मंत्रवत् दूर हो जाते है।

2. **गीली मिट्टी स्नान–** (विधि) बारीक पिसी हुई मिट्टी को पानी के साथ घोलकर लेई बना लें
   फिर उसको पूरे शरीर पर लेपन करें, तत्पश्चात् धूप में बैठ जायें। मिट्टी के सूख जाने के उपरान्त धीरे–धीरे रगड़कर छुड़ा लें और स्नान कर लें। यह प्रयोग किसी तालाब के किनारे जाकर तालाब की साफ मिट्टी से भी किया जा सकता है।

**लाभ–** यह स्नान बहने वाले फोड़े–फुन्सियों वाले शरीर के लिये अत्यंत उपयोगी है। त्वचा की गन्दगी को हटाकर त्वचा को उजला बनाने में काफी लाभप्रद है। संपूर्ण शरीर से विष को खींचकर शरीर का आंतरिक शोधन करने में विशेष उपयोगी है।

## 10.4 मिट्टी के गुण

मिट्टी जितनी सर्वसुलभ एवं नगण्य समझी जाती है उसकी गुण गरिमा उतनी ही महान है। मिट्टी में सभी रोगों को दूर करने की अद्भुत शक्ति होती है इसमें रासायनिक सम्मिश्रण विद्यमान होता है।सभी प्रकार की दुर्गन्ध मिटाने के लिये लोग अपने घरों में मिट्टी लेपते हैं और दुर्गन्ध की जगह पर मिट्टी का प्रयोग करते हैं। मिट्टी में सर्दी गर्मी रोकने की शक्ति होती है तभी योगी लोग अपने शरीर पर मिट्टी लगाये रहते हैं जिससे कड़ी धूप और कड़ाके की सर्दी दानों में उनके नंगे बदन की रक्षा स्वतः ही होती है। फोड़े पर मिट्टी की पट्टी बांधने से घाव दर्द में राहत तथा घाव शीघ्र भर जाता है।

मिट्टी जल के वेग को रोक सकती है बांध बनाकर बाढ़ के पानी को रोका जा सकता है। मिट्टी अग्नि की गर्मी का शोषण करके उसे शांत करती है। आग लगने पर मिट्टी डालकर उसे बुझाते हैं। पेट, सिर पर मिट्टी बांधने से तेज बुखार घण्टे दो घण्टे में हल्का हो जाता है। शरीर का कोई भी हिस्सा जल जाने पर मिट्टी बांधने से जलन कम हो जाती है सूजन नही होती है। शरीर में कही सूजन हो और वहां खुजली हो रही हो तो वह गुणकारी है। इस प्रकार तैयार मिट्टी को प्रयोग करने से आठ घण्टे पूर्व एक तसले या किसी भी बर्तन में भिगो दें जिससे कि मिट्टी मुलायम हो जाये। मिट्टी को हाथ से नहीं छुयें बल्कि उसे किसी लकड़ी के यंत्र डन्डे से मिलाकर तैयार किया जा सकता है। मौसम के अनुसार ग्रीष्मकाल में ठण्डे जल से और शीतकाल में गरम जल से मिट्टी तैयार की जा सकती है। एक बार प्रयोग में लायी गई मिट्टी को दोबारा उपयोग में नदी करनी

चाहिये परंतु उस मिट्टी को दुबारा अच्छी तरह से धूप में 10–15 दिन सुखाकर उपयोग में लाया जा सकता है।

भारतीय जलवायु या भौगोलिक दृष्टिकोंण अथवा कृषि के नजरिये से भी समझते चलें कि कौन सी मिट्टी कहॉ पाई जाती है और उसकी क्या उपयोगिता और महत्ता है–

| मिट्टी | | | |
|---|---|---|---|
| **नाम** | **रंग** | **उपयुक्त** | **स्थिति (राज्य)** |
| जलोढ़ मिट्टी | हल्का भूरा रंग | इस मिट्टी में उत्तरी भारत में सिंचाई के माध्यम से गन्ना, गेहूँ, चावल, तिलहनी फसलों तथा सब्जियों की खेती की जाती है। | उत्तर भारत में पश्चिम में पंजाब से लेकर संपूर्ण विशाल मैदान। |
| काली मिट्टी | यह मिट्टी काले रंग की होती है | इसे कपास के लिए सर्वश्रेष्ठ माना जाता है | महाराष्ट्र, गुजरात तथा मध्य प्रदेश |
| लाल मिट्टी | यह लाल रंग की होती है | कम उपजाऊ | महाराष्ट्र के पठारी भाग में, पूर्वी मध्य प्रदेश, उड़ीसा, तमिलनाडु। |
| लैटेराइट | लाल रंग की खुरदुरी | कम उपजाऊ, मकान निर्माण के कार्यो में लायी जाती है। | महाराष्ट्र के पठारी भाग में, उड़ीसा, तमिलनाडु। |
| पर्वतीय | कंकड़ व पत्थर युक्त | अनुपजाऊ | हिमालय क्षेत्र |
| मरूस्थलीय | भारी मात्रा में बालू | अनुपजाऊ | राजस्थान |

## 10.5 मिट्टी के सिद्धांत एवं महत्व –

**मिट्टी जितनी सर्वसुलभ एवं नगण्य समझी जाती है उसकी गुण गरिमा उतनी ही महान है–**

- मिट्टी में सभी रोगों को दूर करने की अद्भुत शक्ति होती है इसमें रासायनिक सम्मिश्रण विद्यमान होता है।
- मिट्टी में विष को सोखने की अद्भुत शक्ति होती है।
- सभी प्रकार की दुर्गन्ध मिटाने के लिये लोग अपने घरों में मिट्टी लेपते हैं और दुर्गन्ध की जगह पर मिट्टी का प्रयोग करते हैं।
- मिट्टी में विलक्षण विद्रावक शक्ति होती है जिससे वह फोड़े को भी पका देती है।

- मिट्टी में सर्दी गर्मी रोकने की शक्ति होती है तभी योगी लोग अपने शरीर पर मिट्टी लगाये रहते हैं जिससे कड़ी धूप और कड़ाके की सर्दी दानों में उनके नंगे बदन की रक्षा स्वतः ही होती है।
- पेट, सिर पर मिट्टी बांधने से तेज बुखार घण्टे दो घण्टे में हल्का हो जाता है।
- शरीर का कोई भी हिस्सा जल जाने पर मिट्टी बांधने से जलन कम हो जाती है सूजन नही होती है।
- शरीर में कही सूजन हो और वहां खुजली हो रही हो तो वह गुणकारी है।

आधुनिक समय में मनुष्य प्रकृति से दूर होता चला जा रहा है, और इसी कारण से प्राकृतिक चिकित्सा के उपायों एवं सिद्धांतों नही समझ पा रहा है। लेकिन यदि भारत का चिकित्सा इतिहास उठाकर देखें तो अधिकांश कालों में मिट्टी तथा जल दो से ही उपचार कार्य होता आया है। आयुर्वेद में मिट्टी की महिमा का वर्णन मिलता है। हमारे ऋषियों, मुनियों ने प्रत्यक्ष उपयोग द्वारा मिट्टी के महत्व को समझा और शरीर तथा मन को स्वस्थ रखने के लिये विभिन्न प्रकार से उपयोग करने की कला विकसित की। यदि हम आश्रम व्यवस्था की ओर दृष्टिपात करें, तो पता चलता है कि पृथ्वी पर सोना, नंगे पैर चलना, रहना, शरीर का मिट्टी से सीधा संपर्क रहना, मिट्टी से ही हाथ पैरों की सफाई, वस्त्रों की सफाई, वस्त्रों की सफाई तथा निवास स्थान की सफाइ तथा आकस्मिक समय पर गीली मिट्टी का उपयोग पढ़ने एवं समझने को मिलता है। मिट्टी में अनेकानेक भौतिक, रासायनिक तथा चिकित्सकीय विशेषतायें होने के कारण स्वस्थ तथा अस्वस्थ दानों दशाओं में इसका उपयोग होता रहा है। अब आप समझ गये होंगे कि चिकित्सा के रूप में जब इसका उपयोग किया जाता है, तो इसका महत्व अमूल्य औषधि से भी अधिक हो जाता है। मिट्टी (मृदा) चिकित्सा एक प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति है जिसमें विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक रोगों एवं विकृतियों को दूर करने के लिये तथा शरीर स्वास्थ्य के संवर्धन हेतु मिट्टी का विभिन्न रूपों में उपयोग किया जाता है। मिट्टी चिकित्सा एक ऐसी विशिष्ट चिकित्सा पद्धति है, जिसके द्वारा शरीर के विजातीय द्रव्यों एवं मल विकारों को विभिन्न रूपों के द्वारा शरीर से बहिष्कृत किया जाता है। मिट्टी चिकित्सा का उपयोग न केवल रोगों के उपचार हेतु करते हैं अपितु शरीर को बलशाली, पुष्ट एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता की वृद्धि के लिये भी करते हैं। मिट्टी चिकित्सा एक ऐसी अमूल्य पद्धति है जिसका शरीर तथा मन दोनों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। मिट्टी में सर्दी और गर्मी रोकने की अद्भुत क्षमता होती है। जल चिकित्सा से भी अधिक प्रभावकारी मिट्टी चिकित्सा है क्योंकि एक ही तापक्रम पर शरीर को बिना किसी यांत्रिक सहायता से मिट्टी द्वारा रख जा सकता है। मिट्टी में गर्मी अवशोषित करने की असीम क्षमता होती है। अतः शरीर की आवश्यकता से अधिक गर्मी को अपने में समाहित कर लेती है जिससे शरीर का तापक्रम सामान्य हो जाता है। इसी प्रकार मिट्टी सर्दी को भी अपने अन्दर समाहित कर लेती है। उस अवस्था में गरम मिट्टी की पट्टी का उपयोग किया जाता है। शरीर में चाहे जैसी भी दुर्गन्ध आ रही हो मिट्टी द्वारा उसे जड़ से समाप्त किया जा सकता है। प्रायः यह देखा गया है कि, कुछ लोगों के पसीने में काफी दुर्गन्ध आती है, किन्ही रोगों में शरीर से दुर्गन्ध आने लगती है, ऐसी अवस्था में यदि मिट्टी का उपयोग किया जाता है तो वह अपने विशिष्ट गुणों के कारण दुर्गन्ध को दूर कर देती है, और शरीर निर्मल व स्वच्छ हो जाता है। वातावरण की दुर्गन्ध मिटाने के लिए मिट्टी से बढ़कर और कोई पदार्थ नहीं है। इसी कारण सड़ी चीजों

पर मिट्टी डालने से उसकी दुर्गन्ध चली जाती है तथा हानिकारक कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। मृत शरीर का विसर्जन भी मिट्टी में दबाकर करने से शरीर से किसी प्रकार की दुर्गन्ध न तो वातावरण में मिलती है और न ही अधिक आर्थिक व्यय होता है। इसीलिये प्राचीन काल में मृत शरीर को जमीन में गाड़ देते थे। आज भी मृत शरीर को मिट्टी ही कहा जाता है।

अब आप यह समझ गये होंगे कि मिट्टी चिकित्सा का प्रयोग कोई भी व्यक्ति कर सकता है, यदि उसने थोड़ा ज्ञान प्राप्त कर लिया है। इसके साथ ही साथ हानि होने की कोई संभावना नहीं रहती है। अतः बिना किसी संकोच के इसका उपयोग किया जा सकता है। वर्तमान समय में मानसिक स्वास्थ्य की एक गंभीर समस्या उत्पन्न होती जा रही है। मानसिक चिंता, तनाव के कारण लोग परेशान हो रहे है, मिटटी चिकित्सा के उपयोग से मानसिक तनाव को काफी सीमा तक नियंत्रण में लाया जा सकता है। मनुष्य थलचर प्राणी है अर्थात् पृथ्वी पर रहने वाला प्राणी है। अतः वह पृथ्वी से सदैव संपर्क रखने से अनय थलचरों जैसे– पशु की भांति सदैव स्वस्थ रह सकता है। लेकिन आज कृत्रिमता के कारण मनुष्य मिट्टी से काफी दूर रहता है, जिसका फल यह है कि वह अस्वस्थ और शक्तिहीन होता जा रहा है। प्रकृति के नियमानुसार प्रत्येक जीव की एक जीवन पद्धति निश्चित है, उसी पर चलकर वह स्वस्थ रह सकता है। यह सिद्धांत मनुष्य के विषय में भी लागू होता है। अब आप समझ गये होंगे कि मिट्टी हमारे जीवन में कितनी उपयोगी है।

**वेदों में कहा गया है :**

**यद्धो देवा उपजी का आसिंच्वन धन्वन्युदकेय।**
**तेन देव सुतनेदं दूषयिता विषम।।**

अर्थात् हे मनुष्यो! मुँह में लाई गई मिट्टी और उसमें अपने मुँह से मिलाये गये जल से दीपक को जो विमोट (वल्मीकि) बनाती है इस देव रचित (प्राकृतिक) भेषज से रोग रूपी विष को नष्ट करो।

**आयुर्वेद में कहा गया है :**

**कर्दमों दाह, पिन्ताति षोध हनः षीतल सरः।।**

अर्थात्! नंगे पैरों से जल में सनी हुई मिट्टी ठण्ड देने वाली होती है। शौच साफ लाती है। जलन, पित्त की पीड़ा और सूजन को दूर करती है।

**कृष्णमृत ज्ञतदाहास्त्र प्रदरष्लेश्म पित्तनुत।।**

अर्थात्! काली मिट्टी, घाव, दाह, रक्तविकार, प्रदर, कफ तथा पित्त को मिटाती है।

**अभ्यास प्रश्न–एक शब्द में उत्तर दीजिए।**

1.बालों की सफाई के लिए कौन सी मिट्टी उपयोगी है।

2.त्वचा रोगों के लिए उपयोगी कौन सी मिट्टी उपयोगी है।

3.घाव भरने के लिए उपयोगी कौन सी मिट्टी उपयोगी है।

## 10.6 सारांश–

पृथ्वी चिकित्सा न केवल उपचारात्मक विधि है बल्कि यह एक जीवन पद्धति है। पृथ्वी चिकित्सा का मूल उद्देष्य प्रकृति के अनरूप सही दिशा का ज्ञान कराना है, जिससे पूर्ण स्वास्थ्य एवं प्रसन्नता प्राप्त हो सके। मानव आज ऐसी अनेक शारीरिक व्याधियों से ग्रस्त होता जा रहा है, जिसका प्रभाव न केवल व्यक्ति विशेष पर पड़ता है बल्कि उनके द्वारा समाज की सामाजिक–आर्थिक दशा प्रभावित होती है। अनुसंधानों ने यह प्रमाणित कर दिया हे कि यदि पर्याप्त स्वास्थ्य सुविधायें जन–जन तक पहुँचायी जा सके तो अधिकांश बीमारियों को रोका जा सकता है। साथ ही साथ यह भी प्रमाणित हो चुका है कि जब तक कोई भी स्वास्थ्य के संबन्ध में लोगों को शिक्षित नहीं किया जायेगा तब तक कोई भी स्वास्थ्य कार्यक्रम सफल नहीं हो सकता है। अतः विद्यार्थियों को रोगों के कारणों तथा स्वस्थ आदतों के विशय में ज्ञान कराना आवश्यक होता है, और इस इकाई का यही प्रयास है। इस

प्राचीन चिकित्सा का उपयोग कोई भी व्यक्ति कर सकता है, यदि उसने इस क्षेत्र में अल्प ज्ञान भी प्राप्त कर लिया तो उसे हानि होने की कोई संभावना नहीं रहती है। अतः बिना किसी सोच विचार के इसका उपयोग किया जा सकता है। वर्तमान समय में शारीरिक स्वास्थ्य के साथ साथ मानसिक स्वास्थ्य की एक गंभीर समस्या उत्पन्न होती जा रही है। मानसिक चिंता, तनाव के कारण लोग परेशान हो रहे है, मिटटी चिकित्सा के उपयोग से शारीरिक व मानसिक रोगों को काफी सीमा तक नियंत्रण में लाया जा सकता है।

मिट्टी सभी रोगों की अचूक औषधि है इसमें विषैले तत्व को नष्ट करने की क्षमता होती है। मिट्टी चिकित्सा एक ऐसी विशिष्ट चिकित्सा पद्धति है। मिट्टी का उपयोग केवल रोगों के उपचार हेतु नहीं अपितु शरीर को बलशाली, पुष्ट एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता की वृद्धि के लिये भी करते हैं। मिट्टी चिकित्सा अमूल्य पद्धति है जिसका शरीर तथा मन दोनों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

## 10.7 शब्दावली

व्याधि–रोग

नैसर्गिक–प्राकृतिक

## 10.8 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1. काली तथा पिण्डोर
2. मुलतानी
3. ईट के भट्टे की मिट्टी

## 10.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची


1. जिंदल, राकेश, प्राकृतिक आयुर्विज्ञान, केन्द्रीय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनसंधान परिषद, नई दिल्ली
2. मिश्र, प्रयागदीन, प्राकृतिक चिकित्साः सिद्धांत एवं व्यवहार, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1998।
3. कूने, लूई (हिन्दी अनुवाद) आकृति से रोग की पहचान, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, दिल्ली, 1990।
4. जुस्ट, एडाल्फ प्राकृतिक जीवन की ओर , आरोग्य मन्दिर प्रकाशन, गोरखपुर 1951।
5. डॉ0 ओंकारनाथ, प्राकृतिक चिकित्सा का सामान्य ज्ञान, अनुपम प्रा0 चि0
6. हीरालाल, साइटिफिक नेचर क्योर, प्राकृतिक चिकित्सा परिषद, दिल्ली 1993।
7. शर्मा लक्ष्मन, प्रेक्टिकल नेचुरोपैथी, नेचरसेनीटोरियम, तमिलनाडु।
8. वर्मा जानकीशरण, रोगों की अचूक चिकित्सा, भारती भण्डार प्रकाशन, इलाहाबाद 1992।


## 10.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. मिट्टी के विविध प्रकारो का विस्तार पूर्वक वर्णन करें।
2. मिट्टी के गुण,सिद्धान्त तथा महत्व पर एक निबन्ध लिखिए।

# इकाई – 11 मिट्टी पट्टियों के प्रकार लाभ एवं सावधानियां

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 चिकित्सा योग्य मिट्टी तैयार करने की विधि
11.4 मिट्टी पट्टियों के प्रकार
11.5 मिट्टी पट्टियों के लाभ एवं सावधानी
11.6 सारांश
11.7 शब्दावली
11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
11.10 निबंधात्मक प्रश्न

## 11.1 प्रस्तावना

पाठको प्रस्तुत इकाई में आपको यह समझना है कि हमारे शरीर के विभिन्न रोगों में यह मिट्टी की पट्टियां कितनी असरकारक वह लाभदायी होती है। मिट्टी पट्टियां सभी प्रकार के खतरनाक और सामान्य तथा पुराने और नए रोगों में बड़ा जादूई असर छोड़ती हैं। मिट्टी एक ऐसी घरेलू दवाई है जो सर्वत्र सुलभ है, या सुरक्षित रखकर सुलभ की जा सकती है, और जिसके खराब होने का कोई प्रश्न ही नही है। रोग निवारणार्थ इसके प्रयोग में किसी प्रकार की कोई समस्या नहीं है। रोगों में मिट्टी का सफल प्रयोग आज का आविष्कार नहीं है जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, अपितु भारत में यह प्रयोग अति प्राचीनकाल से होता चला आ रहा है। आधुनिक डाक्टर असाध्य बनाकर छोड़ देते हैं, गीली मिट्टी इसमें रामबाण का काम करती है। आप जान गये होंगे कि मिट्टी पट्टियों का हमारे शारीरिक रोगों में कितना महत्व है, और इस इकाई में इसकी विस्तार से चर्चा की गयी है।

## 11.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य यह जानने का है कि मिट्टी का उपयोग हम किस स्तर पर और कैसे कर सकते हैं साथ ही यह भी जानना है कि इसके क्या लाभ है? वास्तविक प्रसन्नता पूर्ण स्वास्थ्य में ही है। यदि हम शारीरिक तथा मानसिक रूप से प्रसन्न हैं तो वास्तव में हम पूर्ण स्वस्थ भी माने जायेंगे। लेकिन वर्तमान में हम अपनी चिकित्सकीय विरासतों को बिसराकर इधर उधर भटकने लगे, जिससे मिला तो कुछ अधिक नहीं परंतु गवां अधिक दिया, यहॉ पर बात स्वास्थ्य की ही की जा रही है। अब आप समझ गये होंगे कि इसका उद्देश्य आपको यह अवगत कराने का है कि आपका शरीर पंचतत्वों से निर्मित है उसे इन्हीं तत्वों से हरा भरा रखने का प्रयास करें, ताकि आप स्वयं स्वस्थ हो अपने आस पास समाज को भी स्वस्थ दिशा धारा प्रदान कर सकें और यह तभी संभव है जब आप मिट्टी व मिट्टी की उपयोगिता बखूबी समझ लेंगे। प्राचीन समय में मिट्टी का उपयोग इतना

सर्वव्यापक था कि हमारे घर, बर्तन, रहन–सहन, आदि सब कुछ मिट्टी से जुड़ा हुआ ही होता था। इस लिये हमें पुनः इसकी महत्ता समझकर इसे अपने जीवन में स्थान देना होगा ताकि स्वास्थ्य की पूँजी कहीं बिखरने न पाए।

## 11.3 चिकित्सा योग्य मिट्टी की तैयार करने की विधि –

निम्नलिखित सावधानियों एवं नियम बरतने आवश्यक हैं–

- प्रयोग में लायी जाने वाली मिट्टी साफ सुथरे स्थान या खेत की दो और जमीन से एक या डेढ़ फिट नीचे की होनी चाहिये।
- मिट्टी को धूप में सुखाना अत्यंत आवश्यक है मिट्टी में सूर्य की किरणें लगने से जो भी कीड़े, मकोड़े, जीवाणु होते हैं वे नष्ट हो जाते है।
- इसके पश्चात् मिट्टी को छन्ने से छानकर कंकड़ पत्थर निकाल लेना चाहिये।
- मिट्टी चिकनी हो तो उसमें बालू मिला लें इससे मिट्टी में पानी (षोषण) करने की क्षमता बढ़ जाती है।
- इस प्रकार तैयार मिट्टी को प्रयोग करने से आठ घण्टे पूर्व एक तसले या किसी भी बर्तन में भिगो दें जिससे कि मिट्टी मुलायम हो जाये।
- मिट्टी को हाथ से नहीं छुयें बल्कि उसे किसी लकड़ी के यंत्र डन्डे से मिलाकर तैयार किया जा सकता है।
- मौसम के अनुसार ग्रीष्मकाल में ठण्डे जल से और शीतकाल में गरम जल से मिट्टी तैयार की जा सकती है।
- एक बार प्रयोग में लायी गई मिट्टी को दोबारा उपयोग में नहीं करनी चाहिये परंतु उस मिट्टी को दुबारा अच्छी तरह से धूप में 10–15 दिन सुखाकर उपयोग में लाया जा सकता है।

**उपकरण– सूती कपड़ा, पानी, मिट्टी, ऊनी कपड़ा, टब, लकड़ी का फ्रेम।**

## 11.4 मिट्टी पट्टियों के प्रकार

1. पेडू की मिट्टी पट्टी
2. गले की मिट्टी पट्टी
3. घुटने की मिट्टी पट्टी
4. सीने की मिट्टी पट्टी
5. सिर की मिट्टी पट्टी
6. ऑख की मिट्टी पट्टी
7. कान की मिट्टी पट्टी
8. मेरूदण्ड की मिट्टी पट्टी

## 11.5 मिट्टी पट्टी के लाभ एवं सावधानियां–

**पेडू की मिट्टी पट्टी–**

➢ सर्वप्रथम मिट्टी पट्टी बनाने के लिये लकड़ी के फ्रेम पर सूती कपड़ा बिछाकर तैयार मिट्टी को फ्रेम में रखकर उससे बराबर कर दें। फ्रेम न मिल पाने की अवस्था में छोटी ट्रे का प्रयोग भी कर सकते हैं।

- पट्टी लगाने से पूर्व रोगी को पीठ के बल लिटा दें फिर नाभि से चार अंगुल ऊपर और नाभि से चार अंगुल नीचे नापकर इस पट्टी को पेड़ू पर लगायें और फिर कपड़े से ढक दें।
- समय 15–20 मिनट तक पट्टी लगानी चाहिये। पट्टी निकालने के उपरान्त उस स्थान को अच्छी तरह पानी से साफकर पेट पर हाथ से सूखी मालिश या तेल से मालिष करें इससे रक्तसंचार सुचारू रूप होने लगता है।
- अधिक लाभ हेतु उपयोग करने से पूर्व जहाँ मिट्टी की पट्टी लगानी है या देनी है तो उस अंग को थोड़ा हाथ की हथेली से रगड़कर गरम कर लेना चाहिये इससे रक्त का संचार बढ़ जाता है।

**लाभ–**पेट संबन्धी सभी समस्याएं जैसे– अजीर्ण, कब्ज, गैस, अपच, सिरदर्द, पेचिश, फोड़े फुन्सी, खुजली, दाद, बवासीर, बुखार, टायफाईड, कमरदर्द मधुमेह, ल्यूकोरिया, मासिक धर्म की गड़बड़ी, गठिया, मोटापा, लीवर संबन्धी रोगों में भी लाभकारी है।

**सावधानी–**

- पेड़ू की पट्टी खाली पेट लेनी चाहिये भोजन के बाद 3–4 घण्टे का अन्तराल होना आवश्यक है।
- पट्टी लगाने के उपरान्त उसे मोटे कपड़े से ढक लें सर्दियों में ऊपर से ऊनी कम्बल भी ओढ़ सकते हैं।
- महिलायें मासिक धर्म में 4–5 दिन तक इस पट्टी का प्रयोग न करें
- गर्भवती महिलायें इसका प्रयोग न करें।

**मेरूदण्ड की मि्टटी पट्टी–** इस पट्टी को तैयार करने लिये रोगी के मेरूदण्ड की लम्बाई के बराबर मिट्टी की पट्टी तैयार की जाती है।

- इसमें रोगी को पेट के बल लिटाते हैं और उसके उपरान्त हल्के हाथ से पीठ पर सूखी मसाज करके इस पट्टी को लगाते हैं।
- समय 15–20 मिनट पट्टी रखना आवश्यक है। पूर्व में बतायी गई विधि के अनुसार पट्टी निकालकर पानी से उस स्थान को साफ करें।

**लाभ–** रीढ़ की हड्डी संबन्धी बीमारी दूर होती है कमर दर्द, मानसिक बीमारी, तनाव, सिरदर्द, अनिद्रा, आदि रोगों में लाभदायक होती है।

**सावधानी–** यह पट्टी कफ संबन्धी रोगों में नहीं देना है। इसके अतिरिक्त पूर्व में बताई गई सावधानियों को ही अपनायें।

**गले की मि्टटी पट्टी–**

- गले की पट्टी बनाने के लिये रोगी के गले की चौड़ाई और लम्बाई के अनुरूप मिट्टी की पट्टी तैयार करके गले पर लगायें और ऊपर से कपड़े से ढक दें।
- समय 15–20 मिनट बांधकर रखें। पट्टी का समय पूरा हो जाने पर मिट्टी को हटाकर गीले तौलिये साफ करें।

**लाभ–** गले संबन्धी समस्त बीमारी में उपयोगी है जैसे– कफ, टॉन्सिल, जुकाम, गले की खरास, थायराइड, गले की सूजन, गले में छाले आदि में लाभदायक है।

**सावधानी–**

- गले के ऊपर यदि दाने पड़े हैं और पक गये हों तो उस समय मिट्टी गले में नहीं लगाना चाहिये। दाने सूख जाने पर इसका उपयोग कर सकते हैं।
- बीच बीच में त्वचा गरम हो जाने पर पट्टी बदल सकते हैं।

**घुटने की मिट्टी पट्टी–**

- घुटने की पट्टी तैयारी करने के लिये जिस तरह पेड़ू की पट्टी बनाई जाती है उसी तरह फ्रेम में मिट्टी भरकर तैयार कर लेंगे। लगाने के लिये सीधे पीठ के बल लिटाकर पैर को सीधे रखते हैं और तैयार मिट्टी पट्टी को घुटने पर लगाकर उसे लपेट देंगे और ऊपर से कपड़ा लपेट देंगे।
- समय 15–20 मिनट तक रखें फिर मिट्टी को निकालकर गीले तौलिये से साफ कर लें।

**लाभ–**

- गठिया जैसे रोगों के लिये विशेष लाभकारी है। घुटने के दर्द में तो यह रामबाण सिद्ध होता है।

**सावधानी–**

- पट्टी हटाने के बाद उस स्थान को रगड़ देना चाहिये या कपड़े से उस स्थान को पोंछ दें। और रोगी को कपड़ें पहना दें।
- यदि किसी रोगी के पैरों में घाव हो तो वह इसका प्रयोग न करें।

**सीने का मिट्टी पट्टी–**

- सीने या छाती के पट्टी के लिये पूर्व में बताई गई विधि अनुसार तैयार मिट्टी को लकड़ी के फ्रेम में भरकर बराबर कर लें फिर गले से लेकर वक्ष के पूरे भाग के लिये जहॉ तक अस्थियां होती हैं वहॉ तक मिट्टी की पट्टी लगायी जाती है, और चौड़ाई इतनी होनी चाहिये कि पूरा वक्ष ढक जाये।
- समय 15–20 मिनट तक ही रखें।

**लाभ–**

- सीने में कफ संबन्धी बीमारी, जलन, अस्थमा, ब्रोंकाईटिस आदि में विशेष लाभकारी।

**सावधानी–**

- लंबे समय से यदि अस्थमा (दमा) हो तो किसी प्राकृतिक चिकित्सक के निर्देश में ही करें।

**सिर की मिट्टी पट्टी–**

- इस प्रकार की पट्टी गोल तैयार की जाती है जिससे सिर को पूरी तरह से ढका जा सके और कानों के ऊपर तक रहे तथा मस्तिष्क को भी पूरा ढक लेते हैं।
- समय 15–20 मिनट ही रखें।

**लाभ–**

- इसके उपयोग से सिरदर्द, सिर की गर्मी, माईग्रेन आदि रोगों में लाभकारी है।

**सावधानी–**

- जुकाम, जब अधिक हो तो उस समय मिट्टी की पट्टी का उपयोग न करें।

**ऑखों की मिट्टी पट्टी–**

- इस पट्टी को बनाने के लिये तैयार मिट्टी को लेकर एक साफ कपड़ा बिछाते हैं फिर उसमें बीच में मिट्टी के दो छोट छोटे गोले बनाकर रखते हैं और दोनों तरफ से मिट्टी को कपड़े से ढक देते है। इस पट्टी की चौड़ाई मस्तिष्क से लेकर ऑख तक होती है। लंबाई दोनो कानों को छूती रहती है। ऑख की पट्टी की मोटाई आधा इंच तक होती है।
- इस प्रकार तैयार पट्टी को लगाने के लिये रोगी को सीधे लिटा देते हैं और ऑख बंद करा दें और तैयार पट्टी को कपड़े सहित ऑख पर लगा दें।
- समय 15–20 मिनट तक रखें।
- पट्टी को जब निकालें उस समय ऑख बंद रखें क्योंकि मिट्टी सूखती है तो एकदम धूल कहीं अन्दर न चली जाये इसलिये ऑखें बंद किये पट्टी हटायें फिर ऑखों को कपड़े से साफ करें बाद में गीले कपड़े से साफ कर लें और धीरे धीरे ऑखें खोलें।

**लाभ–**

- ऑख की समस्त बीमारियों के लिये जैसे– ऑखों में जलन, ऑखों में पानी आना, ऑखों के नीचे काले धब्बे, ऑख की रोशनी का कमजोर होना, अनिंद्रा आदि रोगों में लाभदायक है।

**सावधानी–**

- अगर रोगी की ऑखों में सूजन, मोतियाबिन्द, जैसी समस्या हो तो इसका प्रयोंग न करें। ऑखें बंद करके ही इस मिट्टी पट्टी को लगायें। कपड़े सहित तैयार मिट्टी पट्टी को ऑखों पर लगायें।

**कान की मिट्टी पट्टी–**

- कान की पट्टी बनाने के लिये जिस प्रकार पूर्व में बताई गई विधि अनुसार तैयार मिट्टी को लेकर एक कपड़ा बिछाकर उस पर मिट्टी बीच में थोड़ी सी रखें।
- उस पट्टी को रोगी के कान के लंबाई अनुसार रखें। इस पट्टी की चौड़ाई आधा इंच की होती है।
- पट्टी को लगाने से पूर्व कान में रूई में लगा लें जिससे कि मिट्टी कान के छिद्रों में न जाये उसके बाद इस पट्टी को कपड़े सहित लगा दें और रोगी को करवट लिटा दें।

**लाभ–**

- कान का दर्द, बहरापन व कान संबन्धी अन्य बीमारी में लाभकारी।

**सावधानी–**

- कान यदि बह रहा हो तो इस पट्टी को न लगायें।
- इस पट्टी को लगाने से पूर्व कान में रूई लगा दें।

**रोग मुक्ति हेतु मिट्टी पट्टी के कुछ प्रयोग–**

गीली मिट्टी की पट्टी को रोग ग्रस्त अंग पर विशेष तरीके से प्रयोग कर हम रोगमुक्त हो सकते है। मिट्टी की पट्टी को बनाने की विधि हम आपको बता रहे हैं, जिन्हें आगे बताये गये रोगों पर प्रयोग किया जा सकता है।

**मिट्टी पट्टी का रोगों में प्रयोग–**

**कब्ज–** कब्ज को समस्त रोगों की जननी कहा जाता है। अतः कब्ज होते ही इसकी चिकित्सा तुरंत करनी चाहिये। कब्ज की चिकित्सा निम्न विधि से करें–

प्रातः शौच आदि से निवृत्त होकर खाली पेट पेडू पर गरम पानी की थैली से 10 मिनट सिंकाई करें और उसके बाद 45 तक गरम मिट्टी की पट्टी लगायें। (गरम मिट्टी पट्टी से आशय है, जैसा कि पीछे पट्टी बनाने की विधि में बताया जा चुका है। कि मिट्टी की पट्टी लगाकर ऊपर से ढक दें।) जीर्ण कब्ज में इसे सुबह– शाम दानों समय किया जा सकता है। शाम को भोजन से पहले ही यह प्रयोग करें।

**बवासीर–** बवासीर कब्ज का ही परिणाम होती है इस रोग में मलद्वार के बाहर व अन्दर की नाड़ियां सूजन की वजह से फूल जाती हैं। इस रोग की चिकित्सा कब्ज की चिकित्सा विधि के अनुसार करें। इसके अतिरिक्त गुदा द्वार के मस्सों पर भी गीली मिट्टी की पुल्टिस (गेंद जैसी) रखें एवं उसे किसी गर्म ऊनी कपड़े से बांध दें।

**दाद–** दाद एक ऐसा चर्मरोग है जो जल्दी ठीक नही होता परंतु प्राकृतिक चिकित्सा से इससे मुक्ति पायी जा सकती है। इसके लिये दादग्रस्त स्थान पर 5 मिनट गर्म सेंक देने के बाद लगभग 30 मिनट के लिये गीली मिट्टी की ठण्डी पट्टी का प्रयोग करना चाहिये।

**खुजली–** इस रोग में छोटी–छोटी फन्सियां निकलती हैं जिनमें खुजली एवं जलन होती है। इस रोग की चिकित्सा निम्न विधि से करें–

1. प्रातः खाली पेट पेडू पर गर्म सेंक 10 मिनट, तत्पश्चात पेडू पर गर्म मिट्टी की पट्टी 45 मिनट तक और एनिमा (नीम की पत्तियों को डालकर उबाले गये पानी का एनिमा जिसकी विधि नीचे गई है।
2. खुजली किसी अंग विशेष में हो तो वहॉ पर 5 मिनट गर्म सेंक देकर दिन में दो बार 30 मिनट के लिये गीली मिट्टी की ठण्डी पट्टी लगायें और यदि पूरे शरीर में हो तो पूरे शरीर का गीली मिट्टी स्नान लें।

**हिचकी–** हिचकी ऐ ऐसी किया है जो कभी न कभी प्रत्येक व्यक्ति को आती है, परन्तु सामान्य स्थिति में यह 1–2 मिनट में स्वतः बन्द भी हो जाती है पर यदि यह कई घण्टों या कई दिनों तक बन्द न हो तो कष्टकारी हो जाती है तक इसे रोग की संज्ञा दी जाती है। यह स्थिति किसी प्रकार गंभीर रोग की चेतावनी भी हो सकती है। इस अवस्था में निम्न उपचार ले–

- प्रातः खाली पेट पेडू पर गर्म सेंक 10 मिनट तक और पेडू पर मिट्टी की गर्म पट्टी 45 मिनट तक रखें।
- सायंकाल यह प्रयोग पुनः करें।

**ततैया, मधुमक्खी, बिच्छू आदि का विष उतारने के लिए–** जहॉ पर विषैला कांटे या डंक का स्थान हो वहॉ पर खूब ठण्डे पानी से धोयें या गीले कपड़े को पानी भिगोकर बार–बार रखें। 5 मिनट में ठण्डा करने के बाद उस स्थान को हथेली से रगड़े, तत्पश्चात् गीली मिट्टी की ठण्डी पट्टी दिन कई बार 30–30 मिनट के लिये लगायें। जहर उतर जायगा। दर्द, सूजन समाप्त हो जायेगी।

**एक्जिमा –** यह एक ऐसा कष्टपूर्ण रोग है जो दवाओं से जड़ से ठीक नहीं होता परंतु यदि प्रतीक्षा एवं विश्वासपूर्वक इसकी प्राकृतिक चिकित्सा की जाये तो निश्चित रूप से इस रोग से मुक्ति मिल सकती है। इस उपचार में पेडू पर गर्म सेंक 10 मिनट। पेडू पर गर्म मिट्टी पट्टी 45 मिनट तक  साथ ही नीम की पत्तियों को डालकर उबाले गये पानी का एनिमा लें। एक्जिमाग्रस्त स्थान पर गर्म सेंक 5 मिनट, तत्पश्चात् गीली मिट्टी की लगभग 1 इंच मोटी पट्टी 45 मिनट तक रखें। यह क्रिया दोपहर और सायंकाल भी करें। इस रोग में रोगी का आहार सादा और सात्विक भोजन ही हो।

**बुखार –** बुखार की अवस्था में पेडू पर गीली मिट्टी पट्टी दिन मे 3–4 बार रखें और समय 30–30 मिनट का होना चाहिये।

विशेष–

- तेज बुखार में यदि घबराहट बहुत बढ़ जाये तो पेडू पर गीली मिट्टी की ठण्डी पट्टी के साथ साथ माथे पर भी गीली मिट्टी की ठण्डी पट्टी का प्रयोग करें।
- कंपकपी के साथ बुखार हो तो मिट्टी पट्टी का प्रयोग न करें।
- बुखार की अवस्था में नींबू पानी, जूस या सूप के अतिरिक्त कोई ठोस आहर न लें।

बालू भी मिट्टी को ही बोला जाता है जो किसी भी मनुष्य के लिये उसी तरह जरूरी है जिस तरह से भोजन और पानी। लेकिन बालू मिट्टी के गुणों को केवल प्राकृतिक चिकित्सक ही अच्छी तरह जानते हैं। प्राकृतिक दशा में खाई जाने वाली ये चीजें जैसे साग–सब्जी, खीरा, ककड़ी आदि के साथ हमेशा बालू मिट्टी का कुछ भाग जरूर होता है, जिसे हम जानकारी ना होने के कारण गंवा देते हैं। ये बालू मिट्टी के कण हमारी भोजन पचाने की क्रिया को ठीक रखने में मदद करते हैं।

क्या किसी ने सोचा है कि पहाड़ी झरनों के पानी को स्वास्थ्य के लिये अच्छा क्यों बताया जाता है? इस पानी को पीने से भूख ज्यादा क्यों लगती है और पाचन क्रिया क्यों ठीक होती है? यह सब इसलिए होता है क्योंकि इस पानी में बालू मिट्टी के कुछ अंश मिले हुये होते हैं, जिन्हें पानी के साथ पिया जाता है। ये झरने जो पहाडों से बहकर आते हैं और अपने साथ बालू मिट्टी का ढेर लाते है, और ये पानी भोजन को पचाने वाले साबित होता है। बालू मिट्टी के अंदर जहर को समाप्त करने की ताकत होती है। बालू मिट्टी प्रकृति की ओर से मानों संक्रमण को दूर करने वाली दवा का काम करती है। प्रयोगों द्वारा ये साबित हुआ है कि बालू मिट्टी मनुष्य के स्वास्थ्य के लिये बहुत ही ला भकारी है। जिस व्यक्ति को पेट के रोग जैसे – कब्ज, शौच, खुलकर न आना हो वो अगर खाना खाने के बाद ही एक चुटकी समुद्री बारीक बालू मिट्टी दिन में 2–3 बार निगल लें तो दूसरे दिन

ही पेट की ऑतें ढीली पड़ जायेंगी और मल आसानी से निकलने लगेगा तथा आखिर में कब्ज भी दूर हो जायेगी।

**अभ्यास प्रश्न–**

1.मिट्टी की पट्टियों के लिए सबसे उपयुक्त कपडा कौन सा होता है।

2.चुम्बकीय गुण किन तत्वों में सर्वथा अधिक है।

## 11.6 सारांश

मिट्टी की विविध पट्टियों के बारे में आपने इस इकाई में अध्ययन किया।स्मरण रहे प्राकृतिक चिकित्सा में जीर्ण रोगी के स्वास्थ्य लाभ में समय लगता है। इसका एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि व्यक्ति हर जगह से थक हार कर इसकी ओर मुड़ता है और फिर अपने साथ जगह जगह से एकत्र किया हुआ औषधीय विष लेकर आता है जो प्राकृतिक चिकित्सक के कार्य को और भी बढ़ा देता है। जिससे रोगी के आरोग्य लाभ में समय लग सकता है। इस लिये रोगी को धैर्यपूर्वक प्राकृतिक चिकित्सा करवानी चाहिये जिससे पूर्ण लाभ मिल सके।

पाठको औषधि उपचार का सिद्धांत है कि रोग बाहरी चीज है जिसका शरीर पर आक्रमण होता है। अतः इसे औषधियों के माध्यम से दूर करना चाहिये। बाहर से आये कीटाणुओं को औषधियों से समाप्त करना चाहिये। जबकि संपूर्ण प्रकार की औषधियां एक प्रकार का विष हैं जिनसे व्यक्ति ठीक कैसे हो सकता है। एक निर्धारित मात्रा से अधिक लेने पर व्यक्ति की मौत हो सकती है लेकिन विष तो विष है आज नही तो कल अपना प्रभाव दिखायेगा ही। क्योंकि एक ही बार में ली गयी नींद की गोलियां व्यक्ति को तुरंत समाप्त कर देती हैं। लेकिन धीरे धीरे ली गयी गोलियां व्यक्ति को पंगु बनाती हैं शरीर को धीरे धीरे खाती हैं आज मिलने वाली दवा पर कुछ समय बाद प्रतिबंध लग जाता है। सभी दवाओं पर सावधानी के निर्देश दिये रहते हैं। प्रो0 ए0 क्लार्क के अनुसार ''हमारी सभी आरोग्यकारी औषधियां विष हैं और इसके फलस्वरूप औषधि की हर एक मात्रा रोगी की जीवनी शक्ति का ह्रास करती है।'' फिर भी मनुष्य उनका उपयोग करता रहता है लेकिन प्राकृतिक चिकित्सा में किसी प्रकार की औषधियों का प्रयोग नहीं किया जाता है। औषधियों को अत्यधिक हानिकारक माना जाता है जिससे रोग कम होने के बजाय बढ़ता जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा मानती है कि शरीर औषधि से नही बल्कि प्रकृति से निर्मित हुआ है इसलिये पंचतत्वीय शरीर की चिकित्सा के लिये पंच तत्वों का ही प्रयोग किया जाता है क्योंकि प्रकृति से बड़ा चिकित्सक और कोई नहीं है। प्रकृति के सभी सप्राण खाद्य पदार्थ ही औषधि है। शुद्ध वायु, धूप, जल आदि ही औषधि हैं जो रोग को दूर करने की क्षमता रखते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा में कृत्रिम औषधियों का प्रयोग वर्जित माना जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा में विषैली औषधियों को शरीर के लिये अनावश्यक ही नहीं घातक भी समझा जाता है। प्रकृति चिकित्सक है दवा नहीं। औषधि का काम रोग छुड़ाना नहीं है बल्कि यह वह सामग्री है जो प्रकृति के द्वारा मरम्त के काम में लगाई जाती है। इस लिये प्राकृतिक चिकित्सा में सभी सप्राण खाद्य सामग्री ही औषधि हैं।

जीर्ण रोगी का अर्थ है जिसमें रोग लंबे समय से बैठा है। उसे समाप्त करने में समय लगता है। जीर्ण रोग न तो बहुत जल्दी आते है और न ही पलक झपकते ठीक हो सकते हैं। जीर्ण रोग उस पेड़ के समान होते हैं जो कई वर्षो से अपनी जड़े जमाये हुये हैं इसलिये उसकी जड़े जमीन में बहुत अंदर तक चली जाती है। पेड़ को तने से बहुत

जल्दी काटा जा सकता है। इसी प्रकार जीर्ण रोग भी शरीर में बहुत जड़ें बना लेते हैं और उन्हें जड़ से मिटाने में थोड़ा समय लगता है।

वर्तमान समय की चिकित्सा पद्धतियां रोग के लक्षणों को मिटाती है जो कुछ समय के लिये होता है और बार बार उभर कर सामने आती रहती है। क्योंकि जल्दी आराम पाने के चक्कर में वे औषधियों के माध्यम से रोग रूपी पेड़ के तने को काटते हैं जिसके कुछ समय बाद फिर अंकुर आकर वही पेड़ बन जाता है लेकिन प्राकृतिक चिकित्सा रोग को जड़ से मिटाने का प्रयास करती है और साथ ही जीवनी शक्ति का विकास करती है जो कि औषधियों के सेवन से नष्ट होती है।

यह मनुष्य का दुर्भाग्य ही है कि वह प्रकृति से दूर होता जा रहा है और कृत्रिम दुनियां में जी रहा है। आज की औषधियां इसी का उदाहरण है जिन्हें खा कर मनुष्य सोचता है कि वह स्वास्थ्य को प्राप्त कर रहा है। परन्तु सत्य यह है कि वह खुशी से जहर खा रहा है जो धीरे धीरे उसे अंदर से खाये जा रहा है जिसका पता उसे कुछ समय बीत जाने के बाद लगता है। जब वह एक रोग को दूर करने के लिये ली गई औषधियों के कारण दूसरे रोग को आमंत्रित कर देता है।

## 11.7 शब्दावली

ग्रीष्म–गर्मी

शीत–ठंडा

अजीर्ण–अपच

## 11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.सूती 2.पृथ्वी

## 11.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 राकेश जिंदल, प्राकृतिक आयुर्विज्ञान
2. डॉ0 ओंकारनाथ, प्राकृतिक चिकित्सा का सामान्य ज्ञान, अनुपम प्रा0 चि0
3. आचार्य पं0 श्रीराम शर्मा, गायत्री महाविज्ञान संयुक्त संस्करण भाग 3
4. डॉ0 दीनदयाल, प्राकृतिक चिकित्सा सिद्धांत एवं व्यवहार
5. डॉ0 नागेन्द्र कुमार 'नीरज', प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग
6. आचार्य पं0 श्रीराम शर्मा, अखण्ड ज्योति दिसम्बर 1973
7. दास, एस, पी0 आदर्श आहार, आरोग्य मन्दिर प्रकाशन गोरखपुर 1986।

## 11.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. मिट्टी पट्टियों के प्रकार लिखें तथा मिट्टी पट्टी बनाने की विधि समझाएं।
2. मिट्टी पट्टी देते समय विभिन्न सावधानियां कौन कौन सी हैं? रोगों के अनुसार स्पष्ट करें।

# इकाई 12 पाचन तंत्र एवं उत्सर्जन तंत्र संबंधित रोगों की पृथ्वी चिकित्सा

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 पाचन तंत्र का सामान्य परिचय
12.3.1 पाचन तंत्र के रोग – जीर्ण वृहान्त्र शोथ
12.3.2 आंत उतरना
12.3.3 मधुमेह
12.3.4 पित्ताशय की पथरी
12.3.5 पीलिया
12.3.6 मोटापा
12.4 उत्सर्जन तंत्र का सामान्य परिचय
12.4.1 उत्सर्जन तंत्र के रोग – मूत्राशय और वीर्य पथरी
12.4.2 मूत्र का न बनना या कम बनना
12.4.3 मूत्राशय और मूत्र ग्रन्थि प्रदाह तथा रक्त–मूत्र
12.4.4 नेक्रोटिक सिंड्रोम
12.4.5 मूत्रविषमयता
12.5 मिट्टी तत्व चिकित्सा सिद्वान्त एवं विधियाँ
12.6 पाचन तंत्र और उत्सर्जन तंत्र के रोगों की मिट्टी चिकित्सा पद्धतियाँ
12.7 सारांश
12.8 अभ्यास प्रश्न
12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
12.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.12 निबंधात्मक प्रश्न

## 12.1 प्रस्तावना

जीवन को निरंतर चलायमान रखने के लिए खाद्य पदार्थो की आवश्यकता होती है। जो हमें भोजन के द्वारा प्राप्त होती है जिससे हमें शक्ति एवं ऊर्जा मिलती है। पाचन तंत्र के द्वारा भोजन से पाचक रसों को अवशोषित किया जाता है एवं उत्सर्जन तंत्र के द्वारा अपशिष्ट पदार्थो का निष्कासन किया जाता है।

पृथ्वी चिकित्सा के महत्व को जानते हुए भारतीय एवं पाश्चात्य प्राकृतिक चिकित्सकों ने बड़े स्पष्ट रूप से और विस्तार से इसके विषय में चर्चा की है कि पृथ्वी चिकित्सा का क्या महत्व है, व कितने प्रकार के है, कौन–कौन से रोग में उसकी उपयोगिता है एवं उसका प्रयोग कैसे किया जाता है। प्रस्तुत इकाई में विस्तार से इसका वर्णन किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस तंत्र से संबंधित विभिन्न रोगों की पृथ्वी चिकित्सा के महत्व को समझ सकेगें।

## 12.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई द्वारा आप पृथ्वी चिकित्सा के विभिन्न पहलुओं को जान पायेंगेः–

1. पाचन तंत्र एवं उत्सर्जन तंत्र की सामान्य जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
2. पाचन तंत्र से संबंधित रोगो की जानकारी प्राप्त करेगें।
3. उत्सर्जन तंत्र से संबंधित रोगो की जानकारी प्राप्त करेगें।
4. पाचन तंत्र एवं उत्सर्जन तंत्र के रोगो के लक्षण एवं कारण जान सकेगें।
5. पृथ्वी चिकित्सा द्वारा उपचार जान सकेगें।

## 12.3 पाचन तंत्र का सामान्य परिचय

हमारे शरीर में जो अंग भोजन को पचाने, पोषक तत्वो को रक्त में मिलाने और प्रत्येक कोशिका तक पहुंचाने में सहायक होते हैं उन्हें हम पाचक अंग कहते हैं। ये सभी अंग मिलकर एक स्वतंत्र प्रणाली अथवा तंत्र बनाते हैं जो, जो पाचन तंत्र कहलाता है।

मानव शरीर एक इंजन के समान है, जिस प्रकार इंजन को चलाने हेतु कोयले अथवा डीजल की आवश्यकता होती है उसी प्रकार हमारे शरीर को चलाने के लिये भोजन की आवश्यकता होती है। मनुष्य के लिये वायु और जल के बाद सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता भोजन ही है। भोजन जैविक क्रियाओं के लिये ऊर्जा का स्त्रोत है। शरीर की निरन्तर क्रियाशीलता बनाये रखने के लिये भोजन की आवश्यकता होती है। पाचन के द्वारा आहार के विभिन्न तत्वों को अत्यंत सूक्ष्म रूप में बदलकर उन्हें इस योग्य बनाया जाता है कि वे रक्त में सरलता से अवशोषित हो सकें।

### 12.3.1 पाचन तंत्र के रोग – जीर्ण वृहान्त्र शोथ

पाचन तंत्र के विभिन्न रोगों में से एक रोग है – जीर्ण वृहान्त्र शोथ रोग। आप यहाँ इस रोग का विस्तृत अध्ययन करेंगे। यह बड़ी आंत का रोग है। इससे बड़ी आंत की श्लेष्मिक झिल्ली में सूजन आ जाती है। कई रोगियों के पेट में घाव भी हो जाते हैं, जिससे आंव के साथ रक्त भी आने लगता है। घाव होने से रोग जीर्ण हो जाता है और ठीक होने में समय लगता है। दार्घकालीन जीर्ण कोष्ठबद्धता के परिणाम स्वरूप संचित मल सड़कर विषाक्त हो जाता है। मल के संस्पर्श से ही वृहदान्त्र की वृद्धि होती है और वृहदान्त्र में व्यथा, प्रदाह की सृष्टि होती है।

अधिकतर रोगी उदर रोग के लिए दमनकारी औषधि तथा आंतों की कार्य क्षमता को बढ़ाने के लिए बाह्य औषधि का सहारा लेते हैं और इस बुरी आदत से निष्कासन के कार्य को अस्त–व्यस्त करके वृहदान्त्र प्रदाह पैदा कर लेते हैं। अयुक्ताहार–विहार और रेचक औषधि मिलकर जीर्ण कोष्ठबद्धता तो उत्पन्न करेंगे ही और इसका अनुगामी वृहदान्त्र प्रदाह होना निश्चित है। जब तक लोग कोष्ठबद्धता से ग्रस्त रहेंगे, तब तक वृहदान्त्र प्रदाह का

पुनरागमन की सदा सम्भवना बनी रहती है। सारांश यह है कि तीव्र अवस्था को औषधियों के द्वारा दबाने के फलस्वरूप ही वृहदान्त्र प्रदाह होता है।

**वृहादान्त्र का स्थान–** क्षुद्रान्त छोटी आंत, जहाँ समाप्त होती है, वहाँ से वृहदान्त्र की नली आरंभ होती है। वृहदान्त्र की नली क्षुदान्त्र की नली से चौड़ी है, पर उसकी लम्बाई कम है। जहाँ पर क्षुद्रान्त्र की नली, क्षुद्रान्त्र से मिलती है, ठीक उसके नीचे एक थैली है, जिसे अन्धनाल, अन्त्रपुट या अन्धादन्त्र कहते हैं जो पेट में दाहिने तरफ है और उसमें ऊपर से ही वृहदान्त्र आरम्भ हो जाती है। वृहदान्त्र पहले पेट के दाहिन भाग में ऊपर की ओर जाती है। फिर वहाँ से यकृत और आमाशय के नीचे से निकलती हुई बाईं तरफ जाती है और प्लीहा के पास से यह बड़ी आंत नीचे को उतर जाती है। इसका बिल्कुल अंतिम भाग मलाशय है, जिसके बाहरी दरवाजे को मलद्वार या गुदा कहते हैं।

**कारण :**

यहाँ आपको इस रोग के कारण जानने को मिलेगे आइए समझते है इसके विभिन्न कारणों को :–

1. दीर्घकालीन कोष्ठबद्धता (कब्ज) इसका उत्तेजित कारण होता है।
2. अधिक तलाभुना भोजन करना।
3. आधुनिक रहन–सहन, अनियमित खान–पान।
4. अधिक औषधियों का सेवन करना।
5. अस्त–व्यस्त जीवनचर्या आदि।

**लक्षण :**

1. रोगी कमर में और पीठ में यन्त्रणा अनुभव करता है।
2. थोड़ा खाने के बाद पेट भारी जान पड़ता है, पेट में हवा बनना शुरू हो जाती है, पेट फूलना।
3. पेट में गुड़गुड़ाहट तथा दर्द होता है।
4. निचले उदर तथा निम्न वस्ति प्रदेश में पीड़ा तथा व्यथा होती है।
5. उपेक्षित वृहदान्त्र शोथ फोड़ा में बदल जाता है और बड़ी आंत की दीवारों को नष्ट कर देता है।

**आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने जीर्ण वृहदान्त्र शोथ को तीन श्रेणियों में बांटा है–**

**अ. म्यूकस कोलाइटिस –** इसमें कष्टदायक कब्ज, उदर में बेचैनी, सख्त मरोड़ के साथ गुदा मार्ग से म्यूकस (श्लेष्मा) वृहदान्त्र स्थित मल को पतला करके (जिसे अतिसार कहते हैं) देह से निकालता है। इस तरह वृहदान्त्र संचित मल से मुक्त होने के बाद वृहदान्त्र की पीड़ा और दर्द दूर होते हैं।

**ब. केटेरल कोलाइटिस–** मलविष से वृहदान्त्र की झिल्ली भी विषाक्त होती है। इस विषाक्त झिल्ली के अत्यधिक प्रदाह से शरीर में ज्वर होता है, पेट में तथा पेट के निचले भाग में बहुत तेज पीड़ा पैदा होती है। शरीर के विभिन्न स्थान पर छोटी–छोटी फुन्सियाँ पैदा होती है। असहनीय रोग की पीड़ा से कभी–कभी रोगी बेहोश भी हो जाता है। यह औषधि से ठीक नहीं होता। जब आन्त्रिक रोग को दवाओं द्वारा बार–बार दमन किया जाता है तो आंतों में तीव्र प्रदाह हो जाती है और जब इस तीव्र अवस्था का दवाओं से दमन किया जाता है तो यह जीर्ण हो जाती है और जीर्ण अवस्था जब तीव्र रूप धारण करती है और उसे बार–बार दबाया जाता है तो अल्सरेटिव कोलाइटिस को रूप ले लेती है।

**स. अलसरेटिव कोलाइटिस–** यह टायफायड ज्वर, क्षय रोग, उपदंश, पेचिस आदि की दमनकारी चिकित्सा से होता है। विषाक्त मल, जहरीले म्यूकस और विषाक्त आन्त्रिक एसिड के स्पर्श से वृहदान्त्र की झिल्ली में क्षत पैदा होता है। तब मल के साथ क्षत से मरोड़ के साथ पतले खूनी दस्त, पीव और म्यूकस इत्यादि निकलते हैं। गुदा में कभी–कभी ऐंठन, उदर का प्रायः फुला रहना, अनियमित ज्वर एवं अधिक कमजोरी होती है। इस रोग के विषाक्त मल में एक प्रकार के जीवाणु पैदा हो जाते हैं। इसलिए इस रोग को बैसिलरी डिसेण्ट्री नाम से भी जाना जाता है। यह कैटेरल या अल्सरेटिव कोलाइटिस दीर्घ स्थायी होने पर उदर में कैंसर रोग भी पैदा कर सकता है।

**सामान्य चिकित्सा :**

**तात्कालिक आराम के लिएः–**

1. दर्द से आराम पाने के लिए गर्म पानी की बोतल का सेंक देना चाहिए या गर्म–ठण्डा सेंक के बाद गर्म पानी का एनिमा देना चाहिए।
2. गुनगुने पानी के साथ नीबू रस का एनिमा देने के बाद 250 ग्राम दही के पानी का एनिमा देना चाहिए या 250 ग्राम गुनगुने पानी में एक चम्मच दुग्ध शर्करा मिलाकर एनिमा देना चाहिए।
3. तीव्र आन्त्रिक प्रदाह में वायु संचित होने पर उदर का गरम–ठण्डा सेंक देकर उस पर निचोड़ी हुई सूती लपेट तथा उसके ऊपर ऊनी पट्टी का लपेट दीजिए। बाद में थोड़ी–थोड़ी मात्रा में मट्ठा लेवें।
4. तीव्र वृहदान्त्र प्रदाह में जब छोटी–बड़ी दोनों आंतें प्रभावित हो तो विश्राम कीजिए तथा सूजन, प्रदाह अथवा जख्म के स्थान अथवा पूरे उदर पर मिट्टी की पट्टी या गीली पट्टी बांधिये।
5. प्रतिदिन नीम के पानी का एनिमा देने के तुरंत बाद दही के पानी का एनिमा दीजिए।
6. प्रतिदिन दुग्ध, शर्करा या जौ का पानी पीना।
7. हरी सब्जी का जूस या फल जूस पीना।
8. तीव्र अवस्था शांत होने पर बड़ी आँत साफ रखने के लिए दो सप्ताह तक रात को सोते समय 250 ग्राम गुनगुने पानी का शक्तिदायक एनिमा लेना।

**स्थायी आराम के लिएः–**

1. जिस खाद्य से यह रोग होता है, उसका प्रयोग छोड़ दीजिये।
2. इसके बाद कुछ दिन या एक सप्ताह सब्जी जूस या फल जूस (गाजर, कच्चा पपीता, सफेद पेठा, किशमिश, खीरा, लौकी, पत्ता गोभी, पालक, अनानास, नासपाती, सेव, संतरा शलजम इत्यादि) दिन में तीन–चार बार लेते रहे। सुधार होने पर गर्म पानी का एनिमा भी लें।
3. मट्ठा–कल्प अच्छा रहता है। मट्ठा कल्प की असुविधा होने पर कम से कम छः सप्ताह दिन में कई बार थोड़–थोड़ी मात्रा में बारी–बारी से मिठा मट्ठा एवं फल धीरे–धीरे चबाकर खांए।
4. यदि शौच में श्लेष्मा आव आये तो दो–तीन दिन सेव आहार में दें। इसबगोल का प्रयोग भी लाभप्रद है।
5. कब्ज रहने पर गर्म पानी में नीबू रस मिलाकर एनिमा लें। प्रातः सायं खाली पेट शरीर की वैज्ञानिक ढ़ंग से मालिश तथा प्रातः यथाशक्ति वायु या सूर्य–स्नान।

6. रात को साते समय पेडू की गीली पट्टी या लपेट दो सप्ताह तक करायें तदुपरांत प्रातः पेडू पर मिट्टी–पट्टी 30–45 मिनट, कटिस्नान (10–15 मिनट के बाद) शरीर गर्म कर लेना चाहिये। ठण्डक लगने पर स्नान का समय कम कर लेना चाहिये या गर्म–जल का टब स्नान दें।

7. हर समय प्रसन्नचित्त रहें।

**विशेषः–**

1. उपचार में प्रारम्भ में छिलकेदार सख्त सब्जी न दें, बल्कि छिलके उतारकर या मुलायम सब्जी दें।
2. एनिमा का पानी गुनगुना या शरीर के ताप के अनुसार होना चाहिये।
3. शुरु में ठण्डे पानी का टब स्नान न दें, बल्कि गुनगुने पानी का टब स्नान दें।
4. वायु अर्थात् गैस बनने की हालत में करेला, परवल आदि की सब्जी दें।
5. पक्के बेल की जगह कच्चे बेल को भूनकर देना अधिक लाभप्रद है।

जीर्ण वृहदान्त्र शोथ से मुक्ति का सर्वोत्तम उपाय है– प्राकृतिक साधनों से कब्ज पर विजय, बाह्य औषधि का परित्याग, युक्ताहार–विहार का प्रयोग, संतुलित मन, योगाभ्यास करके इस असाध्य रोग से छुटकारा पाया जा सकता है।

**12.3.2 आंत उतरना–** आंत उतरने की बीमारी अथवा अंत्रवृद्धि को अंग्रजी में हर्निया कहते हैं। शरीर की कमजोरी, विशेषकर पेडू में विकृत पदार्थ का अनावश्यक भार पड़ने के फलस्वरूप तलपेट की मांसपेशियों की कमजोरी की वजह से इस रोग की उत्पत्ति होती है। इसमें पेशियों में, उस स्थान पर जहाँ एक दूसरी पर पड़ती या एक दूसरे को पार करती हुई छल्ले का रूप धारण करती है, विच्छेद हो जाता है उस वृत्त उदरावरण जिसमें पेट के सारे पाचन यन्त्र रहते है, निम्नलिखित कारणों से धक्का खाकर या भार से दबकर आंत के साथ नीचे लटक आता है। यही आँत उतरने की बीमारी है।

**कारण :**

1. कब्ज होने पर मल के दबाव से,
2. कठिन व्ययाम करने से,
3. खांसी, छींक, जोर की हंसी, चीत्कार, कूदने तथा पाखाना के वक्त जोर लगाने से,
4. पेट में वायु का प्रकोप होने से,
5. मल–मूत्र के वेग को रोकने से,
6. भारी बोझ उठाने तथा अधिक पैदल चलने से,
7. शरीर को अनावश्यक टेढ़ा–मेढ़ा करने से,
8. भोजन संबंधी गड़बड़ी एवं मद्यपान के कारण उदर की पेशियों के फूल जाने से।

**लक्षण :**

1. कमजोरी,
2. पेट में दर्द,
3. चक्कर आने लगता है,
4. असहनीय दर्द होता है,
5. ज्वर आ जाता है।

**सामान्य चिकित्सा :–**

1. शीतल जल से 'स्पाइनल बाथ' देने से उदर की मांसपेशियों को शक्ति प्राप्त होती।
2. पूर्ण उपवास और विश्राम करना चाहिये।

3. कब्ज होने पर एनिमा के जरिये थोड़ा पानी बड़ी आंत में चढ़ाकर उसमें स्थित मल को बाहर निकाल फेंकने से भी आंत अपने स्थान पर चली जाती है।
4. रूग्ण स्थल पर प्रतिदिन सुबह और शाम चित लेटकर नियमपूर्वक मालिश करनी चाहिये।
5. पेडू पर मिट्टी की गीली पट्टी का प्रयोग आध घंटे तक करना चाहिये।
6. भाप देने से अधिक लाभ होता है।

**12.3.3 मधुमेह–** आधुनिक युग की एक आम बिमारी है – ''मधुमेह'' इस बिमारी से ग्रसित रोगीयों की संख्या दिनोदिन बढ़ती जा रही है। यह रोग अक्सर पाचन संस्थान विशेषकर क्लोम ग्रंथि की ठीक ढंग से काम न करने से होता है। यह पढ़ने–लिखने वालों, आलसियों एवं केवल स्वादिष्ट भोजन करने के लिए जीने वालों का एक विशेष रोग है, जो शरीर को बहुत आराम देते हैं और उससे मेहनत का काम बहुत कम लेते हैं।

श्रम जीवियों और स्त्रियों को यह रोग बहुत कम होता है। यह रोग अधिकतर चालीस वर्ष से ऊपर वाले आयु के बुद्धिजिवी पुरूषों में पाया जाता है। कब्ज इस रोग का प्रधान कारण है। 90 प्रतिशत मधुमेह के रोगी या तो मोटे होते हैं या मोटे रह चुके होते हैं। रोग बढ़ने के साथ उनका वजन भी घटना शुरू हो जाता है। इसमें शरीर की धमनियां कड़ी पड़ जाती है इसकी वजह से इस रोग से 66 प्रतिशत मौतें होती हैं। मधुमेह को प्रमेह, बहुमूत्र तथा पेशाब में चीनी आना भी कहते हैं। मधुमेह की दो किस्में हैं। एक पेशाब में चीनी आती है परन्तु दूसरे में चीनी बिल्कुल नहीं आती, केवल पेशाब ही अधिक होता है।

**बिना चीनी वाला मधुमेह –**

**कारण :**

1. शराब के अधिक प्रयोग करने,
2. ठण्ड लगने तथा अधिक ठण्डा जल सेवन करने
3. परिश्रम न करने
4. स्नायु दौर्बल्यता से
5. मानसिक उत्तेजना होने से।

**लक्षण :**

1. बहुमूत्र में 24 घंटो में लगभग एक गैलन मूत्र शरीर से बाहर निकलता है।
2. इस रोग में पानी जैसा पेशाब अधिक मात्रा में बार–बार आता है।
3. शरीर का तरल मल जो पसीने के रूप में निकलता है बजाय रोम कूपों के रास्ते निकलने के गुर्दों में जमा होकर पेशाब के रास्ते बहुमूत्र के रूप में निकलने लगता है।

**सामान्य चिकित्सा :**

1. कब्ज दूर करने के लिए कम से कम एक सप्ताह तक रसाहार करना चाहिये।
2. गरम और ठण्डे पानी का एनीमा लेना चाहिये।
3. रात भर के लिये कमर की भीगी पट्टी भी लगानी चाहिये।
4. 5 मिनट तक भाप स्नान लेना चाहिये।
5. ठण्डे जल से साधारण स्नान लेना चाहिये।
6. समूचे शरीर पर भीगी चादर की लपेट देनी चाहिये तत्पश्चात् शीतल घर्षण स्नान।
7. प्रतिदिन हल्का व्यायाम करना अथवा खुली जगह में वायु सेवन करना भी नितान्त आवश्यक है।

8. क्षार धर्मी खाद्य पदार्थ जैसे फल, ताजी सब्जी, कच्चा ताजा दूध आदि का सेवन करना चाहिये।
9. नींबू का रस मिश्रित जल प्रचुर मात्रा में पीना चाहिये।
10. कुछ दिनों तक गर्म पानी पीना चाहिये उसके बाद ठण्डा।
11. शरीर को गर्म रखने के लिये गर्म वस्त्र धारण करना चाहिये।

**चीनी वाला मधुमेह –**

इस प्रकार के मधुमेह को अंग्रजी में 'Diabetes Mellitus' कहते हैं। यह मर्ज हाजमें की खराबी से होता है और बड़ी मुश्किल से जाता है। इस रोग के साथ अन्य कितने ही रोग भी शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं।

**कारण :**

1. इस रोग में प्लीहा और यकृत अपना काम पूरी तरह नहीं कर पाते।
2. पाचक रस पैदा करने वाली पेन्क्रियाज या क्लोम आदि ग्रन्थियों से आवश्यक मात्रा में पाचक रस नहीं निकलता।
3. भोजन ठीक से नहीं पचता और उसके श्वेतसारीय भाग के शक्रराा में परिणत होने पर जब वह रक्त द्वारा शरीर के उपयोग के लिये प्लीहा में लाया जाता है तब प्लीहा की शिथिलता के कारण रक्त में अनावश्यक मात्रा में शर्करा बची रहती है जिसे गुर्दे पेशाब के रास्ते शरीर के अन्य तरल विषों के साथ बाहर निकाल देने के लिये मजबूर होते हैं।
4. मूत्र के साथ इस प्रकार शर्करा का आना ही मधुमेह कहलाता है।
5. जो कुछ हम खाते हैं वह पेट में जाकर पहले शर्करा का रूप धारण करता है जिसका शोषण करके ही शरीर शक्ति एवं गर्मी प्राप्त करता है। परन्तु यही शर्करा जब बिना शरीर के काम आये ही मूत्र के साथ बहने लगती है तो शरीर दिन–दिन दुर्बल होने लगता है और अन्त में नष्ट हो जाता है।
6. अधिकांश मोटे व्यक्ति इस रोग से ग्रसित होते हैं।
7. 20 प्रतिशत रोगियों में यह पैतृक होता है।

**लक्षण :**

1. मंदाग्नि,
2. अधिक भूख लगना,
3. अधिक प्यास लगना,
4. कब्ज,
5. सिर दर्द,
6. नेत्र विकार,
7. त्वचा की शुष्कता,
8. शक्तिहीनता,
9. मसूढ़ों का फूलना,
10. दांत के रोग एवं मुंह से दुर्गंध का निकलना,
11. शरीर में खुजली,
12. शरीर के रोम कूपों का बंद हो जाना,
13. फेफड़ों के विकार,
14. राजयक्ष्मा,
15. स्नायुविकार,

16. मूत्रद्वार में जलन,
17. रोगी का पेशाब साफ, हल्का पीलापन लिये हुए, गाज युक्त होता है,
18. पेशाब में मीठी या खट्टी बदबू आती है,
19. रोगी को दिन–रात भर में 2–5 किलो तक पेशाब होता है जिसमें 50 ग्राम तक चीनी होती है,
20. शरीर सूखता जाता है, कमजोरी बढ़ती जाती है तथा शरीर का तापक्रम बढ़ जाता हैं,
21. वजन कम होने लगता है,
22. चिन्ता, क्रोध तथा भय आदि मानसिक विकारों के कारण उपर्युक्त लक्षणों में वृद्धि होती है।

**सामान्य चिकित्सा :–**

1. यदि रोगी अधिक दुर्बल न हो तो उसे दो या तीन दिन का उपवास, एनिमा के साथ अवश्य करना चाहिये।
2. उपवास तोड़ने के बाद 10 दिन तक अन्न का सर्वथा त्याग करके केवल उबली और कच्ची साग–तरकारियों या उनके जूस एवं संतरे, टमाटर, मकोय, मौसम्बी, अनानास, अंगूर, आम, जामुन, अनार, अमरूद, नासपाती, सेव, पकी गूलर आदि फलों या उनके रस पर रहना चाहिये।
3. इससे शरीर के अन्दर वह शक्ति जाग्रत होगी जो चीनी को शरीर के अन्दर रोके रहती है और उसे बिना उपयोग बाहर निकल जाने से रोकती है।
4. एक मास तक सवेरे फलों का जूस या बेल की कोमल पत्तियों को कूटकर उसका 10 ग्राम जूस नाश्ता के रूप में,
5. दोपहर को चोकरदार गेंहूँ के आटे की रोटी या गेंहूँ अथवा जौ का दलिया और उबली तरकारी,
6. शाम को एक ग्लास मक्खन निकला हुआ मट्ठा तथा शाम को केवल एक ग्लास फल–जूस लेना चाहिये।
7. आधे घंटे तक पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी बांधे या 20 मिनट तक कटि स्नान लें।
8. शक्ति भर व्यायाम करें या शुद्ध वायु में तेजी से टहलें।
9. पेट पर सेंक देकर या मर्दन करके रातभर के लिये कमर की गीली मिट्टी की पट्टी लगावें।
10. खुली हवा में रहें और गहरी श्वास लें।
11. नींबू का रस जल में निचोड़ कर दिन में थोड़ा–थोड़ा करके बार–बार पीना चाहिये।
12. ताजे आंवले के रस में शुद्ध शहद लेना भी लाभ करता है।
13. जामुन की गुठली का चूर्ण दो ग्राम की मात्रा में या केवल चार–चार जामुन की हरी पत्तियां दिन में दो बार चबाकर खाना उपकारी होता है।
14. सप्ताह में एक दिन का उपवास, मट्ठा का कल्प मधुमेह को दूर करने में अमोघ सिद्ध होता है।

**पथ्य–** परवल, करेला, टमाटर, जामुन, खीरा, ककड़ी, पपीता, चना दूध में भीगोकर शहद के साथ, जौ और चना के बराबर मिले आटे की रोटी, पालक, बथुआ, चौलाई, लौकी, नेनुआ, फालसा,खिन्नी, दही, तरबूज, पका आम, सहिजन, तोरई, मूली , पत्त गोभी, धनिया की पत्ति, मेथी का साग, पोदिना, सेम, प्याज का साग, गॉठ गोभी, मट्ठा, चोकरदार गेंहूॅ का आटा, ज्वार, सांवा, रांगी, अंकुरित मुँग, चना आदि।

**अपथ्य–** आलू, चावल, मटर, गाजर, काजू, बादाम, अखरोट, साबूदाना आदि श्वेतसार प्रधान खाद्य, सब तरह के मीठे फल, मेवे जैसे खजूर, किशमिश, अंजीर, मुनक्का, खुमानी, शलजम, तेल, मशाला, चीनी, अधिक नमक, गुड़, मिठाई, मांस–मछली, अण्डा, चाय, कॉफी तम्बाकू आदि नशीली वस्तुएं,अधिक भोजन, 6–7 घंटे से अधिक सोना, भ्रम, क्रोध, चिन्ता आदि मानसिक विकार तथा घी, दूध, मक्खन आदि।

**12.3.4 पित्ताशय की पथरी–** मधुमेह के पश्चात् अब आप पित्ताशय की पथरी के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे। यह एक रोचक तथ्य है कि शरीर में पथरी का निर्माण आइये इस रोग के संबंध में जाने।

पित्ताशय की पथरी और उसका दर्द एक कठिन और भयानक रोग है। इसे अंग्रेजी में 'बिलियरी कालिक' कहते हैं। पित्ताशय नाशपाती की शकल का एक अंग है जो यकृत के दाहिने भाग के नीचे रहता है। इसी में अस्वाभाविक दशा में पथरी बनती है। पित्ताशय को अंग्रजी में 'गॉल ब्लेडर' और पथरी को 'गॉल ब्लैडर स्टोन' कहते है। शरीर अथवा पित्ताशय की अस्वाभाविक दशा में पथरी कभी नहीं बनती।

जब शरीर रोगी होने लगता है तब सबसे पहले यकृत रोगी होता है क्योंकि पचाने के काम में यकृत का बड़ा हाथ होता है। कमजोर यकृत मे तैयार हुआ पित्त, विकार युक्त हो जाता है जो पित्ताशय में पहुंचकर उसमें सूजन और प्रदाह उत्पन्न करता है जिसके फलस्वरूप पित्ताशय की श्लेष्मिक–कला के रूग्ण होने पर उसमें स्थित दूषित पित्त और वायु, कफ वायु से सूखकर पत्थर की तरह कठोर हो जाते हैं जिसे पथरी कहते हैं। छोटी से छोटी पथरी सरसो के दाने के बराबर होती है और बड़ी से बड़ी अण्डे के बराबर। एक के बजाय कई पथरियां भी बन सकती हैं।

जब कभी पथरी पित्ताशय से बाहर निकलने की कोशिश करती है तो पित्ताशय की नलिका जो चौथाई इंच से भी कम मोटी होती है, के पतले सुराख में उससे रगड़ लगने के कारण यकृत के स्थान पर यानि दाहिनी पंजरी के नीचे कभी–कभी दाहिने कंधे तक अचानक असहाय वेदना होने लगती है, साथ ही कभी–कभी शरीर ठंड से कांपने लगता है, तत्पश्चात् तेज ज्वर चढ़ता है, ठंडा पसीना आने लगता है तथा मित्तली और वमन होने लगती है। पथरी जब उपचार से या अपने आप पित्त–नलिका से निकलकर आंत में बाहर निकलने के लिए आ जाती है तो दर्द होना बिल्कुल बंद हो जाता है। अक्सर पथरी के छोटे–छोटे टुकड़े कुछ अंतर में निकलते हैं।

**कारण :**

1. अप्राकृतिक आहार–विहार,
2. आहार में चिकनाई वाले पदार्थ की अतिशयता,
3. औषधियों का अधिक सेवन
4. मेहनत की कमी।
5. यकृत का कमजोर होना।

**लक्षण :**

1. इस रोग में पहले दाहिनी तरफ पसलियों के नीचे नाभि तक मीठा–मीठा दर्द या बोझ मालूम देता है।
2. कब्ज,
3. भूख न लगना,
4. भोजन से अरुचि,

5. पीलिया रोग तथा जाड़ा बुखार,
6. कभी–कभी शरीर ठंड से कांपने लगता है,
7. अचानक असहाय वेदना होने लगती है।

**सामान्य चिकित्सा :**

1. रोगी के सिर पर ठंडे पानी से भीगा तौलिया रखना चाहिये।
2. रोगी के लिये गर्म सेंक उपकारी होती है।
3. कपड़ा गर्म पानी में निचोड़कर पित्ताशय के सामने वाले भाग अर्थात् नीचे की पसलियों और उदर के ऊपर वाले पूरे भाग पर रखना चाहिये।
4. दो से चार दिनों का उपवास करना चाहिये।
5. उपवास के दिनों में ठंडा या गरम जल नींबू के साथ लेना चाहिये।
7. सुबह–शाम गुनगुने पानी का एनिमा भी लेना चाहिये।
8. रसदार फलों का सेवन करना चाहिये।
9. सुबह उठकर एक ग्लास गरम जल में एक कागजी नीबू का रस निचोड़ कर पीना।
10. नित्य क्रिया, प्रातः भ्रमण, लौटकर विश्राम।
11. कटि–स्नान (पहले गरम पानी से पन्द्रह मिनट, फिर ठंडे पानी से दस मिनट)।
12. रसदार फल का जलपान एवं ठंडे जल में एक कागजी नींबू का रस निचोड़ कर पीना।
13. दिन में भोजन में भाजी, सलाद, उबली तरकारी और मट्ठा।
14. संध्या को यकृत और पेडू पर गीली पट्टी आधा घंटे तक फिर टहलना।
15. सायं भोजन में ताजे फल, किशमिश, मूंग की अंकुरी और दूध।
16. सूर्यास्त से पहले रात को कमर की गीली पट्टी की लपेट करनी चाहिए।

**12.3.5 पीलिया–**पीलिया को कमल, कामला, कांवर, कांवरु, पांडू तथा अंग्रेजी में ज्वाइंडिस कहते हैं।

**कारण :**

1. इस रोग का मुख्य कारण यकृत दोष है।
2. पित्तवाहक नली या पित्ताशय के मुख–द्वार का प्रदाह।
3. पित्ताशय में पथरी या फोड़ा का होना।
4. आवश्यकता से अधिक भोजन करना।
5. व्यायाम या कोई श्रम न करना।
6. रक्त दोष से।
7. पित्त प्रणाली में गांठ बंध जाना।
8. मलेरिया।
9. टायफायड।
10. उत्तेजक पदार्थों और विषैली दवाइयों का सेवन।
11. पानी में अनावश्यक भीगना तथा
12. भय, क्रोध आदि मानसिक उत्तेजना का शिकार होना आदि।

**लक्षण :**

1. पेशाब का रंग पीला हो जाता है।
2. आंख, नाखून तथा त्वचा का रंग भी पीला पड़ जाता है।
3. रोगी प्रत्येक वस्तु को पीतवर्ण ही देखता है।
4. मुँह का स्वाद कड़वा हो जाता है तथा मिठाई व चिकनाई से घृणा हो जाती है।

5. बदहजमी, खुजली, ज्वर, मितली, वमन, बेचैनी तथा चिड़चिड़ापन के लक्षण प्रकट होते हैं।
6. पित्त का रंग पीला होने से रोगी की त्वचा, आंखें और पेशाब आदि सभी पीत वर्ण के हो जाते हैं।
7. पित्ताशय और पित्त की प्रणाली में श्लैष्मिक कला का अंतर हो जाता है।
8. श्लैष्मिक कला का स्तर सूज जाता है और उससे श्लेष्मा का स्त्राव होने लगता है।
9. पित्त के प्रवाह में रुकावट पड़ती है और फलतः यकृत पित्त से भरकर फूल जाता है।

**सामान्य चिकित्सा :**

1. जब तक रोग का जोर रहे या रोगी की अवस्थानुसार एक से सात दिनों तक नींबू या संतरे के रस मिले पानी पर रहकर उपवास करना चाहिये।
2. 10 से 14 दिनों तक केवल फलों के रस पर रहना चाहिये।
3. एनिमा प्रतिदिन लेना चाहिए।
4. उपवास के पश्चात् सात से दस दिनों तक रसाहार फलों पर रहने के बाद शाक, तरकारी और रोटी पर धीरे–धीरे आना चाहिये।
5. सप्ताह में एक बार गुनगुने पानी से स्नान करना चाहिये।
6. प्रतिदिन कोई हल्का व्यायाम और श्वास की कसरतें करना चाहिए।
7. यकृत की सूजन दूर करने के लिये 20–25 मिनट तक गरम–ठण्डी सेंक देना जरूरी है।
8. खुजली में गिरी के तेल में नींबू का रस फेंट कर लगाना चाहिये।
9. कटि–स्नान दिन में दो बार और पैरों का गर्म स्नान या भांप स्नान सप्ताह में दो बार लेना चाहिये।
10. कब्ज टूटने तक रात को कमर की भीगी पट्टी लगाकर सोना चाहिये।
11. गन्ने का रस, मूली का रस, नींबू तथा मौसम अनुसार सभी रसदार फल–सब्जी का जूस या सब्जियों का सूप व दही–मट्ठा विशेष रूप से लेना चाहिए।

**सुझाव :–**

1. रोगी को ठीक होने तक पूर्ण विश्राम करना चाहिये।
2. रोगी संयम व धैर्य से काम ले क्योंकि यह रोग धीरे–धीरे ठीक होता है।
3. इसमें चिकनाई, मादक पदार्थ आदि का उपयोग नहीं करना चाहिये।

**12.3.6 मोटापा–** इक्कीसवीं सदी का तेजी से बढ़ता रोग है– ''मोटापा''। आइये जानते है इसके बारे में रोचक तथ्य। जब मोटापा असाधारण रूप से बढ़ जाता है तो उसे मोटापा रोग कहते हैं, इस रोग में शरीर में अनावश्यक चर्बी जमा हो जाती है। यह थायराइड गलाण्ड व पिट्यूटरी गलाण्ड के असंतुलित होने पर भी हो जाता है जिससे शरीर के अवयवों की क्रिया में व्याघात पड़ता है क्योंकि चर्बी उनके स्थान को घेर लेती है और भोजन से पौष्टिक तत्व लेने और श्रम एवं संचरण करने की शक्ति को कम कर देती है। चर्बी के कारण शरीर के भीतरी तंतुओं की मलिनता रक्त में मिलकर बाहर नहीं निकल पाती जिससे मोटे आदमी का जीवन काल कम हो जाता है। मधुमेह, ह्रदय रोग, कब्ज, रक्तचाप में वृद्धि, मिर्गी, चर्म रोग आदि बीमारियां खास तौर पर मोटे आदमी को घेर लेती है।

**कारण :**

1. गलत रहन–सहन।

2. आलस्यपूर्ण जीवन।
3. परिश्रम न करना।
4. शरीर में क्षार की कमी होना।
5. अधिक सोना।
6. अधिक खाना।
7. पाचन क्रिया में गड़बड़ी होना।
8. अनुवांशिकि आदि।

**लक्षण :**

1. शरीर में चर्बी बढ़ने लगती है।
2. जीवन बोझिल और निरानंदमय प्रतीत होने लगता है।
3. स्फूर्ति, उमंग और चांचल्य का ह्रास अनुभव होता हैं।
4. मस्तिष्क निष्क्रिय हो जाता है।
5. स्मरण शक्ति नष्ट हो जाती है।
6. हिम्मतपस्त और आलसी हो जाते है।

**आहार :–**जो लोग क्षारयुक्त भोजन करते हैं और कसरत करते हैं, वे मोटापा रोग से बचे रहते है। मोटापा धीरे–धीरे घटाना चाहिये। जल्दी करने से किसी कठिन बीमारी के हो जाने की संभावना है। चावल, दूध, घी, दही, बासी रोटी, चना, दाल, तामसिक भोजन, मशाले, तेल, चाय, भीगे छुहारे खाकर दूध या दही पीना तथा आम खाकर दूध पीना आदि मोटा करने वाली हैं। इन्हें त्याग देना चाहिये। शहद पानी में घोलकर उसका शर्बत पीने से मोटापा रोग दूर होता है। फलों का जूस पीना भी मोटपा रोग में लाभकर है। नियमित रूप से रोटी और शहद खायें तो कुछ दिनों में आश्चर्यजनक रूप से वजन कम होने लगता है। त्रिफला के काढ़े में शहद मिलाकर निराहार पीने से मोटापे में वृद्धि धीरे–धीरे दूर होती है। बिना खूब भूख लगे कुछ नहीं खाना चाहिये और थोड़ा भूख रहते ही बाकी भोजन बंद कर देना चाहिये। पानी दिन में कई बार और खूब पीना चाहिये। यदि पानी में नींबू का रस और कभी–कभी शहद भी मिलाकर पिया जाये तो अति उत्तम।

**सामान्य चिकित्सा :–**

1. शाम–सुबह नियमपूर्वक, शक्ति अनुसार खुली हवा में तेज गति से चलें या कोई अन्य हल्का व्यायाम किया करें या मालिश करें।
2. सुबह उठते ही ऊषापान करना चाहिए।
3. रात को सोते समय एक ग्लास गर्म पानी में आधा नींबू निचोड़कर पीयें।
4. कभी कभी जब पेट भारी हो तो उपवास करें और एनिमा लें। एनिमा के पहले 30 मिनट तक मिट्टी की पट्टी भी रखें।
5. सप्ताह में एक दो दिन भाप स्नान करके पसीना निकालना चाहिये तथा सप्ताह में एक दिन उपवास भी करना चाहिये। गर्दन के नीचे के हिस्से में लाल प्रकाश लेना भी फायदा करता है।
6. सुबह–शाम अधिक से अधिक 10 –15 मिनट तक मेहन या कटि स्नान लें।
7. सप्ताह में एक–दो दिन सारे बदन की गीली पट्टी भी देना चाहिये तथा गर्मी के दिनों में धूप स्नान भी लेना आवश्यक है।

## 12.4 उत्सर्जन तंत्र का सामान्य परिचय

शरीर में प्रतिक्षण ऐच्छिक एवं अनैच्छिक क्रियायें होती रहती है। इन क्रियाओं के फलस्वरूप हर समय शरीरस्थ उत्तक टूटते–फूटते रहते हैं। इन टूट–फूट के कारण शरीर में कुछ अवशिष्ट पदार्थ अथवा विजातीय द्रव उत्पन्न होते रहते हैं। ये विजातीय द्रव्य कार्बन डाई आक्साइड, जल, यूरिया और यूरिक ऐसिड आदि हैं। ये पदार्थ शरीर के लिये हानिकारक होते हैं। अतएव इनको शरीर से बाहर निकालना अत्यन्त आवश्यक होता है इन्हे निकालने के लिए निम्नलिखित अंग हैं–

1. वृहदान्त्र – भोजन का अनपचा अवशिष्ट पदार्थ जो शरीर के लिये निरर्थक होता है।
2. फेफड़े – कार्बन डाई ऑक्साइड को तथा वाष्प के रूप में परिवर्तित जल को निःश्वसन द्वारा निकालते हैं।
3. वृक्क या गुर्दे – मूत्र के रूप में जल, यूरिया, यूरिक एसिड व लवण आदि द्रव्यों को निकालते हैं।
4. त्वचा – जल, कुछ निरर्थक लवण, यूरिया एवं कार्बन डाइऑक्साइड आदि पदार्थो को पसीने या स्वेद के रूप में बाहर निकालते हैं।

### 12.4.1 उत्सर्जन तंत्र के रोग

**मूत्राशय और वीर्य पथरी–** शरीर के रक्त का दूषित तरल मल, गुर्दा द्वारा छन–कर मूत्र की शक्ल में मूत्राशय में जमा होता रहता है जहाँ से वह मूत्र–नलिका द्वारा बाहर निकल जाया करता है। शरीर अथवा मूत्र यंत्रों की अस्वाभाविक अवस्था में जब वायु मूत्राशय में आये हुए मूत्र को सुखा देती है अर्थात् जब मूत्र शरीर स्थित तप्त वायु से सुधि कर पत्थर की तरह कडा हो जाता है तब पथरी रोग होता है। पथरी मूत्राशय में छोटे–छोटे कणों के रूप में जमा होती है तब तक वह मूत्र के साथ निकलती रहती है और किसी प्रकार की तकलीफ नहीं देती। परंतु जब कण आपस में मिलकर बड़े हो जाते हैं तब मूत्र प्रणाली में अटक कर दर्द गुर्दा पैदा कर देते हैं। इसी को पथरी रोग कहते हैं। जो लोग मैथुन के समय अधिक आनन्द प्राप्ति के लिये निकलते हुए वीर्य को रोक लेते हैं उनका वीर्य भीतर रास्ते में ही अटक कर रह जाता है और बाहर नहीं निकल पाता और सूख जाता है। तब वह वीर्य की पथरी कहलाती है।

**कारण :**

1. मूत्र त्याग की इच्छा होने पर जब हम उसे त्याग नहीं करते अपितु किसी कारणवश जबर्दस्ती मूत्राशय में ही रोके रखते हैं तो मूत्र यन्त्र–मूत्राशय और गुर्दों में उसी समय से रासायनिक प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है अथवा उद्वेग उत्पन्न हो जाता है जिससे मसाने में गर्मी बढ़ जाती है, मूत्र का द्रव अंश भाप बन कर उड़ जाता है और कुछ शरीर के रक्त में पुनः मिलकर रक्त को विषाक्त बार देता है।
2. मूत्राशय में मूत्र के इस प्रकार रूक जाने से मूत्र करने की इच्छा ही मिट जाती है। परिणामतः मूत्राशय और गुर्दों में नमक और खुलने वाले विजातीय द्रव्यों के पीले रंग के छोटे–छोटे कण बाकी बचे रहते हैं। जो बाद में मूत्र करते समय मूत्र के साथ बह जाते हैं। परन्तु फिर भी कुछ कण मूत्राशय में अटके रह जाते है। इस तरह वर्षो बाद जब मूत्राशय में ऐसे कण अधिक मात्रा में एकत्र होते हैं तब आपस में मिलकर पथरी का रूप धारण कर लेते हैं।
3. पथरी के कण ग्रन्थियों के मूत्राशय में अधिक बनते हैं जिनके पेशाब में विकार द्रव्यों का अंश सामान्य से बहुत अधिक होता है।
4. शरीर में विकार उत्पन्न होने पर।

5. अनियमित आहार–विहार करने से।

**मूत्राशय की पथरी के लक्षण :**

1. कम्पन, दांत पीसना, दर्द के मारे चिल्लाना,
2. पेशाब के समय खासने से अधोवायु के साथ मल निकल जाना
3. टप–टप करके पेशाब होना,
4. मूत्राशय सूज या फूल जाता है और उसके चारों तरफ अत्यंत पीड़ा होती है।
5. पेडू के पास के स्थान में दर्द होने लगता है।
6. पेडू में अत्यन्त जलन और भंयकर वेदना होना तथा पेडू में सुई गड़ने जैसी पीडा होना।
7. मूत्र मार्ग में पथरी द्वारा किसी तरह का छिलन या घाव हो जाने से पेशाब में खून दिखाई देता है और पेशाब निकलते समय भंयकर वेदना होती है।

**वीर्य की पथरी के लक्षण :**

1. पेट में काटा चुभाने जैसा दर्द होना,
2. दोनों फोतों का सून जाना,
3. दुर्बलता,
4. अरूचि मूत्राशय,
5. हृदय वेदना तथा
6. वमन आदि।

**सामान्य चिकित्सा :** इस रोग के दौरों को रोकने के लिये ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे गुर्दे और मूत्राशय को अपनी शक्ति से अधिक विकारी द्रव्यों को बहाने का काम न करना पड़े। नहीं तो जैसे केवल पानी बहाने वाले नाले में राख, मिट्‌टी और कोयला डालते रहने से बारम्बार सफाई करते रहने पर भी यह गन्दी और बेकार बनी रहती हैं वही दशा गुर्दे और मूत्राशय की भी होगी। गुर्दो और मूत्राशय पर अधिक बोझ न पड़े, इसके लिये दो बातों पर ध्यान देना नितान्त आवश्यक है।

1. उचित आहार और
2. शरीर की आन्तरिक सफाई।

निम्नलिखित उपचार पद्धति से पथरी का बनना एवं असहनीय पीड़ा कम होने लगती है। साथ ही साथ लगभग समूचे शरीर के स्वास्थ्य में सुधार होन लगता है।

1. दो से चार दिनों तक केवल जल (जिसमें नीबू या नारंगी का रस मिला दिया जाये) पर रहना चाहिये। उसके बाद दो–तीन दिनों तक केवल रसदार खट्‌ठे–मीठे फल दिए जायें।
2. नित्य दो बार एनिमा लेकर सुबह–शाम पेट साफ कर लेना आवश्यक है।
3. सुबह को गरम पानी में एक नीबू का रस, ताजे रसदार फलों का नाश्ता (जरूरत हो तो पाव भर धारोष्ण दूध)।
4. 9 बजे एक गिलास पानी में एक नीबू का रस।
5. दिन में भोजन में थोड़ा लाल चिउडा, दही और भाजी–सलाद।
6. 4 बजे फल–रस का पेय।
7. सूर्यास्त से पहले गूदेदार फल, एक–दो चोकरदार रोटी, खजूर के साथ, कुछ भिगोयी किशमिश।
8. 7 अथवा 15 दिन पर एक दिन उपवास।
9. पाचन–क्रिया ठीक रहे इसके लिए सुबह–शाम टहलना।
10. प्रतिदिन शरीर की सूखी मालिश।

11. पेडू की मिट्टी की पट्टी देनी चाहिए।

**आहार–** पथरी के रोगी को 24 घंटों में कम से कम 5 या 6 गिलास शुद्ध ताजा जल सादा या फल–रस निकालकर अवश्य पीना चाहिये। इस रोग में नारियल, ताड़ और खजूर का ताजा मीठा रस (ताड़ी) फलों और शाक–सब्जियो का रस, दूध, मखनिया दूध, मटठ्ा, दूध या दही का तोड़, सबेरे ताजे दूध में जल मिला कर पीना, दशा कुछ सुधरने पर छेना और मक्खन, खरबूजा, तरबूजा, खीरा, ककड़ी, गाजर, पका केला, चिउड़ा चावल, गेहूं का दलिया, शहद, किशमिश, अंजीर, पिंड़खजूर छुहारा, नारियल की गिरी, बादाम तथा मूंगफली आदि पथ्य है।

**अपथ्य**– मांस, मछली, अण्डा, दाल, नमक, मसाले, चीनी, पकवान, मिठाई अचार–चटनी तथा सिरका आदि अपथ्य।

**12.4.2 मूत्र का न बनना या कम बनना–** गुर्दो के आसपास विजातीय द्रव्य के एकत्र हो जाने से जब उनमें खराबी आ जाती है तो उनके स्वभाविक कार्यं में रूकावट पड़ने के फलस्वरूप शरीर के रक्त का मल मूत्र के रूप में बन कर निकलना या तो बन्द हो जाता है या कम परिमाण में निकलता है।

**कारण :**

1. विजातीय द्रव्यों का एकत्र होना
2. गुर्दे के कार्य न करने से
3. कम पानी पीने से
4. अनियमित खान–पान।

**लक्षण :**

1. रक्त विषाक्त होना,
2. वमन,
3. सिर दर्द,
4. अचैत्तन्यता।

**सामान्य चिकित्सा :**

1. गर्म जल में नींबू का रस निचोड़कर दिन में कई बार पीना चाहिये।
2. जब तक रोग अधिकांश दूर न हो जाये तब तक मट्ठा या दूध में जल मिला कर पीना चाहिये।
3. फल या तरकारियों के जूस पर रहना चाहिये।
4. सात्विक भोजन ही लेना चाहिये।

**12.4.3 मूत्राशय और मूत्र ग्रन्थि प्रदाह तथा रक्त–मूत्र–** मूत्राशय में जब मूत्र जमा हो जाता है तथा उसे आवश्यकता से अधिक देर तक रोके रहने पर मूत्र ग्रन्थि पर दबाव पड़ता है। दबाव पड़ने से असहनीय पीड़ा होती है। इसी प्रकार निरंतर यही दबाव पड़ने के कारण रक्त नलिकाओं से रक्त का स्त्राव होने लगता है जो कि मूत्र के साथ बाहर निकलता है।

**कारण :**

1. देर तक मूत्र के वेग को रोक रखने।
2. मूत्र प्रणाली में विजातीय द्रव्य एकत्र होकर सड़ने से।
3. मूत्र विर्सजित करते समय जोर लगाने से।

**लक्षण :**

1. मूत्र त्यागने में दर्द होता है।
2. ज्वर भी हो रहता है।
3. पीव मिला मूत्र होता है।
4. बार–बार मूत्र–मार्ग से रक्त निकलता है।
5. वेदना और जलन होती है।

**सामान्य चिकित्सा :**

1. प्रवाह होने पर गर्म जल का एनिमा पेट में अधिक देर तक रहना चाहिये।
2. पैरों का गरम–स्नान भी इसमें लाभकारी होता है।
3. एनिमा लेने के तीन घंटे बाद गर्म पानी पीकर गर्म जल का दस मिनट का कटि–स्नान करना चाहिये।
4. पेडू को ठंडे पानी से भीगे अंगोछा से पोंछ डालना चाहिए।
5. इस रोग में गुनगुने पानी से ही स्नान करना चाहिये।
6. रक्तस्राव होन पर पैरो को गरम जल में रखकर दिन में दो बार शीतल जल का कटि–स्नान लेना चाहिये, तथा शीतल जल का एनिमा भी लेना चाहिये।
7. इस रोग में भी कम से कम एक दिन का उपवास करना चाहिये।
8. प्रतिदिन नीबू का रस मिला जल प्रचुर मात्रा में पीना चाहिये।
9. रोग का जोर कम होने तक रसाहार करना चाहिये।
10. हरी बोतल के धूप में तपाया जल की 50–50 ग्राम की 6 खुराकें रोज लेने से रक्त मूत्र में लाभ होता है।

**12.4.4 नेफ्रोटिक सिंड्रोम–** नेफ्रोटिक सिंड्रोम क्या है – यह गुर्दे की एक खास किस्म की बीमारी है जिसमें प्रोटीन गुर्दे से छनकर मूत्र में आने लगता है। गुर्दो में खून छानने का कार्य लगभग 20 लाख यूनिटों द्वारा होता है, जिन्हें नेफ्रांन यहा जाता है। इस रोग में इन यूनिटों में सूक्ष्म स्तर पर इस तरह का विकार आ जाता है, जिससे मूत्र छानने की सतह पर छिद्र बड़े आकार के हो जाते है। इन बड़े हुए छिद्रों से प्रोटीन अत्यधिक छनकर मूत्र में आ जाती है। पेशाब के रास्ते अत्यधिक प्रोटीन निकल जाने से शरीर में प्रोटीन की कमी हो जाती है और इस कमी के कारण पूरे शरीर में पानी का रुकाव हो जाता है। इस कारण पूरे शरीर में सूजन आ जाती है, जो आँखों के नीचे, पेट पर और पैरों पर अधिक होती है। अधिक मात्रा में प्रोटीन का पेशाब के जरिये बाहर निकलना, खून में प्रोटीन की मात्रा कम हो जाना एवं शरीर पर सूजन आ जाने को नफ्रोटिक सिंड्रोम के नाम से जानते है। नफ्रोटिक रोग या नेफ्रोटिक सिंड्रोम बच्चों में पाई जाने वाली गुर्दे की एक आम समस्या है। इस रोग में बच्चे को, जो अब तक पूर्णतः स्वस्थ और सामान्य था, अचानक (एकाएक) एक से दो दिन में चेहरे और पैर पर सूजन आ जाती है। यह सूजन धीरे–धीरे बढ़ती है और पेट एवं जाँघों पर भी आ जाती है।

**लक्षण :**

1. चेहरे, पैर, तलुओं आदि पर सूजन आ जाती है, जिसे अँगूठे से दबाकर छोड़ा जाए, तो गड्ढा पड़ जाता है। कभी–कभी सूजन इतनी बढ़ जाती है कि सारा शरीर फुल जाता है।
2. प्रायः सूजन सुबह सोकर उठने के बाद अधिक मालूम पड़ती है।
3. मरीज फूला–फूला, पीला व कमजोर दिखायी पड़ता है।
4. रोग के प्रभाव से पेशाब की मात्रा कम हो जाती है और पेशाब में फेन की मात्रा अधिक दिखायी पड़ती है।

5. इस रोग से ग्रसित बच्चों को संक्रमण होने का अंदेशा बढ़ जाता है।
6. कभी–कभी रक्तचाप भी बड़ा हुआ मिलता है।
7. प्रोटीन की कमी से शरीर में संक्रमण के आसार बढ़ जाते हैं।
8. पेट की झिल्ली की सूजन, निमोनिया और दिमाग की झिल्ली की सूजन भी इन बच्चों में अधिक देखने को मिलती है।
9. यदि रोग बच्चों में अधिक समय तक रहे, तो उनकी वृद्धि रूक जाती है।
10. कभी–कभी वृक्क शिरा में रक्त का थवका बनने कारण मूत्र में खून आने लगता है। नीचे पेडु में दर्द बढ़ जाती है।

**कारण :–**इस रोग का पूर्ण कारण अस्पष्ट है। इस रोग में गुर्दो में कोई स्थायी विकार नहीं आता। परंतु इसके अन्य कई कारण हैं –

1. एलर्जी,
2. कुछ किस्म के वाइरस संक्रमण,
3. कुछ औषधियों के कुप्रभाव से,
4. मधुमेह (डायबिटीज),
5. मलेरिया,
6. कुष्ठरोग,
7. प्रोटीन की कमी आदि।

**12.4.5 मूत्रविषमयता –** मूत्रविषमयता एक ऐसी अवस्था है, जिसमें मूत्र के विषैले पदार्थ रक्त में मिलकर सिरदर्द, बेहोशी, ऐठन, मस्तिष्क विकार एवं पक्षघात जैसे भयंकर लक्षण पैदा होते हैं। इस रोग में मूत्र के विषैले पदार्थ रक्त में मिलकर भयानक लक्षण उत्पन्न कर देते हैं। गूर्दो में किसी विकार के कारण मूत्र बनना कम हो जाए या मूत्राशय और मूत्रप्रणाली के रोगों के कारण मूत्र आना बंद हो जाये या मूत्राशय में मूत्र काफी समय तक पडा रहे, तो मूत्र का विष रक्त में फैलकर घातक लक्षण पैदा कर सकता है।

**लक्षण :**

1. सिद में दर्द, जी घबराना,
2. उलटी आना,
3. शुष्क पीली त्वचा,
4. रक्तस्त्राव व दाँतों का ढीलापन,
5. खुजली,
6. भुख न लगना,
7. मुख से मूत्र जैसी गंध,
8. श्वास में अमोनिया की गंध,
9. श्वास तेज एवं गहरी चलने लगती है।

**कारण :**

1. मूत्र संस्थान में अवरोध,
2. डायबेटिक कोमा,
3. ओंतों का अवरोध,
4. हृदय दौर्बल्यता,
5. रक्तभार वृद्धि,
6. प्रोस्टेट ग्रंथि की अतिवृद्धि आदि।

**12.5 मिट्टी त्तत्व चिकित्सा सिद्वान्त एवं विधियाँ–** पृथ्वी में एक चुम्बकीय शक्ति है जो सम्पर्क में जाने पर मनुष्य को प्राणवान एवं ऊर्जावान बना देती है। जंगल के पशु मिट्टी के साहचर्य के कारण अनेक रोगों से मुक्त रहते है। स्वच्छ मिट्टी, धूप, घास पर नंगे पांव चले, बैठने एवं लेटने के अपने लाभ है। मिट्टी में अमृत मिला है।

**क्षिति जल पावक गगन समीरा। पंच तत्व रचित यह अधम शरीरा।**

पंच महाभूत तत्वों में मिट्टी एक आधरभूत तत्व है। कहा जाता है कि यह शरीर मिटूटी से ही बना है और मिट्टी में मिल जाता है। सभी जड़–चेतन वस्तुओं को धारण करने से इसे धरती धरित्री, धरा कहते है। इसके गर्भ में कईं रत्न और खनिज पदार्थ भरे रहने से इसे रत्नगर्भा, वसुधा, वसुमती, रत्न प्रसविनी कहते है। सभी रस पृथ्वी में मौजूद है। इसके गर्भ से खाघ पदार्थ पोषक तत्व ग्रहण करते है जिन्हें खाकर हम स्वस्थ बनते है इसलिये इसे रसा भी कहते है। विष के प्रभाव को नष्ट करने के कारण इसे अमृता भी कहते है। प्रसिद्ध चिकित्सक एडल्फ जस्ट के अनुसार मछली जल का जीव है वह जल में रह एवं जी सकती है । पक्षी का निर्दिष्ट स्थान वायु है, वह आकाश का पक्षी है लेकिन मनुष्य धरती पर चलता है उन्होंने पृथ्वी तत्व को धरती माता की संज्ञा दी जिसकी गोद में सिर रखकर मनुष्य अपने अनेक रोग, शोक एवं कष्ट से मुक्ति पा सकता है।

इससे शरीर की जीवन शक्ति बढ़ती है, स्नायु मण्डल सबल होता है, नेत्र–ज्योति ठीक रहती है और मस्तिष्क पर गरमी नहीं चढ़ती, नींद ठीक से आती है।

## 12.6 पाचन तंत्र और उत्सर्जन तंत्र के रोगों की मिट्टी चिकित्सा

पाचन तंत्र एवं उत्सर्जन तंत्र संबंधित रोगों की पृथ्वी चिकित्सा आसानी से की जा सकती है। रोगों के अनुसार मिट्टी चिकित्सा का प्रयोग लाभकारी होता है। हमेशा इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि जिस अंग का रोग है उस अंग से जुड़े हुए सभी स्थान पर मिट्टी चिकित्सा दी जानी चाहिये।

1. **मिट्टी की गरम पट्टी–** इसके लिये बलुई मिट्टी अच्छी होती है और नदी के कछार की ताजी गीली मिट्टी बहुत ही अच्छी होती है। शुद्ध सूखी मिट्टी को कूट पीसकर कपड़े से छान लेते है। फिर किसी लकड़ी के टुकड़े है चलाते हुये उसे ठंडा पानी डालकर गीला करते है। गीली मिट्टी में विद्युत चुम्बकीय गुण होता है हाथ लगाने या लोहे की छड़ डालने पर इसका गुण कम हो जाता है।

गीली मिट्टी को एक मोटे कपड़े पर आधा इंच की मोटाई में फैलाये फिर उस मिट्टी को ऊनी कपड़ा रखकर किसी अन्य कपड़े से बाँध देते है। उसके बाद रोगी को आराम से लिटा देते है। 20–30 मिनट या इससे भी अधिक देर तक यह यहीं लगायी जा सकती है। समय हो जाने पर पट्टी को हटाकर उस जगह को भीगे कपड़े से पोंछ देना चाहिये और उस स्थान को 2–3 मिनट तक सूखी मालिश देनी चाहिये ताकि उसमें थोडी गर्माहट आ जाये। इसी को रोगों में मिट्टी की पट्टी देना कहा जाता है। जो मिट्टी एक बार प्रयोग में आ चुकी हो उसका दोबारा उपयोग भुल से भी नहीं करना चाहिए। क्योकि उसमें रोग के जहरीले पदार्थ व्याप्त हो जाते हैं।

**लाभ–** पुराने कोष्ठबद्धता, अपच, दस्त तथा पेट के रोगों में और ज्वरादि मे, शरीर की बढ़ी हुई अनावश्यक उष्णता को दूर करने के लिये। यह रोग को जलन और दर्द दोनों को एक साथ शीघ्र दूर करती है।

2. **गरम मिट्टी की पट्टी–** इसके लिए किसी बर्तन में थोडी मिट्टी डालकर उसमें उबलता पानी धीरे– धीरे मिलाते है अथवा मिट्टी को धीमी आंच पर धीरे–धीरे गर्म करते है फिर इसे रोगी के तकलीफ वाले स्थान पर लगाते है। इसे गरम मिट्टी की पट्टी कहते है। मिट्टी की गर्मी रोगी की सहन शक्ति के अनुसार होनी चाहिये, इसका प्रयोग बेंत जैसी वस्तुओं के घावों तथा मोचादि में, स्त्रियों मे गर्भाशय सम्बन्धी रोगों मे, गठिया स्नन्धिवात के रोगियों के लिये, पेट दर्द, स्थानिक दर्द, महिलाओं के मासिक दर्द, श्वेत प्रदर तथा उदर अंगो की सूजन के लिये परम उपयोगी है। इस गरम मिट्टी की पट्टी को लगाने के बाद ऊपर से फलालेन या ऊनी कपड़ा बांधना जरूरी है।

3. **रज स्नान–** शुद्ध साफ मिट्टी को छानकर अंग–प्रत्यंग को रगड़ना, जब सारा बदन मिट्टी से रगड़ जाये तो 10–20 मिनट तक धूप में बैठकर फिर ठंडे पानी से स्नान करना, यही सूखी मिट्टी का स्नान है इससे त्वचा नरम, लचीली एवं कोमल और रोम छिद्रों के खुलने से शरीर के विजातीय द्रव्य पसीने के रूप में बाहर हो जाते है। इससे फोड़े–फुंसिया दूर हो जाती है।

अखाड़े की मिट्टी में बार–बार गिर कर शरीर को मिट्टी से घिसना, व्यायाम द्वारा पसीना निकालना और रोम कूपों को खोलकर मिट्टी से निकली हुई एक प्रकार की गैस की कूपों द्वारा शरीर के अन्दर खींचकर माँस, अस्थि तथा त्वचा को सुराठित करना भी रज स्नान है।

4. **पंक स्नान–**महीन पिसी हुई और कपड़े से छनी हुई मिट्टी को जब पानी के साथ घोलकर उसे कीचड़ सदृश बना लेते हैं तब इस प्रकार की गीली मिट्टी से किया हुआ स्नान गीली मिट्टी का स्नान कहलाता है।

बालों में मलने के लिये एक खास किस्म की काली मिट्टी काम में लायी जाती है जिससे बाल मुलायम और चमकीले हो जाते है। यह स्नान बहने वाले फोड़े–फुंसियां वाले शरीर के लिये, त्वचा की गंदगी और सफेदी के लिये लाभप्रद है। जब तक गीली मिट्टी थोडी सूख न जाये, जल से स्नान नही करना चाहिये।

5. **मिट्टी की ठंडी पट्टी – पेट की–** जब मिट्टी की पट्टी को रोगाक्रान्त स्थान पर रखने के बाद उसको गर्म करने हेतु ऊपर फुलालेन या ऊनी कपड़ा नहीं बांधते बल्कि उसे खुला ही रखते है जिसे मिट्टी की ठंडी पट्टी दिया जाना कहा जाता है।

इसका सबसे अधिक प्रयोग पेडू की पट्टी के रूप में होता है। पेट की विभिन्न बीमारियों में यह अत्यन्त लाभदायक है। आयुर्वेद में कहा क्या है कि–

**कर्मौ दाहः पिन्तार्ति शोथहनः शीतलः सरः।**

अर्थात् पानी से सनी मिट्टी ठंडक देने वली एवं फलन पित्त की पीड़ा और सूजन दूर करती है। यह पट्टी शांतिकर प्रभाव डालती है आंतों की लहरदार गति को बढ़ाती है और जीवाणुओं की वृद्धि को रोकती है। गाँधी जी ने इस पट्टी की बहुत प्रशंसा की है।

**उपकरण**

एक लकड़ी की ट्रे, साफ मिट्टी, एक कमल का टुकड़ा, आवश्यकतानुसार पानी।

**विधि–** सर्वप्रथम किसी भी साफ स्थान से 2–3 फुट गहरी मिट्टी को खोदकर मिट्टी की पट्टी के लिए प्रयोग करते है। मिट्टी को दिन भर धूप में सुखाया जाता है फिर रात में अच्छी तरह पानी मिलाकर छोड़ देते हैं, फिर मिट्टी को अच्छी तरह गूंथकर मिट्टी को ट्रे में मिट्टी को बिछाकर एक सा कर देते है। रोगी को पीठ के बल लिटाकर मिट्टी को नाभि प्रदेश से नीचे की ओर तथा कुछ 2–4 इंच ऊपर की तरफ मिट्टी का प्रयोग करते है।

उसके बाद मिट्टी के ऊपर एक कम्बल ढ़क देते है। यदि रोगी को ठंड लग रही है तो उसके चारों और कम्बल लपेट देते है। अवधि लगभग 20–30 मिनट तक होती है। समय पूरा होने पर मिट्टी को उदर क्षेत्र से हटा देते है ।

क्रिया – प्रतिक्रिया

मिट्टी शीतल होती है अतः यह पेट को ठंडक प्रदान करती है। इससे शरीर की गर्मी शान्त होती है। किसी भी स्थान पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग करते है तो वहां की Blood Capallories में संकुचन होता है जिससे ऊपरी त्वचा का रक्त जो गर्मी उत्पन्न करता है वह अन्दर चला जाता है। इससे रक्त परिसंचरण सीमा और गर्मी शान्त होती है । यहाँ पर जो विजातीय द्रव्य है उनको मिट्टी अपने अंदर अवशोषित कर लेती है। शरीर के अंदर रक्त परिसंचरण तेज होता है जिससे आंतरिक अंग–अवयव भी विजातीय द्रव्यों से मुक्त होते है और दूषित पदार्थ रक्त के साथ मिलकर उत्सर्जन अंगों के माध्यम से बाहर निकल जाते है।

**लाभ–** यह पट्टी पुराने जटिल कब्ज की अचूक चिकित्सा है। यह अजीर्ण, तेज ज्वर, टाइफाइड, पेचिस अति अम्लता, पेट में अल्सर, महिलाओं के मासिक दोष, श्वेत प्रदर, आँव, अपच, नाक से खून आना, लिवर में सूजन, शरीर में जलन, जुकाम, त्वचा पर कील, मुँहासे, हैजा, नये एवं पुराने में उपयोगी, मोटापा एवं पेट कम होने के अलावा जीवनी शक्ति और सुंदरता की वृद्धि तथा रोगों से बचाव तथा पुरानी बीमारियों से मुक्ति मिलती है ।

**सावधानियाँ–** यदि बुखार में कंपकपी लग रही हो, अस्थमा के आने की सम्भावना हो, साइटिका के दर्द में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। मिट्टी में काँच या कोई रासायनिक पदार्थ नहीं होनी चाहिये, इसे खाली पेट लेना चाहिये अर्थात भोजन से 1–2 घंटा पहले या 3–4 घंटा बाद में। ठंड में यदि रोगी कमजोर है तो उसके चारों और केबल लपेट देना चाहिये। पेट के पट्टी के अतिरिक्त आंखों, माथे सिर पर लेप जिनको पाइल्स की शिकायत हो एनस पर मिट्टी की पट्टी लगायी जा सकती है।

**6. संपूर्ण शरीर की मिट्टी लेप**

सम्पूर्ण शरीर पर मिट्टी लगाने के पश्चात् सुखी मिट्टी पूरे शरीर को लगातार ठंडा और शीतल बनाती है और त्वचा को संकुचित करती है। जिससे रक्त में जो विकार उपस्थित होते है वे शरीर के आन्तरिक अंग अवयवों तक पहुँच जाते है और फिर वह विजातीय द्रव उत्सर्जन अंगों के माध्यम से शरीर से बाहर निकल जाता है। इसके आंतरिक त्वचा की उपरी सतह पर जो विजातीय द्रव होते हैं उन्हें मिट्टी अवशोषित कर लेती है ।

मिट्टी में विष को खींचने को अदभुत शक्ति है। गीली मिट्टी को शरीर के किसी रोग युक्त अंग पर बाँध दिया जाय और फिर थोड़े समय बाद उसे खोला जाय तो उस मिट्टी में मनुष्य शरीर का विष बहुत अधिक मात्रा में मिलेगा। इसके अतिरिक्त पोषक तत्व देने की भी पृथ्वी में आश्चर्य जनक क्षमता है। प्रायः सभी पदार्थ में से एक प्रकार की गन्ध युक्त वाष्प निकलती रहती है, फल और पुष्पों की अपनी महक अलग ही होती है, जीव जन्तुओं के शरीरों से भी गन्ध युक्त वायु निकलती है इसी प्रकार पृथ्वी में से भी सदैव एक प्रकार की वाष्प निकलती है। यह वाष्प बड़े अदभुत गुणो से सम्पन्न होती है। पृथ्वी में बड़े अमूल रासायनिक तत्व भी पड़े है। वनस्पतियां औषधियाँ तथा अन्य अनेक खाद्य वस्तुऐं पृथ्वी से ही निकलती है पृथ्वी के रासायनिक द्रव्य ही रूपान्तर करते हुए उपयोगी पेड़ पौधों का रूप धारण करते है। यह महत्वपूर्ण तत्व पृथ्वी से निकलती रहने वाली वाष्प के

साथ बाहर आते रहते है। पृथ्वी के समीप शरीर रखने से वह शरीर को प्राप्त होती रहती है जिसका स्वास्थ्य पर बड़ा अच्छा असर पड़ता है।

इस प्रकार हम मिट्टी चिकित्सा के मूल सिद्धान्तो तथा विधियों को समझ कर विभिन्न रोगों को बिना कोई नकारात्मक प्रभाव के आरोग्य लाभ दे सकते है।

**7. मिट्टी की पट्टी – पेडू की**

**परिचय**

अर्थवेद संहित अन्य पौराणिक ग्रंथों में मिट्टी के रोग निवारक गुणों व चिकित्सकीय महत्व का वर्णन मिलता है। पाश्चात्य देशों ने भी मिट्टी के महत्व को स्विकार किया। आधुनिक या वर्तमान काल में एडोल्फ जस्ट को मिट्टी के प्रयोग का जन्मदाता माना जाता है।

**साधन**

साफ मिट्टी, पानी, टब, एक लकड़ी की ट्रे लगभग एक से सवा इंच लम्बाई, आठ इंच चौड़ी और एक इंच ऊंचाई होनी चाहिए। कम्बल का टूकड़ा लगभग देढ़ फीट लम्बा और एक फीट।

**मिट्टी की विशेषता**

1. यह आंतों में चिपके हुए मल को ढिला करती है।
2. ठंडक शीतलता प्रदान करती है।
3. शोषण की क्षमता मिट्टी शरीर के विजातीय द्रव्यों को शोषित करती है।
4. मांसपेशीयों को मजबूत करती है।

**सिद्धांत**

यह लगातार आधे घण्टे तक शरीर को ठंडक पहुंचाती है।

**विधि**

मिट्टी की पट्टी बनाने के लिए किसी साफ जगह से मिट्टी की दो इंच नीचे से मिट्टी लेते है फिर उसे दिनभर आठ से दस घण्टे धूप में सुखाया जाता है जिससे वह किटाणु रहित हो जाये। उसके बाद पीस या कुट कर छान लेते है, जिससे कंकड़ पत्थर निकल जाये इस मिट्टी को आठ से दस घण्टे या रात भर के लिए भीगा देते है, अब मिट्टी का पेस्ट बनाकर लकड़ी के ट्रे पर पहले सुखी मिट्टी बिछाकर तैयार पेस्ट को उस पर फैला देते है, अंत में गिले हाथ से मिट्टी की सतह को चिकना बना देते है।

रोगी को लेटाकर पेडू पर से कपड़े हटा देते है। उसके बाद मिट्टी को पेडू पर इस तरह पलटते है कि पट्टी नाभी से दो–तीन इंच ऊपर तक ढक जाये, इसके ऊपर कम्बल का टुकडा ढक देते है यदि रोगी को ठंड लगने पर उसे कम्बल ओढ़ाया जाता है। समय पुरा होने पर पेट से मिट्टी हटाकर पेट को कपड़े से पोछ देते है। मिट्टी की पट्टी के पश्चात् एनिमा देने पर आंतों में चिपका मल ढिला होकर शौच के साथ बाहर आ जाता है।

अवधि – 20 से 30 मिनट।

**क्रिया–प्रतिक्रिया**

जिस स्थान पर मिट्टी की पट्टी रखी जाती है वहाँ के मांसपेशियां एवं रक्त नलिकाओं में संकुचन पैदा होने लगता है, जिससे रक्त का संचार अन्दर के अंगों के तरफ बढ़ जाता है। विजातिय द्रव्य अपना स्थान छोड़कर वे उत्सर्जी अंगों की ओर चले जाते है एवं शरीर से बाहर निकल जाते है।

**सावधनियां**

1. मिट्टी चिकनी हो, चुभने वाली न हो।
2. खाली पेट या भोजन के तीन घण्टे बाद लगाये।
3. रोगी को ठंट लगने पर कम्बल ओढ़ा दें।
4. जले कटे या बहने वाला घाव हो तो मिट्टी को सूती कपड़े पर रखें।

**अभ्यास प्रश्न**

1. पाचन तंत्र में कौन सी क्रिया होती है ?
अ. भोजन के पचने की ब. श्वास लेने की प्रक्रिया
स. पित्त बनना द. रक्त शुद्ध होने की प्रक्रिया

2. पाचन तंत्र का अंग कौन नहीं है।
अ. यकृत ब. श्वासनली स. छोटी आँत द. बड़ी आँत

3. उत्सर्जन तंत्र का अंग कौन नहीं है।
अ. मलाशय ब. फुफ्फुस, स. हृदय द. त्वचा

4. शारीरिक क्रिया में उत्पन्न पदार्थ और बिना पचा हुआ भाग किस तंत्र के द्वारा शरीर से बाहर निकाला जाता है।
अ. उत्सर्जन तंत्र ब. पाचन तंत्र स. तंत्रिका तंत्र द. रक्त परिसंचरण तंत्र

5. मूत्र का निर्माण कहाँ होता है ?
अ. पित्ताशय ब. अमाशय स. किडनी द. अग्नाशय

## 12.7 सारांश

प्रकृति का यह नियम है कि उसने जिस जीव को जिस जगह के लिए, जिस ढ़ंग से रहने के लिए रचा है, उसे उस जगह, उसी ढ़ंग से रहना युक्तिसंगत है। मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो अपनी इच्छा से या विवश होकर, अज्ञानवश, प्रकृति के इस लाभदायक नियम को भंग करके धरती से बहुत दूर रहता है।

पाचन तंत्र और उत्सर्जन तंत्र के रोगों की सफल चिकित्सा पृथ्वी तत्व के द्वारा संभव है। मिट्टी में रोग को दूर करने की अद्भूत क्षमता होती है। गीली मिट्टी को शरीर के किसी रोग युक्त अंग पर बांध दिया जाए तो उस मिट्टी में मनुष्य शरीर के दोष निकल जाते है। इसके अतिरिक्त पोषक तत्व देने में भी पृथ्वी में आश्चर्य जनक क्षमता है। सचमुच मिट्टी बड़ी ही लाभदायक वस्तु है उससे लाभ उठाने का हमें सदा ही प्रयत्न करना चाहिए।

## 12.8 पारिभाषिक शब्दावली

आंव – कफ युक्त मल बार–बार आना।
जीर्ण – कमजोर।
प्रदाह – सूजन।
यन्त्रणा – पीड़ा।
झोल – रस।

## 12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अ 2. ब 3. स 4. ब 5. स

## 12.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

चौहान जहान सिंह, (2011) क्लीनिकल डायग्नोसिस एण्ड ट्रीटमेण्ट्स, सुमित प्रकाशन, आगरा, उत्तरप्रदेश

आचार्य पं. श्रीराम शर्मा, पुनरावृत्ति (2011) पंच तत्वों द्वारा संपूर्ण रोगों का निवारण, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, उत्तरप्रदेश

दूरस्थ शिक्षा केन्द्र, (2008), वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियॉ, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड

मुखर्जी कुलरंजन, (2007), दैनन्दिन रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा, सादार्न ऑफसेट प्रिन्टर्स, कलकत्ता, पं. बंगाल

जिन्दल राकेश, (2005) प्राकृतिक आर्युविज्ञान, आरोग्य सेवा प्रकाश, मोदीनगर, उत्तरप्रदेश

## 12.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

प्राकृतिक चिकित्सा के सूत्र – मोहन तीवारी

जीवेम् शरदः शतम् – पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

## 12.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. पाचन तंत्र को समझाते हुए मधुमेह के कारण एवं लक्षण बताइये।
2. पाचन तंत्र से संबंधित रोग आंत उतरना की पृथ्वी चिकित्सा समझाइये।
3. उत्सर्जन तंत्र से संबंधित किन्ही दो रोगो को विस्तार से समझाए।
3. सर्वांग मिट्टी लेप की विधि बताइये।

# इकाई 13 अस्थि तंत्र और त्वचीय तंत्र सम्बंधित रोगों की पृथ्वी चिकित्सा

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 अस्थि तंत्र का सामान्य परिचय
13.3.1 अस्थि तंत्र से संबंधित रोग – ऑस्टियोपोरोसिस
13.3.2 ग्रीवा का स्पांडिलाइटिस
13.3.3 गठिया
13.3.4 आर्थाइटिस घुटने का दर्द
13.4 त्वचीय तंत्र का सामान्य परिचय
13.4.1 त्वचीय तंत्र के रोग – एक्जिमा
13.4.2 खुजली
13.5 अस्थि तंत्र और त्वचीय तंत्र से सम्बंधित रोगों की पृथ्वी चिकित्सा पद्धतियाँ
13.6 सारांश
13.7 पारिभाषिक शब्दावली
13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
13.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामाग्री
13.11 निबंधात्मक प्रश्न

## 13.1 प्रस्तावना

शरीर के प्रत्येक कार्य के लिए कई अंग मिलकर एक तंत्र बनाते हैं जैसे भोजन के पाचन के लिए पाचनतंत्र (Digestive system), श्वसन के लिए श्वसन तंत्र आदि। शरीर के अंगों को उनकी क्रियाओं के अनुसार कुछ प्रमुख तंत्रों में विभाजित किया गया है जिसमें दो प्रधान तंत्र होते है – अस्थि तंत्र और त्वचीय तंत्र।

पृथ्वी (मिट्टी) के महत्व को जानते हुए भारतीय एवं पाश्चात्य चिकित्सों ने बड़े ही स्पष्ट रूप से और विस्तार से इसके विषय में चर्चा की है कि मिट्टी का उपयोग कहाँ–कहाँ है? क्यों है? तथा उसका उपचार कैसे करते है? एवं उसके क्या–क्या फायदे है? इस इकाई में अस्थि तंत्र एवं त्वचीय तंत्र से संबंधित रोगो के कारण व लक्षण तथा उसकी पृथ्वी चिकित्सा के अध्ययन के बाद आप यह सब बता सकते है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप अस्थि एवं त्वचीय तंत्र से संबंधित सामान्य रोगों की मिट्टी चिकित्सा के महत्व को समझा सकेंगें तथा मिट्टी के महत्व को स्वीकार कर सकेंगे।

## 13.2 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई द्वारा आप पृथ्वी चिकित्सा के विभिन्न पहलुओं को जान पायेंगेः–

1. अस्थि तंत्र एवं त्वचीय तंत्र की सामान्य जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
2. अस्थि तंत्र से संबंधित रोगो की जानकारी प्राप्त करेगें।
3. त्वचीय तंत्र से संबंद्यित रोगो की जानकारी प्राप्त करेगें।
4. इन रोगो के लक्षण एवं कारण जान सकेगें और
5. पृथ्वी चिकित्सा द्वारा उपचार जान सकेगें।

## 13.3 अस्थि तंत्र सामान्य परिचय

कड़े ऊतकों से निर्मित ढांचे को अस्थि–तन्त्र या कंकाल–तन्त्र कहते हैं। इसी तन्त्र की सहायता से मनुष्य को सही आकार मिलता है। अगर हम अपने शरीर का कोई भी हिस्सा, जैसे – हाथ, पैर, सिर, अंगुली दबाये, तो नीचे किसी कठोर वस्तु का आ□स होगा, यही अस्थि या हड्डी है। शरीर की कुछ हड्डियां लचीली एवं कम कठोर होती हैं, उसे उपास्थि कहते हैं। नाक की कुछ हड्डीयां, कान की हड्डीयां उपास्थि के उदाहरण हैं। हड्डियों में कठोरता कैल्शियम फास्फेट, कैल्शियम, कार्बोनेट, पेनंनीबिरयम फास्फेट व मैगनेशियम कार्बानेट लवणों से जाती है, जिनमें कैल्शियम फास्फेट की मात्रा सबसे ज्यादा रहती है। शरीर पर से त्वचा और मांस तथा भीतरी अंग निकाल देने पर केवल हड्डियों का ढांचा रह जाता है। कंकाल–तंत्र कड़ी हड्डियों का बना अवश्य है, पर इसमें कई जोड़ होते हैं जिनसे हम शरीर को आवश्यकता व इच्छानुसार मोड़ या घुमा सकते हैं।

ये हड्डियां बाहर से कडी अवश्य होती हैं, पर अन्दर से खोखली होती हैं। इसलिए ये बहुत भारी नहीं होती हैं। अस्थियों का भार शरीर के सोलहवें भाग के बराबर है।

**अस्थि तन्त्र के कार्य**

1. शरीर को आकृति देना :– अस्थि तन्त्र द्वारा ही शरीर का आधार बनता है। शरीर को आकृति अस्थियां ही देती हैं, अन्यथा शरीर मांस–पिंड मात्र रह जाता। अस्थि तन्त्र की विशेष रचना एवं विभिन्नता के कारण ही मछली, मेंढ़क, मगर, पक्षी, विभिन्न चौपायों और मनुष्य की अलग–अलग आकृति है।
2. शरीर के कौमलांगों की रक्षा करना :– शरीर के विभिन्न कोमल एवं महत्वपूर्ण अंग, जैसे–. हृदय, फेफड़े, मस्तिष्क, मेरुदण्ड अस्थियों द्वारा बनाये गये पिंजड़े के कारण ही सुरक्षित रहते हैं ।
3. पेशियों को जुड़ने का स्थान देना :– हमारे शरीर की मांसपेशियां आवश्यकतानुसार घटती–बढ़ती रहती हैं जिससे हम अपने हाथ, पैर या सिर हिला सकते हैं। इनके घटने–बढ़ने के लिए आवश्यक है कि इनके सिरे किसी ठोस आधार से जुडे रहें, तभी ये तन कर या सिकुड़कर अपना कार्य कर पायेगी।
4. श्वसन में संयोग देना :– ट्रैकिया में सम्पूर्ण वायु नलिका के छल्ले और पसलियाँ श्वसन में सहायता करते हैं ।
5. श्रवण में सहायता :– कान के अन्दर की तीन छोटी–छोटी हड्डियां, जिनके नाम इनकस, मैलियस तथा स्टेपीज है, सुनने में मदद करती हैं ।

6. लाल एवं श्वेत रक्त कणिकाओं का निर्माण :– अस्थि के अन्दर, अस्थि–मज्जा रक्त में लाल एवं श्वेत रक्त–कणिकाओं का निर्माण करती है।

7. उत्तोलक (लिवर) का काम करना :– अस्थियों में संधि या जोड़ होने की वजह से ये उत्तोलक का काम करती हैं जिससे मनुष्य बोझा उठा सकता है ।

**अस्थि–पंजर की बनावट**

हमारे शरीर में कुल 206 हड्डियां पायी जाती हैं, जो विभिन्न स्थानों पर आवश्कतानुसार अलग–अलग आकार की होती हैं जैसे खोपड़ी व वक्ष में चपटी एवं हाथ व पैर में लम्बी एवं खोखली होने के कारण हड्डियां हल्की होती हैं। यदि ये हल्की न होती तो मांसपेशियां इन्हें इच्छानुसार आसानी से घुमा नहीं पाती।

**13.3.1 अस्थि तंत्र संबंधित रोग – ऑस्टियोपोरोसिस**

हड्डियों में छिद्रो के उत्पन्न हो जाने पर हड्डियों में भरभरा कर ढह जाने या टूट जाने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। इसे लोग हड्डियों में पानी उतरने की बीमारी के नाम से जानते है। यह रोग बुढ़ापे में होता है। आजकल दुनिया में वृद्धों की संख्या बढ़ रही है, जिनमें हर दूसरे या तीसरे को यह बीमारी गिरफ्त में ले लेती।

शरीर में अस्थियाँ मांसपेशियों को कार्य करने के लिए केवल मजबूत ढाँचा ही प्रदान नहीं करती, बल्कि रक्त कोशिकाओं के निर्माण जैसे महत्वपूर्ण कार्य के साथ कैल्शियम एवं फास्फोरस लवणों के संचय का भी कार्य करती हैं। शरीर के अन्य ऊतकों की भांति अटियोब्लास्ट, आस्टियोसाइड्स एवं आस्टियोक्लास्ट नामक कोशिकाएँ अस्थि में होती है। इन कोशिकाओं के बीच में मजबूत मेट्रिक्स होता है। ये अस्थि कोशिकाएँ मैट्रिक्स का निर्माण एवं विखंडन तो करती ही है, इसके अतिरिक्त कैल्शियम एवं फास्फोरस का शरीर एवं अस्थियों में लेन देन का कार्य भी करती है। इस रोग की समस्या बूढ़ व्यक्तियों में अधिक पायी जाती है। शारीरिक गतिविधियाँ जारी रखना इस रोग का उत्तम निदान है।

**कारण :**

1. कैल्शियम तथा अन्य आवश्यक खनिज तत्वों के शरीर में कम हो जाने पर हड्डियाँ कमजोर हो जाती है।

2. अनेकों व्यक्तियों की रीढ़ की हड्डियाँ ऑस्टियोपोरेसिस रोग के कारण घिसकर छोटी हो जाती है।

3. कभी–कभी हड्डियों मे फैक्चर हो जाने से रीढ़ गोलाकार–सी हो जाती है तथा कमर में दर्द आरम्भ हो जाता है।

4. वृद्धावस्था में शरीर की अस्थियों के कुल भार का 0.3–0.5 प्रतिशत तक पुरूषों में एवं 2–3 प्रतिशत तक महिलाओं में कम हो जाता है इसके बाद होने वाले हारमोंस की कमी के कारण 35–40 प्रतिशत तक शरीर की अस्थियों भार क्षय हो जाता है, जो महिलाओं में इस रोग के अधिक पाए जाने का कारण है।

5. श्रमहीन जीवन में अस्थियों में कैल्शियम का जमाव तो कम होता ही है साथ ही साथ अस्थियों के घनत्व में भी कमी आ जाती है।

6. वृद्ध व्यक्ति के जीवन काल में लंबे समय तक कैल्शियम एवं विटामिन डी की कमी रही हो, तो भी ऑस्टियोपोरोसिस की संभावना अधिक होती है।

7. संतानहीनता, अधिक संताने एवं कम अतंराल में गर्भधारण भी ऑटियोपोरोसिस का कारण हो सकता है।

8. ड्रग्स–जैसे हेपेरिन, मेथोट्रेक्सेट, इथानोल आदि के सेवन से।

9. दीर्घकालीन बीमारी– रियूमेटाइड ऑर्थ्राइटिस, सिरहोसिस, रीनल ट्यूबुलर आदि। आहार में कैल्शियम की कमी, व्यायाम की कमी और निष्क्रियता।

**लक्षण :**

1. रोग की प्रारम्भिक अवस्था में पीठ व कमर के ऊपरी भाग में हल्का–हल्का दर्द हमेशा बना रहता है, जो श्रम करने या आगे झुकने पर बढ़ जाता है। आराम करने के बाद तेज दर्द तो ठीक हो जाता है लकिन हल्का दर्द बना रहता है।
2. रोग के अत्यधिक बढ़ जाने पर रीढ़ की हड्डी में सूक्ष्म फ्रैक्चर होते है, जिन्हे एक्स–रे द्वारा नहीं देखा जा सकता है।
3. कमर आगे की ओर झुक जाती है।
4. कूल्हे और कलाई की हड्डी मामूली चोट से ही टूट सकती है।
5. ऑस्टियोपेरोसिस रोग न केवल कमर की हड्डियों वरन् शरीर की सभी हड्डियों को प्रमाणित करता है। परंतु रीढ़ की हड्डियों पर चूँकी अत्यधिक दबाव पड़ता है, अतः ओस्टियोपोरोसिस के लक्षण सर्वप्रथम कमर के भाग में ही परिलक्षित होते है।
6. व्यक्ति शारीरिक रूप से सिकुड़कर छोटा हो जाता है।

### 13.3.2 ग्रीवा का स्पांडिलाइटिस/ग्रीवा का दर्द

आज के तनावपूर्ण जीवन में गर्दन की पीड़ा अर्थात सरवाइकल स्पाण्डिलाइटिस आम बीमारी के रूप में पनपती जा रही है। उम्र के साथ या अन्य रोगों से हड्डियों में बदलाव आ जाते है। यह बदलाव सरवाइकल स्पाइन में भी आते है। इससे इंटर वर्टिब्रल डिस्क के बीच का स्थान कम हो जाने से रोगी गर्दन में दर्द महसूस करता है। इसे ग्रैव कशेरूकाशोथ, सरवाइकल ओस्टियोआरथ्रोसिस, सरवाइकल ओस्टियोआर्थराईटिस आदि नामों से भी जाना जाता है। यह बीमारी गर्दन की नसों पर दवाव पड़ने के कारण हुआ करती है। गर्दन के ऊपर की सात कशेरूकाएं सरवाइकल रीजन में होती है, जिसमें घिसावट होने या वहां की कशेरूकाओं में अकड़न होने से यह दर्द पैदा होता है। इस दर्द के शुरू होते ही उठने, बैठने, लेटने और चलने–फिरने में भी पीड़ा होती है।

प्रौढ़ और वृद्धों में सरवाइकल मेरुदंड में डी–जेनरेटिव बदलाव साधारण क्रिया है और सामान्यतया इसके कोई लक्षण भी नहीं उभरते। वर्टेब्रा के बीच के कुशनों के डी–जेनरेशन से नस पर दबाव पड़ता है और इससे सर्वाइकल स्पांडिलाइसिस के लक्षण दिखते हैं। सामान्यतः 5वीं और 6ठी (सी5,सी6), 6ठी और 7वीं (सी6,सी7) और 4थी और 5वीं (सी4,सी5) के बीच डिस्क का सरविकल वर्टेब्रा प्रभावित होता है।

रीढ़ की हड्डी का गर्दन वाला भाग सरवाइकल स्पाईन कशेरूकाओं एवं उनकी बॉडी के मध्य डिस्क से बनता है। गर्दन की चाल सुचारू रूप से चलाने के लिए गर्दन में 32 जोड़े होते है। गर्दन की 85 प्रतिशत चाल ऊपर की दो कशेरूकाओं के कारण होती है। गर्दन के दर्द से होने वाली परेशानी, चाल भी कम हो जाने से दैनिक कार्यो में अधिक रूकावट बनती है। सर्वाइकल भाग में डी–जेनरेटिव परिवर्तनों वाले व्यक्तियों में किसी प्रकार के लक्षण दिखाई नहीं देती या असुविधा महसूस नहीं होती।

सिर को दाएं–बाएं घुमाने पर अकड़न और दर्द के साथ कड़कड़ाहट की आवाज भी सुनाई देती है। सिर दर्द के साथ–साथ चक्कर आना, कमजोरी महसूस करना, आंखों के आगे अंधेरा छा जाना, उल्टी होना आदि लक्षण शुरू हो जाते हैं। गर्दन घुमाने और झुकाने पर काफी पीड़ा महसूस होती है। गले, सिर के पीछे और भुजाओं में जलन होती है। महिलाओं के स्तन अकड़ जाते हैं. किसी काम में रोगी का मन नहीं लगता।

सरवाइकल स्पाण्डिलाइसिस रोग के कारण दिमाग में खून ले जाने वाली खून की नलियों में कुछ समय के लिए रूकावट आ सकती है। इसके लगातार रहने पर अचानक हाथों में भी तेज दर्द होने लगता है। लापरवाही से पेशियों में कमजोर होने के साथ–साथ पक्षाघात भी हो सकता है। नाड़ी पर दबाव पड़ने के कारण गले (गरदन) से शुरू होकर कंधे से होता हुआ पैरों के अगूंठे तक इसका दर्द महसूस होता है।

**कारण :**

1. स्पांडिलाइसिस या सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस गर्दन के आसपास के मेरुदंड की हड्डियों की असामान्य बढ़ोतरी और सरविकल वर्टेब्रा के बीच के कुशनों (इसे इंटरवटेबल डिस्क के नाम से भी जाना जाता है) में कैल्शियम का डी–जेनरेशन, बहिःक्षेपण और अपने स्थान से सरकने की वजह से होता है।
2. लंबे समय तक कम्प्यूटर या लैपटॉप पर बैठे रहना।
3. मोबाइल फोन पर गर्दन झुकाकर देर तक बात करना।
4. फास्ट–फूड्स व जंक–फूड्स का सेवन, इस मर्ज के होने के कुछ प्रमुख कारण हैं।
5. दिमाग में खून ले जाने वाली खून की नलियों में कुछ समय के लिए रूकावट आ जाती है।

**लक्षण :**

सामान्यतः लक्षण तभी दिखाई देते हैं जब सरवाइकल नस या मेरुदंड में दबाव या खिंचाव होता है। इसमें निम्नलिखित समस्याएं भी हो सकती हैं :–

1. गर्दन में दर्द जो बाजू और कंधों तक जाती है।
2. गर्दन में अकड़न जिससे सिर हिलाने में तकलीफ होती है।
3. सिर दर्द विशेषकर सिर के पीछे के भाग में (ओसिपिटल सिरदर्द) कंधों, बाजुओं और हाथ में झुनझुनाहट या असंवेदनशीलता या जलन होना।
4. मिचली, उल्टी या चक्कर आना।
5. मांसपेशियों में कमजोरी या कंधे, बांह या हाथ की मांसपेशियों की क्षति।
6. निचले अंगों में कमजोरी, मूत्राशय और मलद्वार पर नियंत्रण न रहना।

**उपचार :**

इसके लिए कई प्रकार के उपचार उपलब्ध हैं। इन उपचारो का उद्देश्य होता है :–

1. नसों पर पड़ने वाले दबाव के लक्षणों और दर्द को कम करना।
2. स्थायी मेरुदंड और नस की जड़ों पर होने वाले नुकसान को रोकना।
3. आगे के डी–जनरेशन को रोकना।

इन्हें निम्नलिखित उपायों से प्राप्त किया जा सकता है :–

1. गर्दन की मांस पेशियों को सुदृढ़ करने के लिए किये गये व्यायाम से लाभ होता है, साथ ही साथ प्राकृतिक चिकित्सा के माध्यम से अतिशय इस रोग को दूर किया जा सकता है।
2. ''सरवाइकल कॉलर'' से गर्दन के हिलने डुलने को नियंत्रित कर दर्द को कम किया जा सकता है।
3. गर्म पानी की थैली से या कांच की बोतल में गर्म पानी भरकर सिकाई करें। सिकाई के बाद तुरंत खुली हवा में न जाएँ, न ही कोई ठंडा पेय पिएँ।
4. दर्द होने पर एक से तीन हफ्ते तक का आराम, नियमित सुनियोजित व्यायाम, सिंकाई एवं पृथ्वी चिकित्सा लाभकारी सिद्ध होती है।

**13.3.3 गठिया :–** गठिया, ग्रन्थिवात, कोष्टि शीर्ष तथा गाउट एक ही रोग के अलग–अलग नाम हैं। पुराने गठिया में थोड़ा पथरा जाते हैं जो बहुत मुश्किल से ठीक होते हैं। ऐसी गठिया को अंग्रजी में ह्यूमाट्वाड अर्थाराइटिस कहते हैं।

**कारण :–**

1. अनियमित दिनचर्या एवं अनियमित खानपान।
2. व्यायाम एवं शारीरिक गतिशीलता की कमी।
3. यह दूषित रक्त एवं रक्त के अवरोध के कारण होने वाला रोग है।
4. यह रोग आंतरिक अशुद्धियों की अधिकता से उत्पन्न होता है।

**लक्षण :–**

1. गठिया रोग, पैरों से विशेषकर पैर के अंगूठे से आरम्भ होता है और धीरे–धीरे शरीर के अन्य छोटे–छोटे जोड़ों या गांठों में फैल जाता है।
2. गठिया के स्थान पर दर्द और सूजन होती है, तथा कभी–कभी वह स्थान गर्म और रक्त वर्ण भी हो जाता है जिसको छूने या हिलाने से तकलीफ बढ़ जाती है।
3. किसी गठिया में शरीर के कुछ जोड़ों में कभी–कभी ही दर्द होता है, किसी में कुछ खास–खास जोड़ों में बराबर दर्द बना रहता है, किसी गठिया में दर्द एक जोड़ से दूसरे, तीसरे में दौड़ता प्रतीत होता है तथा कई गठिया ऐसा तकलीफदेह होता है कि रोगी चारपाई से उठ नहीं सकता।
4. गठिया में रात्रि के पिछले पहर यानी सूर्योदय के थोड़ा पहले रोगी अधिक तकलीफ महसूस करता है। उस समय सोता हुआ रोगी गठिया की तकलीफ से प्रायः जाग उठता है।
5. गठिया के साथ ज्वर भी होता है जो प्रायः 102 डिग्री से आगे नहीं बढ़ता।
6. रोग की बढ़ी हुई दशा में रोगी को कब्ज, सिरदर्द, स्नायुविक उत्तेजना, चिड़चिड़ापन, अस्थिरता, अधीरता तथा मूत्र–दोष आदि उपसर्ग रोग अधिक सताते हैं।

**सामान्य चिकित्सा :–**

स्नायु संबंधी समस्त रोगों की प्राथमिक चिकित्सा के बारे में ऊपर विस्तार से लिखा जा चुका है। उसके अनुसार उपवास, रसाहार, फलाहार तथा भोजन आदि के नियमों को इस रोग में भी कड़ाई के साथ पालन करना चाहिये, यूरिक एसिड की चीजें नहीं खानी चाहिये, साथ ही साथ रोग और रोगी की अवस्था को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित उपचार काम में लाने चाहिये :–

1. सिर, चेहरे और रोग वाले स्थान को केले की हरी पत्तियों से ढ़ककर लगभग आधे घंटे तक नंगे बदन धूप में रहना चाहिये। उसके बाद ठण्डे जल से भीगी और निचोड़ी तौलियों से पूरे बदन को पोछना या ठण्डे पानी से नहा लेना चहिये।
2. गठिया वाले पैर को दिन में तीन बार आधे घंटे तक गरम जल में डूबा रखने के बाद या उस पर भांप देने के बाद रोग की जगह पर ठंडे जल से भीगी कपड़े की पट्टी की रखकर, गरम हो जाने पर उसे थोड़ी देर तक पुनः–पुनः बदलते रहना चाहिये या एक किलो पीछे 50 ग्राम नमक मिले गरम पानी से भीगे और निचोड़े कपड़े से जोड़ो को सेंककर उन्हें ठण्डे पानी से धो देना चाहिये या कच्चे आलुओं को पीसकर उन पर बांध देना चाहिये।
3. गठिया के रोगी को जल प्रचुर मात्रा में पीना चाहिये विशेषकर सुबह–शाम गरम पानी में नींबू का रस निचोड़कर जरूर पीना चाहिये।

4. पुरानी गठिया में 14 दिनों तक रसाहार करने के बाद सवेरे कटि–स्नान और शाम को मेहन–स्नान लेना चाहिये तथा कब्ज दूर होने तक रोज गरम पानी का एनिमा लेना चाहिये।
5. हर तीसरे दिन गरम पानी के टब में लेटना चाहिये। दोपहर को ठंडा स्पंज–बाथ तथा घर्षण स्नान करना चाहिये। शेष उपचार आवश्यकता अनुसार वात ज्वर की चिकित्सा के समान चलाना चाहिये और यदि रोग फिर भी कुछ बाकी रह जाये अथवा जाकर वापस लौट आवे तो दो–दो मास के अंतर से पूरे चिकित्सा क्रम को रोग के समूल नष्ट होने तक दोहराते रहना चाहिये।
6. नारंगी रंग के बोतल के सूर्य तप्त जल की 50 ग्राम मात्रा की चार खुराक प्रतिदिन पीने और एक घंटा तक पहले लाल और नारंगी रंग का प्रकाश डालने और सूर्यतप्त लाल रंग के तेल से मालिश करने से गठिया रोग जल्द आराम होता है।

### 13.3.4 आर्थ्राइटिस – घुटने का दर्द

संधियों में होने वाले दीर्घकालीन शोथ या बदलाव को ''संधिशोथ'' कहते हैं। जोडों में दर्द को अंग्रेजी में ''आर्थ्राइटिस'' के नाम से जाना जाता है। यह शब्द दो ग्रीक शब्दों ''अर्थरान'' और ''इटिस'' से मिलकर बना है। ''अर्थरान'' का तात्पर्य जोड़ तथा ''इटिस'' का मतलब जलन होता है। यह एक लंबी चलने वाली बीमारी है। इस रोग की प्रारंभिक अवस्था में लगभग संपूर्ण शरीर प्रभावित तथा एक या दो जोड़ पूर्णरूपेण क्षतिग्रस्त हो जाते है। परिणामतः रोगी कमजोर और अपंग हो जाता है। यह शर ीर की किसी भी संधि में हो सकता है। इसमें संपूर्ण संधि में बदलाव आ जाते है। यह एक साथ अनेक संधियों में हो सकता है। यह रोग निरंतर बढ़ने वाला रोग है।

**रोग की प्रकृति –** सर्दी का खुशनुमा मौसम कई लोगों खासतौर पर अधेड़ उम्र के लोगों तथा बुजुर्गों के लिए परेशानी बनकर आता है। इस मौसम में वे अक्सर जोड़ों के दर्द से परेशान रहते है। अधिकतर लोग इसे मामूली–सा दर्द समझकर दर्द निवारक गोलियों का सहारा लेते हैं और राहत महसूस कर लेते हैं, लेकिन जोड़ों में अक्सर रहने वाला यह दर्द आर्थ्राइटिस का सूचक हो सकता है। अगर शुरूआती दौर में इसका इलाज नहीं कराया गया तो रोगी को अपना बाकी जीवन अपाहिज बनकर गुजारना पड़ सकता है।

आर्थ्राइटिस कई प्रकार की होती है, लेकिन मुख्य रूप से इसे दो रूपों में जाना जाता है– आस्टियो आर्थ्राइटिस और रह्यूमेटिक आर्थ्राइटिस। रह्यूमेटाइड आर्थ्राइटिस, जिसे सामान्य बोलचाल में गठिया कहा जाता है।

अस्टियो आर्थ्राराइटिस हालांकि बुढ़ापे का रोग है, लेकिन इसकी शुरुआत 30–35 साल की उम्र से भी हो सकती है। यह रोग पुरूषों की तुलना में महिलाओं को अधिक होता है। इसमें घुटने, कूल्हे और रीढ़ जैसे उन बड़े जोड़ों में दर्द होता है जिन पर जोर ज्यादा पड़ता है।

**कारण :–**

आर्थ्राइटिस की लगभग 100 से अधिक किस्में हैं। इनमें सर्वाधिक पायी जाने वाली बीमारी आस्टिया आर्थ्राइटिस है। आस्टियों आर्थ्राइटिस का कारण अभी तक ज्ञात नहीं है, फिर भी मुख्य रूप से इसके तीन तत्कालीक कारण विदित है–

1. मोटापा
2. बुढ़ापा
3. जोड़ों का अत्यधिक क्षरण।

4. लगातार पालथी मारकर या घुटने मोड़ कर बैठने से।
5. सीढ़ियाँ चढ़ने–उतरने सें
5. शारीरिक व्यायाम बिल्कुल नहीं करने से।
6. शरीर का वजन अधिक होने जैसे कारणों से हड्डियों पर अधिक दबाव पड़ता है, जिससे जोड़ प्रभावित होते हैं।

**लक्षण :–**

1. बीमारी की शुरूआत में रोगी को जोड़ों में दर्द होने लगता है।
2. सूजन आ जाती है और जोड़ टेढ़े होने लगते है।
3. जिससे रोगी का चलना–फिरना तक दूभर हो जाता है।
4. रह्यूमेटाइड आर्थ्राइटिस या गठिया रोग किसी भी उम्र के स्त्री–पुरुष को हो सकता है, लेकिन आमतौर पर इसकी भी शुरुआत 30–40 शाल की उम्र से ही हो जाती है।
5. यह रोग पुरुषों की तुलना में महिलाओं में तीन गुना अधिक होता है। इस रोग में हाथ पैर के छोटे जोड़ों में दर्द होता है।
6. आमतौर पर इसकी शुरूआत उँगली के जोड़ों से होती है।
7. सर्दी के मौसम में यह रोग अधिक सताता है। खासकर सुबह जागने के बाद काफी देर तक हाथों तथा पैरों में जकड़न होती है। हालांकि दिनचर्या के साथ यह अकड़न और दर्द कम होता जाता है।

## 13.4 त्वचीय तंत्र का सामान्य परिचय

नाना प्रकार के ऊतक (tissue) मिलकर शरीर के विभिन्न अंगों (organs) का निर्माण करते हैं। इसी प्रकार, एक प्रकार के कार्य करनेवाले विभिन्न अंग मिलकर एक अंग तंत्र (organ system) का निर्माण करते हैं। कई अंग तंत्र मिलकर जीव (जैसे, मानव शरीर) की रचना करते हैं। शरीर की रक्षा के लिए सम्पूर्ण शरीर त्वचा से ढंका रहता है। त्वचा का बाहरी भाग स्तरित उपकला (Stratified epithelium) के कड़े स्तरों से बना होता है। बाह्म संवेदनाओं को अनुभव करने के लिए तंत्रिका के स्पर्शकण होते हैं।

त्वचा से गरमी ठंढक, मृदुता, कठोरता, पीड़ा, स्पर्श आदि का ज्ञान होता है। त्वचा के दो भाग होते हैं :– 1. बाह्य त्वचा तथा 2. अंतस्त्वचा। तलुए और हथेली में त्वचा की मोटाई मुख की त्वचा की मोटाई से 10 गुनी होती है। त्वचा शरीर को बाहर से आवृत्त कर रक्षा एवं मलविसर्जन भी करती है। त्वचा में एक स्तर रंजक कणों का भी होता है। त्वचा में रोमकूप तथा स्वेद ग्रंथियाँ भी होती हैं। त्वचा ताप का नियंत्रण भी करती है। इसी तरह त्वचा में अवशोषण का कार्य भी होता है। त्वचा में नख शय्या भी होती है ।

### 13.4.1 त्वचीय तंत्र के रोग – एक्जिमा

एक्जिमा रोग शरीर की त्वचा को प्रभावित करता है और यह एक बहुत ही कष्टदायक रोग है। यह रोग स्थानीय ही नहीं बल्कि पूरे शरीर में हो सकता है। एक्जिमा को आयुर्वेद में कुष्ठ के ही अंतर्गत माना गया है। यह शरीर के किसी भी भाग में हो सकता है।

यह दो प्रकार का होता है :–

1. बहता हुआ एक्जिमा,
2. सूखा एक्जिमा।

आमतौर पर एक्जिमा के बारे में माना जाता है कि यह बीमारी संपर्क में आने पर फैलती है, लेकिन साइंटिस्ट्स का कहना है कि इसके जेनेटिक कारण भी हो सकते हैं। अमेरिका की ओरेगॉन स्टेट यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिकों ने अपनी रिसर्च में पाया है कि एक खास प्रोटीन सीटीआईपी–2 की कमी से एक्जिमा हो सकता है। यह प्रोटीन शरीर में कई किस्म के जेनेटिक और मेटाबॉलिक फंक्शंस को संपन्न कराने में अहम भूमिका निभाता है। वैज्ञानिक कहते हैं कि सीटीआईपी–2, टीएसएलपी नाम के एक प्रोटीन को निष्प्रभावी करने का काम करता है, जो कि स्किन पर सूजन लाता है। साइंटिस्ट्स कहते हैं कि सीटीआईपी–2 का अगर शरीर में उत्पादन कम हो रहा हो तो टीएसएलपी ज्यादा सक्रिय हो जाता है। इसके कारण स्किन पर सूजन के साथ ही एक्जिमा के अन्य लक्षण भी उभर आते हैं। वैज्ञानिकों का कहना है कि इस नई खोज से एक्जिमा का इलाज करने में आसानी होगी।

**लक्षण :–**

1. यह रोग अधिकतर कानों के पास होता है।
2. गर्दन पर तथा अंगुलियों में होता है।
3. त्वचा पर यह मूँग या उड़द की दाल जितने आकार में लेकर कई इंच घेर लेता है।
4. जहाँ यह रोग होता है वहाँ त्वचा लाल हो जाती है, त्वचा कड़ी व रूखी हो जाती है।
5. उसमें थोड़ी सूजन भी आ जाती है।
6. रोग की उग्रता में रोग के स्थान पर जलन होती है और खाज होती हैं।
7. कभी– कभी वहां से द्रव्य रिसने लगता है।
8. बहता हुआ एक्जिमा ही पुराना पड़कर सूखे एक्जिमा का रूप धारण करता है जिसकी चमड़ी खुजला–खुजला कर छिलती रहती है और पर्त उधड़–उधड़कर गिरती रहती है।
9. रात के समय इस रोग का प्रकोप और भी अधिक हो जाता है।
10. एक्जिमा रोग खुश्क होता है जिसके कारण शरीर की त्वचा खुरदरी तथा मोटी हो जाती है और त्वचा पर खुजली अधिक तेज होने लगती है।

**कारण :–**

1. एक्जिमा रोग अधिकतर गलत तरीके के खान–पान के कारण होता है। गलत खान–पान की वजह से शरीर में विजातीय द्रव्य बहुत अधिक मात्रा में जमा हो जाते हैं।
2. कब्ज रहने के कारण भी एक्जिमा रोग हो जाता है।
3. दमा रोग को ठीक करने के लिए कई प्रकार की औषधियां प्रयोग करने के कारण भी एक्जिमा रोग हो जाता है।
4. शरीर के अन्य रोगों को दवाइयों के द्वारा दबाना, एलर्जी, निष्कासन के कारण त्वचा निष्क्रीय हो जाती है जिसके कारण एक्जिमा रोग हो जाता है।
5. रक्त विषाक्तता के कारण।
6. इसके अतिरिक्त उत्तेजक साबुन व्यवहार करने, कच्चे रंग का वस्त्र पहनने, गंदा मोजा आदि प्रयोग करने तथा रंग, पालिश, सोडा एवं गंधक आदि वस्तुओं का धंधा करने से भी इस रोग के होने की संभावना रहती है।
7. मधुमेह, अपच, गठिया आदि रोगों के पुछल्ला के रूप में भी प्रायः यह रोग होता है जिनको दूर हो जाने पर यह रोग आप से आप चला जाता है।
8. जिन बच्चों को अपनी मां का दूध कम या बिल्कुल ही नहीं मिलता अथवा अस्वच्छ दूध पिलाया जाता है, उन्हें भी यह रोग अक्सर लग जाता है।

**सामान्य चिकित्सा :–**

1. प्रति सप्ताह एक दिन का उपवास केवल जल पीकर और एनिमा लेकर करें।
2. एक्जिमा रोग में सबसे पहले रोगी व्यक्ति को गाजर का रस, सब्जी का सूप, पालक का रस तथा अन्य रसाहार या पानी पीकर 3–10 दिन तक उपवास रखना चाहिए। फिर इसके बाद 15 दिनों तक फलों का सेवन करना चाहिए और इसके बाद 2 सप्ताह तक साधारण भोजन करना चाहिए। इस प्रकार से भोजन का सेवन करने की क्रिया उस समय तक दोहराते रहनी चाहिए जब तक की एक्जिमा रोग पूरी तरह से ठीक न हो जाए।
3. इस रोगी से पीड़ित रोगी को फल, हरी सब्जी तथा सलाद पर्याप्त मात्रा में सेवन करने चाहिए तथा 2–3 लीटर पानी प्रतिदिन पीना चाहिए।
4. एक्जिमा रोग से पीड़ित रोगी को नमक, चीनी, चाय, कॉफी, साफ्ट–ड्रिंक, शराब आदि पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए।
5. प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार एक्जिमा रोग से पीड़ित रोगी को शाम के समय में लगभग 15 मिनट तक कटिस्नान करना चाहिए।
6. इसके बाद पीड़ित रोगी को नीम की पत्ती के उबाले हुए पानी से स्नान करना चाहिए। इस पानी से रोगी को एनिमा क्रिया भी करनी चाहिए जिससे एक्जिमा रोग ठीक होने लगता है।
7. सुबह के समय में रोगी व्यक्ति को खुली हवा में धूप लेकर शरीर की सिंकाई करनी चाहिए तथा शरीर के एक्जिमा ग्रस्त भाग पर कम से कम 2–3 बार स्थानीय मिट्टी की पट्टी का लेप करना चाहिए। जब रोगी के रोग ग्रस्त भाग पर अधिक तनाव या दर्द हो रहा हो तो उस भाग पर भाप तथा गर्म–ठंडा सेंक करना चाहिए।
8. एक्जिमा रोग से पीड़ित रोगी को सप्ताह में 1–2 दिन भापस्नान तथा गीली चादर लपेट स्नान करना चाहिए। स्नान करने के बाद रोगग्रस्त भाग की कपूर को नारियल के तेल में मिलाकर मालिश करनी चाहिए या फिर सूर्य की किरणों के द्वारा तैयार हरा तेल लगाना चाहिए। रोगी व्यक्ति को इस उपचार के साथ–साथ सूर्यतप्त हरी बोतल का पानी भी पीना चाहिए।
9. नीम की पत्तियों को पीसकर फिर पानी में मिलाकर सुबह के समय में खाली पेट पीना चाहिए जिसके फलस्वरूप एक्जिमा रोग धीरे–धीरे ठीक होने लगता है।
10. प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार सूत्रनेति, कुंजल तथा जलनेति करना भी ज्यादा लाभदायक है। इन क्रियाओं को करने के फलस्वरूप एक्जिमा रोग कुछ ही दिनों में ठीक हो जाता है।
11. एक्जिमा रोग से पीड़ित रोगी को प्राकृतिक चिकित्सा से इलाज कराने के साथ–साथ कुछ खाने पीने की चीजों जैसे– चाय, कॉफी तथा उत्तेजक पदार्थ का परहेज भी करना चाहिए तभी यह रोग पूरी तरह से ठीक हो सकता है।
12. एक्जिमा रोग को ठीक करने के लिए हरे रंग की बोतल के सर्यूतप्त नारियल के तेल से पूरे शरीर की मालिश करनी चाहिए और धूप में बैठकर या लेटकर शरीर की सिंकाई करनी चाहिए। इससे एक्जिमा रोग कुछ ही दिनों में ठीक हो जाता है।

**13.4.2 खुजली**–खुजली एक ऐसा चर्म रोग हैं कि समय रहते इसका इलाज नहीं किया गया तो यह फैलता जाता है। दाने या बिना दाने वाली खुजली भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में भिन्न भिन्न प्रकार की हो सकती हैं। कोई खुजली स्नान के बाद कम हो जाती है, कोई रात को कपड़े बदलते समय बढ़ जाती है, कोई गर्म सेंक से घटती है, कोई स्थान बदल

देती है। एक जगह खुजली ठीक होती ही दूसरी जगह होने लगती है। किसी खुजली में खुजलाते खुजलाते खून निकलने लगता है।

यह बीमारी त्वचा के किसी भी हिस्से में हो सकती है मगर विशेषकर यह हाथ–पांव की अंगुलियों की संधियों में अधिक होती है। इसे खेसीरा भी कहते हैं। इस संक्रामक रोग में छोटी–छोटी फुन्सियां निकलती है जिसमें अधिक खुजलाहट तथा जलन होती है। बाद को ये पककर फूटती भी है और त्वचा पर काफी जगह घेर लेती है। खुजली सूखी और तर दो प्रकार की होती है। इसके कारण वे ही है जो अन्य चर्म रोग के हैं।

**खुजली विभिन्न प्रकार की होती है :–**

1. बिना दानों के खुजली
2. दाने वाली खुजली
3. बिना दाने या दाने वाली खुजली के कारण खुजली के अन्य लक्षण उत्पन्न होते हैं।
4. खुजली पूरी त्वचा, सिर, मुंखपांव अंगुलियों, नाक, हाथ या प्रजनन अंग आदि अंगों में हो जाती है।
5. बिना दानों वाली या दानों वाली खुजली खुश्क या तर हो सकती है।

**कारण :**

1. यह एक फंगस के कारण होने वाला त्वचा रोग है।
2. अमेरिका के नैशनल इंस्टिट्यूट्स ऑफ हेल्थ के साइंटिस्ट्स ने इस बारे में पता लगाया है उनका कहना है कि खुजली के लिए नैट्रियूरेटिक पोलिपेपटाइड बी (एनपीपीबी) नाम का एक मॉलिक्यूल जिम्मेदार है। यह स्पाइनल कॉर्ड के एक खास नर्व सेल में जाकर बैठ जाता है जिससे दिमाग को खुजली होने का संकेत मिलता है।
3. गीले कपड़े पहनना।
4. स्वच्छता का ध्यान न देना।
5. रक्त दूषित होना।

**लक्षण :**

1. इस रोग में शरीर पर छोटे–छोटे दाने निकल आते हैं जो गोल चक्रों में होते हैं।
2. त्वचा में उभरे इन गोल चक्रों में खुजली एवं सूजन पैदा हो जाती है जो कि खीझ पैदा करती है।
3. यह त्वचा पर होने वाला अप्रिय अनुभूति (सेन्सेशन) है जिसमें उस स्थान को बार–बार खुरचने का जी करता है।
4. इससे व्यक्ति काफी परेशान और निराश हो जाता है।

**सामान्य चिकित्सा**

1. अन्य रोगों की भांति खुजली को भी पारा, गंधक या हड़ताल आदि विषैली दवाइयों के प्रयोग से दबाना अतीव भयानक है। ऐसा करने से बाद में शरीर में अन्य भयंकर बीमारियाँ आ लगती हैं जिनसे छुटकारा पाना मुश्किल होता है।
2. आरम्भ में 1–2 दिनों तक उपवास करना या फल जूस, साग–सब्जी के रस पर रहना, साथ ही एनिमा लेना जरूरी उपाय है। उसके बाद 3 से 7 दिनों तक फलों और उबली सब्जियों पर रहें।
3. सप्ताह में एक बार सारे शरीर का भांप स्नान लें और उसके बाद कटि स्नान।
4. रात को सोते समय पेडू पर और रोगी स्थान पर गीली मिट्टी की पट्टी बांध कर सोयें।

5. कटि–स्नान रोज दो बार अवश्य लें।

6. फलों एवं उबली सब्जियों पर रहने के बाद रुचि अनुसार कच्ची साग–सब्जी, फल, हरा चना, कच्चा दूध, नींबू, गेंहूँ और चने की रोटी, शहद, मट्ठा तथा सूखे मेवे आदि में से दो–एक चीजें एक समय के भोजन में शामिल करें।

7. नींबू मिला पानी अधिक पियें, नमक से परहेज।

8. सप्ताह में तीन बार गीली मिट्टी का सारे बदन पर लेप लगाकर धूप में बैठे और सूख जाने पर स्नान करें या एक आदमकद टब में पानी भरकर उसमें 20–30 मिनट लेटें।

9. हरी बोतल का सूर्य तप्त जल 50 ग्राम की मात्रा में दिन में चार बार लें या हरा प्रकाश 30 मिनट तक प्रतिदिन रोग की जगह या पूरे शरीर पर डालें।

10. इस रोग में सदैव खुली हवा में रहना, घूमना तथा श्वास लेना लाभप्रद है। इससे रक्त शुद्ध होकर रोग के जाने में सहायता मिलती है।

11. इस रोग से बचाव के लिये धूल मिट्टी में काम करने से अधिक पसीने के बाद स्नान अवश्य करना चाहिये।

## 13.5 अस्थि तंत्र और त्वचीय तंत्र से सम्बंधित रोगों की पृथ्वी चिकित्सा पद्धतियाँ

अस्थि तंत्र और त्वचीय तंत्र से सम्बंधित रोगों की पृथ्वी चिकित्सा आसानी से की जा सकती है। रोगों के अनुसार मिट्टी चिकित्सा का प्रयोग लाभकारी होता है। हमेशा इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि जिस अंग का रोग है उस अंग से जुड़े हुए सभी स्थान पर मिट्टी चिकित्सा दी जानी चाहिये।

सब जड़–चेतन वस्तुओं को धारण करने से इसे धरती, धारित्री, धरा कहते हैं। मनुष्य इसे खोद–खाद करके और इस पर कचरा फैलाकर अपराध करते हैं। इसके गर्भ में कई रत्न और खनिज पदार्थ भरे रहने से इसे रत्नगर्भा, वसुधा, वसुन्धरा, वसुमति (धन सम्पदा देने वाली), रत्न प्रसविनी आदि कहते है। सभी रस पृथ्वी में मौजूद हैं। इसके गर्भ से खाद्य पदार्थ पोषक तत्व ग्रहण करते हैं जिन्हें खाकर हम स्वस्थ बनते हैं, इसलिए इसे रसा भी कहते हैं। विष के प्रभाव को नष्ट करने के कारण इसे अमृता भी कहते हैं। भाव प्रकाश भी मिट्टी के सात नाम बताकर इस (धरती, पृथ्वी,मिट्टी) से कई रोग नष्ट करने का वर्णन करते हैं।

मिट्टी त्वचा के रोमकूपों को खोलती है, रक्त को ऊपरी भाग में खींचती है, अन्दर के दर्द एवं रक्त के इकट्ठे होने को दूर करती है, रक्त के संचार को तेज करती है और विजातीय पदार्थो को बाहर निकालने में सहायता देती है। अगर स्वच्छ मिट्टी पर सोया जाय तो वह शरीर के अन्दर की अतिरिक्त गर्मी को शांत करके कोषों की मरम्मत करती और अच्छी नींद लाती है।

**मिट्टी तत्व चिकित्सा सिद्वान्त एवं विधियाँ–** पृथ्वी में एक चुम्बकीय शक्ति है जो सम्पर्क में जाने पर मनुष्य को प्राणवान एवं ऊर्जावान बना देती है। जंगल के पशु मिट्टी के साहचर्य के कारण अनेक रोगों से मुक्त रहते है। स्वच्छ मिट्टी, धूप, घास पर नंगे पांव चले, बैठने एवं लेटने के अपने लाभ है। मिट्टी में अमृत मिला है।

**क्षिति जल पावक गगन समीरा। पंच तत्व रचित यह अधम शरीरा।**

पंच महाभूत तत्वों में मिट्टी एक आधरभूत तत्व है। कहा जाता है कि यह शरीर मिटूटी से ही बना है और मिट्टी में मिल जाता है। सभी जड़–चेतन वस्तुओं को धारण

करने से इसे धरती धरित्री, धरा कहते है। इसके गर्भ में कईं रत्न और खनिज पदार्थ भरे रहने से इसे रत्नरग्रर्भा, वसुधा, वसुमती, रत्न प्रसविनी कहते है। सभी रस पृथ्वी में मौजूद है। इसके गर्भ से खाघ पदार्थ पोषक तत्व ग्रहण करते है जिन्हें खाकर हम स्वस्थ बनते है इसलिये इसे रसा भी कहते है। विष के प्रभाव को नष्ट करने के कारण इसे अमृता भी कहते है। प्रसिद्ध चिकित्सक एडल्फ जस्ट के अनुसार मछली जल का जीव है वह जल में रह एवं जी सकती है । पक्षी का निर्दिष्ट स्थान वायु है, वह आकाश का पक्षी है लेकिन मनुष्य धरती पर चलता है उन्होंने पृथ्वी तत्व को धरती माता की संज्ञा दी जिसकी गोद में सिर रखकर मनुष्य अपने अनेक रोग, शोक एवं कष्ट से मुक्ति पा सकता है।
इससे शरीर की जीवनी शक्ति बढ़ती है, स्नायु मण्डल सबल होता है, नेत्र–ज्योति ठीक रहती है और मस्तिष्क पर गरमी नहीं चढ़ती, नींद ठीक से आती है।

**1. मिट्टी की गरम पट्टी**

इसके लिये बलुई मिट्टी अच्छी होती है और नदी के कछार की ताजी गीली मिट्टी बहुत ही अच्छी होती है। शुद्ध सूखी मिट्टी को कूट पीसकर कपड़े से छान लेते है। फिर किसी लकड़ी के टुकड़े है चलाते हुये उसे ठंडा पानी डालकर गीला करते है। गीली मिट्टी में विद्युत चुम्बकीय गुण होता है हाथ लगाने या लोहे की छड़ डालने पर इसका गुण कम हो जाता है।

गीली मिट्टी को एक मोटे कपड़े पर आधा इंच की मोटाई में फैलाये फिर उस मिट्टी को ऊनी कपड़ा रखकर किसी अन्य कपड़े से बाँध देते है। उसके बाद रोगी को आराम से लिटा देते है। 20–30 मिनट या इससे भी अधिक देर तक यह यहीं लगायी जा सकती है। समय हो जाने पर पट्टी को हटाकर उस जगह को भीगे कपड़े से पोंछ देना चाहिये और उस स्थान को 2–3 मिनट तक सूखी मालिश देनी चाहिये ताकि उसमें थोडी गर्माहट आ जाये। इसी को रोगों में मिट्टी की गरम पट्टी देना कहा जाता है ।

जो मिट्टी एक बार प्रयोग में आ चुकी हो उसका दोबारा उपयोग भुल से भी नहीं करना चाहिए। क्योकि उसमें रोग के जहरीले पदार्थ व्याप्त हो जाते हैं।

**लाभ–** पुराने कोष्ठबद्धता, अपच, दस्त तथा पेट के रोगों में और ज्वरादि मे, शरीर की बढ़ी हुई अनावश्यक उष्णता को दूर करने के लिये। यह रोग को जलन और दर्द दोनों को एक साथ शीघ्र दूर करती है।

**2. गरम मिट्टी की पट्टी**

इसके लिए किसी बर्तन में थोडी मिट्टी डालकर उसमें उबलता पानी धीरे– धीरे मिलाते है अथवा मिट्टी को धीमी आंच पर धीरे–धीरे गर्म करते है फिर इसे रोगी के तकलीफ वाले स्थान पर लगाते है। इसे गरम मिट्टी की पट्टी कहते है। मिट्टी की गर्मी रोगी की सहन शक्ति के अनुसार होनी चाहिये, इसका प्रयोग बेंत जैसी वस्तुओं के घावों तथा मोचादि में, स्त्रियों मे गर्भाशय सम्बन्धी रोगों मे, गठिया स्न्धिवात के रोगियों के लिये, पेट दर्द, स्थानिक दर्द, महिलाओं के मासिक दर्द, श्वेत प्रदर तथा उदर अंगो की सूजन के लिये परम उपयोगी है। इस गरम मिट्टी की पट्टी को लगाने के खाद ऊपर से फलालेन या ऊनी कपड़ा बांधना जरूरी है।

**3. रज स्नान**

शुद्ध साफ मिट्टी को छानकर अंग–प्रत्यंग को रगड़ना, जब सारा बदन मिट्टी से रगड़ जाये तो 10–20 मिनट तक धूप में बैठकर फिर ठंडे पानी से स्नान करना, यही सूखी मिट्टी का स्नान है इससे त्वचा नरम, लचीली एवं कोमल और रोम छिद्रों के खुलने से शरीर

के विजातीय द्रव्य पसीने के रूप में बाहर हो जाते है। इससे फोड़े–फुंसिया दूर हो जाती है।

अखाड़े की मिट्टी में बार–बार गिर कर शरीर को मिट्टी से घिसना, व्यायाम द्वारा पसीना निकालना और रोम कूपों को खोलकर मिट्टी से निकली हुई एक प्रकार की गैस की कूपों द्वारा शरीर के अन्दर खींचकर माँस, अस्थि तथा त्वचा को सुराठित करना भी रज स्नान है।

**4. पंक स्नान**

महीन पिसी हुई और कपड़े से छनी हुई मिट्‌टी को जब पानी के साथ घोलकर उसे कीचड़ सदृश बना लेते हैं तब इस प्रकार की गीली मिट्टी से किया हुआ स्नान गीली मिट्‌टी का स्नान कहलाता है।

बालों में मलने के लिये एक खास किस्म की काली मिट्टी काम में लायी जाती है जिससे बाल मुलायम और चमकीले हो जाते है। यह स्नान बहने वाले फोड़े–फुंसियां वाले शरीर के लिये, त्वचा की गंदगी और सफेदी के लिये लाभप्रद है। जब तक गीली मिट्टी थोडी सूख न जाये, जल से स्नान न करना चाहिये।

**5. बालू – भक्षण**

कबीर दास जी ने कहा है कि मनुष्य थलचर प्राणी है अर्थात पृथ्वी पर विचरने वाला जीव है। उसे सदा–सर्वदा पृथ्वी से ही संसर्ग रखना चाहिये वह मिट्टी को शरीर पर धारण करके, मिट्‌टी के ही बिस्तर अर्थात पृथ्वी पर सोये ठोक उसी प्रकार जिस प्रकार वह मिट्‌टी से उपजे फल– अन्नादि का भोजन करके जीवित रहता है।

**6. मिट्‌टी की ठंडी पट्‌टी – पेट की**

जब मिट्टी की पट्‌टी को रोगाक्रान्त स्थान पर रखने के खाद उसको गर्म करने हेतु ऊपर फुलालेन या ऊनी कपड़ा नहीं बांधते बल्कि उसे खुला ही रखते है जिसे मिट्टी की ठंडी पट्‌टी दिया जाना कहा जाता है।

इसका सबसे अधिक प्रयोग पेडू की पट्‌टी के रूप में होता है। पेट की विभिन्न बीमारियों में यह अत्यन्त लाभदायक है। आयुर्वेद में कहा क्या है कि–

**कर्मो दाहः पिन्तार्ति शोथहनः शीतलः सरः।**

अर्थात् पानी से सनी मिट्टी ठंडक देने वली एवं फलन पित्त की पीड़ा और सूजन दूर करती है। यह पट्‌टी शांतिकर प्रभाव डालती है आंतों की लहरदार गति को बढ़ाती है और जीवाणुओं की वृद्धि को रोकती है। गाँधी जी ने इस पट्टी की बहुत प्रशंसा की है।

**उपकरण**

एक लकड़ी की ट्रे, साफ मिट्टी, एक कमल का टुकड़ा, आवश्यकतानुसार पानी।

**विधि–** सर्वप्रथम किसी भी साफ स्थान से 2–3 फुट गहरी मिट्टी को खोदकर मिट्‌टी की पट्‌टी के लिए प्रयोग करते है। मिट्टी को दिन भर धूप में सुखाया जाता है फिर रात में अच्छी तरह पानी मिलाकर छोड़ देते हैं, फिर मिट्‌टी को अच्छी तरह गूंथकर मिट्‌टी को ट्रे में मिट्टी को बिछाकर एक सा कर देते है। रोगी को पीठ के बल लिटाकर मिट्टी को नाभि प्रदेश से नीचे की ओर तथा कुछ 2–4 इंच ऊपर की तरफ मिट्‌टी का प्रयोग करते है। उसके बाद मिट्टी के ऊपर एक कम्बल ढ़क देते है। यदि रोगी को ठंड लग रही है तो उसके चारों और कम्बल लपेट देते है। अवधि लगभग 20–30 मिनट तक होती है। समय पूरा होने पर मिट्टी को उदर क्षेत्र से हटा देते है ।

क्रिया – प्रतिक्रिया

मिट्टी शीतल होती है अतः यह पेट को ठंडक प्रदान करती है। इससे शरीर की गर्मी शान्त होती है। किसी भी स्थान पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग करते है तो वहां की Blood Capallories में संकुचन होता है जिससे ऊपरी त्वचा का रक्त जो गर्मी उत्पन्न करता है वह अन्दर चला जाता है। इससे रक्त परिसंचरण सीमा और गर्मी शान्त होती है । यहाँ पर जो विजातीय द्रव्य है उनको मिट्टी अपने अंदर अवशोषित कर लेती है। शरीर के अंदर रक्त परिसंचरण तेज होता है जिससे आंतरिक अंग–अवयव भी विजातीय द्रव्यों से मुक्त होते है और दूषित पदार्थ रक्त के साथ मिलकर उत्सर्जन अंगों के माध्यम से बाहर निकल जाते है।
**लाभ–** यह पट्टी पुराने जटिल कब्ज की अचूक चिकित्सा है। यह अजीर्ण, तेज ज्वर, टाइफाइड, पेचिस अति अम्लता, पेट में अल्सर, महिलाओं के मासिक दोष, श्वेत प्रदर, आँव, अपच, नाक से खून आना, लिवर में सूजन, शरीर में जलन, जुकाम, त्वचा पर कील, मुँहासे, हैजा, नये एवं पुराने में उपयोगी, मोटापा एवं पेट कम होने के अलावा जीवनी शक्ति और सुंदस्ता की वृद्धि तथा रोगों से बचाव तथा पुरानी बीमारियों से मुक्ति मिलती है ।
**सावधानियॉ–** यदि बुखार में कंपकपी लग रही हो, अस्थमा के आने की सम्भावना हो, साइटिका के दर्द में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। मिट्टी में कॉँच या कोई रासायनिक पदार्थ नहीं होनी चाहिये, इसे खाली पेट लेना चाहिये अर्थात भोजन से 1–2 घंटा पहले या 3–4 घंटा बाद में। ठंड में यदि रोगी कमजोर है तो उसके चारों ओर कम्बल लपेट देना चाहिये। पेट के पट्टी के अतिरिक्त आंखों, माथे सिर पर लेप जिनको पाइल्स की शिकायत हो एनस पर मिट्टी की पट्टी लगायी जा सकती है।

**7. सिर की पट्टी**

यह सिर दर्द, हाई बी.पी., अनिद्रा, मस्तिष्क की नाड़ियों में शिथिलता, बालों में रूसी, बलों का झड़ना एवं गंजापन आदि में लाभदायक है ।

**8. आँखो की पट्टी**

यह आखों में जलन, थकान, सिर दर्द, आंख आना, रक्त स्त्राव में उपयोगी है। ऑखों पर कपड़े की गीली पट्टी 10 से 15 मिनट के लिए रखते है।

**9. घाव एवं विषाक्त प्रदेश की पट्टी**

यह बवासीर, गुदाद्वार में सूजन तथा कहीं फोड़े फुंसी होने पर लाभकारी है इसे सांप, बिच्छू, ततैया के काटने पर उस प्रदेश में प्रयोग करते है ।

**10. संपूर्ण शरीर की मिट्टी लेप**

सम्पूर्ण शरीर पर मिट्टी लगाने के पश्चात् सुखी मिट्टी पूरे शरीर को लगातार ठंडा और शीतल बनाती है और त्वचा को संकुचित करती है। जिससे रक्त में जो विकार उपस्थित होते है वे शरीर के आन्तरिक अंग अवयवों तक पहुँच जाते है और फिर वह विजातीय द्रव उत्सर्जन अंगों के माध्यम से शरीर से बाहर निकल जाता है। इसके आंतरिक त्वचा की उपरी सतह पर जो विजातीय द्रव होते हैं उन्हें मिट्टी अवशोषित कर लेती है ।

मिट्टी में विष को खींचने को अदभुत शक्ति है। गीली मिट्टी को शरीर के किसी रोग युक्त अंग पर बाँध दिया जाय और फिर थोड़े समय बाद उसे खोला जाय तो उस मिट्टी में मनुष्य शरीर का विष बहुत अधिक मात्रा में मिलेगा। इसके अतिरिक्त पोषक तत्व देने की भी पृथ्वी में आश्चर्य जनक क्षमता है। प्रायः सभी पदार्थ में से एक प्रकार की गन्ध युक्त वाष्प निकलती रहती है, फल और पुष्पों की अपनी महक अलग ही होती है, जीव जन्तुओं के शरीरों से भी गन्ध युक्त वायु निकलती है इसी प्रकार पृथ्वी में से भी सदैव एक

प्रकार की वाष्प निकलती है। यह वाष्प बड़े अद्भुत गुणो से सम्पन्न होती है। पृथ्वी में बड़े अमूल रासायनिक तत्व भी पड़े है। वनस्पतियां औषधियाँ तथा अन्य अनेक खाद्य वस्तुऐं पृथ्वी से ही निकलती है पृथ्वी के रासायनिक द्रव्य ही रूपान्तर करते हुए उपयोगी पेड़ पौधों का रूप धारण करते है। यह महत्वपूर्ण तत्व पृथ्वी से निकलती रहने वाली वर्षा के साथ बाहर आते रहते है। पृथ्वी के समीप शरीर रखने से वह शरीर को प्राप्त होती रहती है जिसका स्वास्थ्य पर बड़ा अच्छा असर पड़ता है।

अन्य प्रयोग फुन्सी, जखम, गाँठ, गिल्टी, नासूर, सूजन, खुजली, दाद, दर्द आदि के लिए उस स्थान पर बांधनी चाहिए जहॉ तकलीफ हो। तकलीफ तुरन्त ही बन्द होती है और रोग से पीछा छुड़ाने में देर नहीं लगती। दुखती हुई आँखों पर छोटी आँख के बराबर की टिकियॉ बनाकर पलकों पर बांध देना चाहिये। मसूड़े के दर्द में गले के पास मिट्टी बॉधनी चाहिए।

बर्र, ततैया, मधुमक्खी, कान खजूरां, चूहा, मेंढक, छिपकली, मकडी, कुत्ता, आदि के काट लेने पर उस स्थान पर मिट्टी की टिकिया बांध देनी चाहिए, दर्द शीघ्र ही बन्द हो जाता है और जहर नहीं चड़ेगा।

इस प्रकार हम मिट्टी चिकित्सा के मूल सिद्धान्तो तथा विधियों को समझ कर विभिन्न रोगों को बिना कोई नकारात्मक प्रभाव के आरोग्य लाभ दे सकते है।

**11. सूखी मिट्टी स्नान**

शुद्ध – साफ मिट्टी को कपड़े से छान लीजिए और उससे अंग–प्रत्यंग को रगड़िए। जब पूरा शरीर मिट्टी से रगड़ा जा चुका हो, तब 15–20 मिनट तक धूप में बैठ जाएं, तत्पश्चात ठंडे पानी से, नेपकीन से घर्षण करते हुए स्नान कर लीजिए।

**12. गीली मिट्टी स्नान**

शुद्ध, साफ कपड़े से छनी हुई मिट्टी को रातभर पानी से गलाकर लेई (पेस्ट) जैसा बना लीजिए और पूरे शरीर पर लगाकर रगड़िए तथा धूप में 20–30 मिनट के लिए बैठ जाएं। जब मिट्टी पूरी तरह से सूख जाए तब ठंडे पानी से पूरे शरीर का नेपकीन से घर्षण करते हुए स्नान कर लें।

**13. मिट्टी की पट्टी**

**परिचय**

अर्थवेद संहित अन्य पौराणिक ग्रंथों में मिट्टी के रोग निवारक गुणों व चिकित्सकीय महत्व का वर्णन मिलता है। पाश्चात्य देशों ने भी मिट्टी के महत्व को स्वीकार किया। आधुनिक या वर्तमान काल में एडोल्फ जस्ट को मिट्टी के प्रयोग का जन्मदाता माना जाता है।

**साधन**

साफ मिट्टी, पानी, टब, एक लकड़ी की ट्रे लगभग एक से सवा इंच लम्बाई, आठ इंच चौड़ी और एक इंच ऊंचाई होनी चाहिए। कम्बल का टुकड़ा लगभग डेढ़ फीट लम्बा और एक फीट चौड़ा होना चाहिए।

**मिट्टी की विशेषता**

यह आंतों में चिपके हुए मल को ढिला करती है।
ठंडक शीतलता प्रदान करती है।
शोषण की क्षमता मिट्टी शरीर के विजातीय द्रव्यों को शोषित करती है।
मांसपेशीयों को मजबूत करती है।

**सिद्धांत**

यह लगातार आधे घण्टे तक शरीर को ठंडक पहुंचाती है।

**विधि**

मिट्टी की पट्टी बनाने के लिए किसी साफ जगह से मिट्टी की दो इंच नीचे से मिट्टी लेते है फिर उसे दिनभर आठ से दस घण्टे धूप में सुखाया जाता है जिससे वह कीटाणु रहित हो जाये। उसके बाद पीस या कुट कर छान लेते है, जिससे कंकड़ पत्थर निकल जाये इस मिट्टी को आठ से दस घण्टे या रात भर के लिए भीगा देते है, अब मिट्टी का पेस्ट बनाकर लकड़ी के ट्रे पर पहले सुखी मिट्टी बिछाकर तैयार पेस्ट को उस पर फैला देते है, अंत में गिले हाथ से मिट्टी की सतह को चिकना बना देते है।

रोगी को लेटाकर पेट या पेडू पर से कपड़े हटा देते है। उसके बाद मिट्टी को पेडू पर इस तरह पलटते है कि पट्टी नाभि से दो–तीन इंच ऊपर तक ढक जाये, इसके ऊपर कम्बल का टुकडा ढंक देते है यदि रोगी को ठंड लगने पर उसे कम्बल ओढ़ाया जाता है। समय पूरा होने पर पेट से मिट्टी हटाकर पेट को कपड़े से पोछ देते है। मिट्टी की पट्टी के पश्चात् एनिमा देने पर आंतों में चिपका मल ढिला होकर शौच के साथ बाहर आ जाता है।

अवधि – 20 से 30 मिनट।

क्रिया–प्रतिक्रिया

जिस स्थान पर मिट्टी की पट्टी रखी जाती है वहाँ के मांसपेशियां एवं रक्त नलिकाओं में संकुचन पैदा होने लगता है, जिससे रक्त का संचार अन्दर के अंगों के तरफ बढ़ जाता है। विजातीय द्रव्य अपना स्थान छोड़कर वे उत्सर्जी अंगों की ओर चले जाते है एवं शरीर से बाहर निकल जाते है।

**सावधनियाँ :–**

1. मिट्टी चिकनी हो, चुभने वाली न हो।
2. खाली पेट या भोजन के तीन घण्टे बाद लगाये।
3. रोगी को ठंट लगने पर कम्बल ओढ़ा दें।
4. जले कटे या बहने वाला घाव हो तो मिट्टी को सूती कपड़े पर रखें।

**अभ्यास प्रश्न**

1. हड्डीयों में किस तत्व की मात्रा सबसे ज्यादा रहती है ?

अ. कैल्शियम कार्बोनेंट ब. कैल्शियम फास्फेटस. पेनंनीबिरयम फास्फेट
द. मैग्नीशियम कार्बोनेट

2. रीढ़ की हड्डियाँ किस रोग के कारण घिसकर छोटी हो जाती है?

अ. स्पांडिलाइटिस ब. ऑस्टियोपोरेसिस स. आर्थाइटिस द. सिरहोसिस

3. सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस शरीर के किस भाग में उत्पन्न होता ळे?

अ. पेट ब. पैर स. गर्दन द. कमर

4. एक्जिमा शरीर के किस तंत्र का रोग है?

अ. पाचन ब. श्वसन स. अस्थि द. त्वचीय

5. मिट्टी की विशेषता होती है–

अ. ठंडक शीतलता प्रदान करती है। ब. विजातीय द्रव्यों को शोषित करती है। स. मांसपेशीयों को मजबूत करती है। द. उपरोक्त सभी।

## 13.6 सारांश

अस्थि और त्वचीय तंत्र मानव शरीर के महत्वपूर्ण तंत्र होते है। जिसके महत्व का पता हमें मानव शरीर विज्ञान के अध्ययन से चलता है। अस्थि और उसकी उपरी परत मिलकर इन तंत्रों की रचना करते है। प्राचीन चिकित्सा पद्धति से लेकर आधुनिक चिकित्सा पद्धति आदि इन तंत्रों के रोगों की उपचार पद्धति खोजने में लगा हुआ है।

प्राकृतिक चिकित्सा के माध्यम से इन तंत्र के रोगों की चिकित्सा आसानी से की जा सकती है। पृथ्वी चिकित्सा के द्वारा बिना किसी खर्च के अस्थि एवं त्वचीय तंत्र के सभी प्रकार के रोगो का उपचार संभव है एवं पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त किया जा सकता है।

इन रोगों की पृथ्वी चिकित्सा से आप अवगत हुए। आपको इन रोगों में पृथ्वी चिकित्सा के विभिन्न आयाम जानने को मिले है। इन उपचार पद्धति को ध्यान में रखते हुए आप रोगी को जल्द ही स्वास्थ्य लाभ करा सकते है।

## 13.7 पारिभाषिक शब्दावली

| | | |
|---|---|---|
| उपास्थि | – | लचीली हड्डियां |
| विखंडन | – | अलग–अलग भागों में बंटना |
| श्रमहीन | – | शारीरिक परिश्रम का अभाव |
| बहिःक्षेपण | – | बहारी दबाव |
| समूल | – | जड़ सहित |

## 13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

| | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | ब | 2. | ब | 3. | स | 4. | द | 5. | द |

## 13.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची


चौहान जहान सिंह, (2011) क्लीनिकल डायग्नोसिस एण्ड ट्रीटमेण्ट्स, सुमित प्रकाशन, आगरा, उत्तरप्रदेश

आचार्य पं. श्रीराम शर्मा, पुनरावृत्ति (2011) पंच तत्वों द्वारा संपूर्ण रोगों का निवारण, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, उत्तरप्रदेश

दूरस्थ शिक्षा केन्द्र, (2008), वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियॉ, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड

मुखर्जी कुलरंजन, (2007), दैनन्दिन रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा, सादार्न ऑफसेट प्रिन्टर्स, कलकत्ता, पं. बंगाल

जिन्दल राकेश, (2005) प्राकृतिक आर्युविज्ञान, आरोग्य सेवा प्रकाश, मोदीनगर, उत्तरप्रदेश


## 13.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

मिट्टी चिकित्सा – डॉ. कैलाश द्विवेदी
प्राकृतिक चिकित्सा – रामगोपाल शर्मा
प्राकृतिक चिकित्सा – सतीश गोयल)
निरोग जीवन के महत्वपूर्ण सूत्र – पं. श्रीराम शर्मा आचार्य
चिकित्सा उपचार के विविध आयाम – पं. श्रीराम शर्मा आचार्य
जीवेम् शरदः शतम् – पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

## 13.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. अस्थि तंत्र एवं त्वचीय तंत्र का सामान्य परिचय विस्तारपूर्वक लिखिए।
2. अस्थि तंत्र से संबंधित रोगो का उल्लेख करे।
3. त्वचीय तंत्र से संबंधित रोगो पृथ्वी चिकित्सा को समझाइये।

# इकाई 14 रक्त परिसंचरण तंत्र एवं पेशीय तंत्र संबंधित रोगों की पृथ्वी चिकित्सा


14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 रक्त परिसंचरण का सामान्य परिचय

- 14.3.1 रक्त परिसंचरण तंत्र के रोग – बुखार
- 14.3.2 मलेरिया
- 14.3.3 टायफायड
- 14.3.4 इन्फ्लोइंजा

14.4 पेशीय तंत्र का सामान्य परिचय

- 14.4.1 पेशीय तंत्र के रोग – झिनझिनियां

14.5 मिट्टी त्तत्व चिकित्सा सिद्वान्त एवं विधियाँ

14.6 सारांश

14.7 पारिभाषिक शब्दावली

14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

14.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

14.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

14.11 निबंधात्मक प्रश्न


## 14.1 प्रस्तावना

आधुनिक विकास के साथ सारे विश्व में रोगों का बाहुल्य है। हमारी रक्तवाहिनी धमनियों या नसों में ऐसी खराबी पैदा हो गई है जिससें उनमें खून का प्रवाह यथेष्ट परिमाण में नहीं हो पाता। इसके फलस्वरूप हमारे हृदय को अधिक जोर लगाकर खून को 'पम्प' करना पड़ता है। जिससे रक्त परिसंचरण तंत्र पर अत्यधिक भार पड़ता है। जो कि इस तंत्र के रोग की उत्पत्ति का कारण होता है।

पेशीय तंत्र शरीर को सुंदर, सुडौल, कार्यशील बनाती हैं। इनका गुण संकुचन एवं प्रसार करना है। शरीर के विभिन्न कार्य पेशियों द्वारा होते हैं। ये शरीर को बाह्य सुरक्षा कवच प्रदान करता है। कई अनियमितताओं, अवरोधों व अप्रत्याशित कारणों से इस तंत्र में भी कई विकार उत्पन्न हो जाते है।

पृथ्वी चिकित्सा के माध्यम से इन तंत्र को कैसे स्वस्थ एवं निरोग रखा जाए इसका अध्ययन आप इस इकाई में करेगें।

## 14.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई द्वारा आप पृथ्वी चिकित्सा के विभिन्न पहलुओं को जान पायेंगें:–

1. रक्त परिसंचरण तंत्र एवं पेशीय तंत्र के सामान्य परिचय जान सकेगें।
2. रक्त परिसंचरण तंत्र एवं पेशीय तंत्र के विभिन्न रोगो की सामान्य जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
3. रक्त परिसंचरण तंत्र एवं पेशीय तंत्र के रोगों के लक्षण और कारण जान सकेगें।
4. रक्त परिसंचरण तंत्र एवं पेशीय तंत्र के रोगों की पृथ्वी चिकित्सा की जानकारी प्राप्त होगी।

## 14.3 रक्त परिसंचरण सामान्य परिचय

रक्त परिसंचरण तन्त्र शरीर का एक परिवहन तन्त्र है जिसके द्वारा ऑक्सीजन, जल, आहार एवं अन्य सभी आवश्यक पदार्थ ऊतक कोशिकाओं तक पहुँचते है और वहाँ से व्यर्थ पदार्थ ले जायें जाते है। रक्त परिसंचरण तंत्र में हृदय, रक्तवाहिकाएँ तथा लसीका वाहिनियाँ सम्मिलित होती है।

हृदय एक विशाल पम्प के रूप में कार्य करता है तथा रक्त को सारे शरीर में प्रवाहित करता है। धमनियाँ रक्त को हृदय से शरीर में ले जाती हैं तथा शिराएँ रक्त को वापस हृदय तक लाती है। केशिकाओं में धमनी तथा शिरा के रक्त का सम्मिलन होता है। यहाँ रक्त तथा अन्तराकोशिका तरल के मध्य पोषक पदार्थ प्राप्त करने अपशिष्ट उत्पाद का त्याग करने तथा गैसों का विनिमय होने की क्रिया होती है।

केशिका भित्तियों से लिम्फ ऊतकों में रिसता है वह लसीका वाहिनियों द्वारा एकत्रित और परिशोधित होकर पुनः रक्त में मिल जाता है। अतः लसीका वाहिनियों को परिसंचरण तन्त्र का भाग माना जा सकता है।

### 14.3.1 रक्त परिसंचरण तंत्र के रोग – ज्वर (बुखार)

ज्वर क्यों होता है? –साधारणतः कोष्ठबद्धता या बुखार के कारण जब तलपेट मे (पेड़ू) में मल जमा होकर पुराना पड़ जाता है और समय पर बाहर नही निकल पाता तो वह वहीं पर सड़ने लगता है। उस सड़न क्रिया से एक प्रकार की खमीर उठती है। जो अति विषैली और गरम होती है। सड़े मल की खमीर या दूषित रस शरीर के रक्त को विषाक्त कर देते हैं जिससे छूत, ऋतु परिवर्तन, उद्वेगजनक पदार्थों का आहार, मानसिक विकार तथा आघात आदि अनुकूल वातावरण के कारण जब उद्रक उत्पन्न होता है तो रक्त एवं शरीर के कोष–कोष में व्याप्त विष (विजातीय द्रव्य) कुपित होकर विचलित हो उठता है। उस वक्त शरीर में ताप उत्पन्न करने वाले अवयवों को उत्तेजित करके शरीर के रक्त के ताप को बढ़ाकर प्रकृति शरीर स्थित विष को भस्म करके शरीर को निविष, निर्दोष एवं स्वस्थ करने का प्रयत्न करती है। प्रकृति के उसी प्रयत्न को हम ज्वर की संज्ञा देते हैं।

ज्वर कभी–कभी जाड़ा देकर और कंप–कंपी के साथ भी आता है। उसकी व्याख्या यही है कि जब शरीर में विजातीय द्रव्य का संचय अधिक हो जाता है तो उसे शरीर के छोरों यथा सीमांत भागों में रक्त का संचार भलीभांति नहीं हो पाता और रक्त चूँकि विषाक्त होता है इसलिए उसका अधिकांश यकृत और प्लीहा में चला जाकर उनके द्वारा साफ होने लगता है। फलतः शरीर की सतह पर यानी चर्म के पास रक्त का अभाव हो जाता है जिसकी वजह से रोगी को ऊपर से ठंड और कंपकंपी मालूम होती है परन्तु अन्तर में दाह क्रिया अपना काम कर रही होती है। ठण्ड की यह अवस्था बहुत देर तक नहीं रहती, अपितु ज्योंही भीतरी रक्त कुछ साफ हो चुकता है वह शरीर के ठंडे चर्म भाग

की ओर दौड़ जाता है और उसे अस्वाभाविक रूप से गर्म कर देता है, इसी को ज्वर चढ़ना कहते हैं।

**लक्षण :**

1. ज्वर में भूख बन्द हो जाती है।
2. प्यास अधिक लगती है।
3. कमजोरी बढ़ जाती है।
4. किसी काम को करने की शक्ति नहीं रह जाती है।
5. आरंभ में ठंड और कॅपकपी सताती है।
6. बदन में या केवल सिर में दर्द होता है।
7. नींद नहीं आती।
8. जीभ मैली हो जाती है।
9. मित्तली ओर वमन होती है।
10. नाड़ी तेज चलने लगती है।
11. दिल अधिक धड़कता है, श्वास–प्रश्वास की गति तेज हो जाती है।
12. श्वास, पसीना, मल और मूत्र अत्यंत बदबूदार हो जाता है आदि।

**कारण :**

1. शरीर स्थित विजातीय द्रव्य विशेषकर आंतों में संचित मल प्रमुख कारण है।
2. मल से निकलने वाली दूषित गैस।
3. दूषित रक्त।
4. मौसम का बदलना।
5. किटाणुओं का आक्रमण।
6. तिल्ली और यकृत विषाक्त रक्त को शुद्ध करने के निमित्त अधिक परिश्रम करने के कारण सूज कर बढ़ जाते हैं।

**14.3.2 मलेरिया–**मलेरिया ज्वर को विषम ज्वर, मौसमी या ऋतु ज्वर, मच्छरों से पैदा होने वाला ज्वर, जाड़े का बुखार , बरसाती ज्वर, फसली बुखार, जुड़ी या जडैया भी कहते हैं। केवल मच्छरों से जो लोग इस ज्वर की उत्पत्ति बताते हैं वे भ्रम में हैं। हॉ, यह बात अवश्य है कि जिस मौसम में मलेरिया प्रायः फैलता है उसी मौसम में मच्छर भी अधिकता से उत्पन्न होते हैं। अर्थात् मलेरिया और मच्छर दोनों का कारण गंदा वातावरण है। यह ज्वर विशेष तौर पर ऋतु परिवर्तन के समय और कभी–कभी अन्य समयों पर भी होता है। इस ज्वर के चढ़ने का समय, वेग, ठंड लगकर चढ़ेगा या बिना ठंड के, तथा कब उतरेगा आदि कुछ भी निश्चित नहीं होता। इस वैषम्य के कारण ही आयुर्वेद में इस ज्वर को विषम या अनियमित ज्वर कहा गया है।

मलेरिया ज्वर जब लौट–लौटकर रोज आता है, एक दिन अंतर देकर आता है या तीसरे या चौथे दिन आता है तो उसे Intermittent Malarial fever या सविराम मलेरिया ज्वर कहते हैं। यह जब पूरी तौर से नहीं जाता अपितु कुछ देर तक कम रहकर पुनः बढ़ जाता है तो उसे Remittent Malaria gever या स्वल्प विराम मलेरिया

ज्वर कहते हैं। इन दोनों प्रकार के मलेरिया ज्वर से मिलता–जुलता एक तीसरे प्रकार का भी मलेरिया ज्वर होता है जिसे Malignant Malaria या सांघातिक ज्वर कहते हैं।

**लक्षणः–**

1. ज्वर के चढ़ने के पहले या बाद में शरीर टूटता है, अथवा शरीर जकड़–सा जाता है।
2. जम्हाई आने लगती है।
3. आंखों में पानी भर जाता है।
4. मित्तली मालूम होती है।
5. सिर और पीठ में दर्द होने लगता है।
6. बेचैनी बढ़ने लगती है।
7. हाथ–पैर के छोर ठण्डे हो जाते हैं।
8. ज्वर चढ़ता है जो बहुत तेज होता है (105 डिग्री), मुंह तमतमा जाता है, श्वास लंबी और काफी गरम निकलने लगती है।
9. ज्वर के उतर जाने पर रोगी को बहुत कमजोरी को अनुभव होने लगता है।
10. यहाँ तक कि 6–7 बारी ज्वर आने तक रोगी में फिर चलने–फिरने की ताकत नहीं रह जाती।
11. पेट बड़ा होकर तन जाता है, जिस पर नीली नसें उभर आती है। हाथ–पांव पतले पड़ जाते हैं। मुँह पर सूजन आ जाती है तथा भूख बंद हो जाती है।

**कारणः–**

1. मलेरिया ज्वर की उत्पत्ति पेट की खराबी और गंदगी से होता है।
2. अनियमित आहार–विहार से संभव होता है।
3. मच्छर का जहर केवल उस संचित गंदगी में उद्रेक या उभाड़ पैदा करके मलेरिया–ज्वर द्वारा हमें इस बात की सूचना देता है कि शरीर में काफी मल एकत्र हो गया है।
4. मलेरिया रोग वहां जोड़ पकड़ता है जहां लोग बरसात के बाद ऐसी हवा में श्वास लेते है जो पृथ्वी से निकली हुई गंदी गैसों से लदी होती है जो शरीर में प्रवेश कर खून को गंदा करती है और पाचन यंत्रों में विकार पैदा करती है।
5. क्रमागत ऐसी दुर्गन्धयुक्त और विषाक्त वायु के ग्रहण करने से जब शरीर रक्त तेजहीन और विषाक्त हो जाता है केवल तभी मलेरिया के कीटाणु इस रक्त में पनपते और मलेरिया रोग के कारण बनते हैं।
6. यही कारण है कि जो मलेरिया का प्रकोप विशेषकर वर्षाऋतु के अन्त में अर्थात् सितम्बर–अक्टूबर में होता है और उन स्थानों में होता है जहां की पृथ्वी नम और वातावरण ठण्डा होता है।
7. ऐसे स्थानों में रहने से तथा वर्षाऋतु और उसके अंत में सूर्य किरणों की शक्ति के क्षीण हो जाने से मनुष्यों की पाचन–शक्ति प्रकृतितः निर्बल हो जाती है जिससे भोजन अच्छी तरह न पचकर शरीर में विजातीय द्रव्य की वृद्धि करके मलेरिया रोग का कारण बनता है।

**सामान्य चिकित्सा :–**

1. मलेरिया ज्वर के लक्षणों के प्रकट होते ही भोजन त्याग देना चाहिए और पैरों का गरम स्नान या भाप स्नान देकर कटि–स्नान देना चाहिए।
2. ज्वर चढ़ने के समय से जब तक वह उतर न जाये, या कम–से–कम तीन–चार दिनों तक नींबू का रस और गरम जल दो–दो घंटे के अंतर से लेकर उपवास करना चाहिए।

3. यदि पखाना साफ न होता हो तो दोनों वक्त चार दिनों तक गुनगुना पानी का एनिमा लेना भी जरूरी है। उसके बाद चार दिनों तक केवल एक बार ही एनिमा लेना चाहिए।
4. सोते समय पैरों का गरम स्नान लेना चाहिए।
5. ज्वर चढ़ने की दशा में पेडू पर मिट्टी की गीली पट्टी कुल पेट पर अर्थात् नाभि के पांच–छः अंगुल उपर समूचे पेडू पर लगानी चाहिए। 103 डिग्री ज्वर होने पर यही पट्टी पेडू पर उस वक्त तक बदल–बदल कर लगानी चाहिए जब तक ज्वर 102 डिग्री पर न आ जाए।
6. अगर ज्वर 103 डिग्री से अधिक हो जाए तो सिर पर भी ठण्डी पट्टी रखनी आरंभ कर देनी चाहिए और ज्वर के 102 डिग्री पर उतर जाने पर बंद कर देना चाहिए।
7. सिर गरम हो जाए और बेचैनी अधिक बढ़ जाए तो बर्फ के पानी में भीगी पट्टी सिर पर बार–बार रखनी चाहिए और घुटने के नीचे टॉगों पर ठण्डे पानी से भीगी और निचोड़ी कपड़े की पट्टी लपेटकर उसे सूखे उनी कपड़े से ढ़ंक देना चाहिए।
8. तीन दिन बाद उपर्युक्त उपचार के अलावा जाड़ा आने के 15 मिनट पहले समूचे शरीर पर भीगी चादर की लपेट या न्यूट्रल–बाथ देना चाहिए, आधे घंटे पहले भाप–स्नान या पैरों का गरम स्नान देना चाहिए। इसके पहले लेने से ज्चर की तेजी कम हो जाती है।
9. ज्वर उतरने या कम होने पर पहले रोगी को एक भाप–नहान या सूर्य स्नान करावें, फिर एक कटि–स्नान 20 मिनट का और चार–पाँच घंटे बाद एक मेहन–स्नान 15 मिनट का दें।
10. पेडू पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग करें।
11. तुलसी की सात से दस पत्तियां पानी में पीसकर और गरम करके प्रतिदिन दोनों वक्त पीने से मलेरिया ज्वर शीघ्र भागता है।
12. सम्पूर्ण शरीर की सर्वांग मिट्टी लेप।

**14.3.3 टायफायड** :–टायफायड को मियादी ज्वर, सान्निपातिक ज्वर, मथर ज्वर तथा मोतीझरा आदि भी कहते हैं। इसका एक नाम पेट का ज्वर भी है क्योंकि इस ज्वर का प्रभाव पेट पर विशेष रूप से पड़ता है। अर्थात् इस रोग में रोगी की छोटी ऑत के निचले हिस्से में मल के सड़ने से छाले पड़ जाते हैं जिनके ठीक होने में समय लगता है। जब ये छाले ठीक हो जाते हैं तब टायफायड ज्वर भी पिंड छोड़ देता है। छालों के ठीक होने में कम–से–कम तीन सप्ताह अवश्य लगते हैं, पर ऐसे भी केस मिलते हैं जिनमें टायफायड तीन–तीन महिने तक जाने का नाम नहीं लेता। जब ज्वर का आक्रमण मस्तिष्क पर होता है तो उसे मस्तिष्क का ज्वर कहते हैं।

टायफायड या कोई भी भयंकर ज्वर पहले दिन से ही आरंभ नहीं होता, अपितु 5–7 दिनों तक जब ज्वर उचित उपचार के अभाव में यों ही बना रहता है तब विद्वान, विशेषज्ञ उसका कोई न कोई नाम रखने की कोशिश करते हैं। वे इस बात को मानने के लिए कभी तैयार नहीं होते कि ज्वर का बिगड़ना या भयंकर रूप धारण करना स्वयं उनकी ही गलती का परिणाम है।

**कारण :**

1. रोग प्रतिरोधक क्षमता का कम होना।
2. क्षमता से अधिक काम करना।
3. मल का निष्कासन ठीक से न होना।
4. कम भोजन करने से।
5. भोजन में एक साथ बहुत–सी चीजों को रखने से।

6. गरिष्ठ भोजन करना।
7. विलासी आचरण तथा अनियमित जीवन–यापन से।

**लक्षण :**

1. टायफायड के रोगी के शरीर में ज्वर सदा बना रहता है।
2. प्रातः काल 99 डिग्री या 100 डिग्री से 102 डिग्री तक रहता है, परन्तु दोपहर के बाद 103 डिग्री तक चला जाता है।
3. ज्वर के तेज हो जाने पर रोगी बेसुध हो जाता है।
4. कब्ज के कारण पतले दस्त आने लगते हैं।
5. कभी–कभी खून के दस्त भी आते हैं, तथा वह बहुत कमजोर हो जाता है।
6. नाड़ी की गति मंद हो जाती है।
7. जिह्वा का अग्रभाग और मुँह लाल हो जाता है।
8. रोगी को दाह, भ्रम दस्त, वमन, पिपासा तथा अनिद्रा आदि सताने लगते हैं।
9. सफेद छोटे–छोटे मोतियों की भॉति दाने गर्दन पर निकलते हैं।
10. मल का निष्कासन ठीक से नही हो पाता और वह वहीं पड़ा–पड़ा सड़ा करता है। इस सड़न से रक्त जहरीला हो जाता है और जहरीले ज्वर अर्थात् टायफायड को जन्म देता है।

**सामान्य चिकित्सा :**

1. रोगी को पूर्ण विश्राम करने के लिए सभी सुविधायें जुटा देनी चाहिये।
2. पेशाब, पखाना करने की व्यवस्था भी चारपाई के पास ही करनी चाहिये।
3. सफाई का भी पूरा–पूरा ख्याल रखना चाहिये।
4. रोगी को उबालकर ठण्डा किया हुआ पानी पीने को देना चाहिए।
5. ज्वर के लक्षण प्रकट होते ही रोगी को उपवास कराया जाये।
6. खूब पानी पीने को दिया जाये।
7. रोगी यदि बहुत कमजोर है या बहुत बूढ़ा है तो उसे आरम्भ से 2–3 दिनों का उपवास कराकर तत्पश्चात् फलों के जूस पर रखना चाहिये।
8. दिन में 3–4 बार 200–200 ग्राम फल का जूस देना काफी है।

**14.3.4 इन्फ्लोइंजा–** यह एक छूत का रोग माना जाता है और इसकी उत्पत्ति एक विशेष प्रकार के कीटाणु – bacillus Influenza or Pfeiffers Bacillus से बताई जाती है। इसे वैद्यक मे वात–कफ ज्वर कहते है। संसार के अन्य देशों के अलावा भारत में भी सन् 1918 में जोरदार इन्फ्लोइंजा फैला था जबकि केवल हमारे देश में 70 लाख व्यक्ति इस रोग से मरे थे।

**कारण :**

1. अधिक और अनाप–शनाप खाना।
2. मौसम परिवर्तन।
3. जीवनी शक्ति का ह्रास।
4. कब्ज तथा शरीर में विजातीय द्रव्य की स्थिति इस रोग के होने का प्रधान कारण है।

**लक्षण :**

1. अकस्मात् हल्का ज्वर आना।
2. कंपकंपी होकर ठंड लगना।
3. सिर में भारीपन और पीड़ा होना।
4. गले में खराश और खॉसी होना।

5. कब्ज होना।
6. मानसिक अवसन्नता।
7. कमजोरी होना।
8. कभी–कभी नाक, मुंह तथा गुर्दा मार्ग से रक्तस्त्राव होना।
9. मितली, वमन, अनिद्रा, बेचैनी तथा पेट में दर्द आदि इस रोग के लक्षण है।
10. इन्फ्लोइंजा प्रायः शीतकाल के अंत में फैलता है पर वह किसी को किसी भी समय हो सकता है।

**सामान्य चिकित्सा :**

1. ज्वर के दूर हो जाने तक रोगी को खाट पर रहकर पूरी तरह आराम लेना चाहिये और बूढ़ों को ज्वर के कुछ दिन जाने के बाद तक आराम करना चाहिये।
2. उपवास, एनिमा और कटि–स्नान या पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी लगाकर पेट की शुद्धि सर्वप्रथम कर लेनी चाहिये।
3. रसाहार या हल्के फलाहार का सेवन करना चाहिये।
4. अजवायन डालकर औटाया हुआ और ठंडा किया हुआ जल प्रचुर मात्रा में पीना चाहिये।
5. शरीर से पसीना निकालकर शरीर की अशुद्धि को दूर करना चाहिये।
6. तेज ज्वर में पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी रोज तीन बार जरूर लगाना चाहिये।
7. गले में तकलीफ बढ़ने पर एक–डेढ़ घंटे के लिए गर्दन के चारों तरफ मिट्टी की पट्टी की लपेट लगाना चाहिये।
8. खांसी हो तो दिन भर कुनकुना जल घूट–घूट कर पानी पीना चाहिये।
9. भोजन हल्का करना चाहिये और उसमें फलों, सब्जियों, धरोष्ण दूध मट्ठा, दही, शहद, मक्खन एवं सप्राण खद्य पदार्थों को प्रधानता देनी चाहिये।

## 14.4 पेशीय तंत्र का सामान्य परिचय

मानव कंकाल, मांस के छोटे–छोटे टुकड़ों से ढ़का रहता है। शरीर के बाहर और अन्दर के अंग मांस तन्तुओं से बनते है। इन मांस तंतुओं का आवरण पूरे अस्थि पिंजर को ढ़के रहता है। इसे ही मांसपेशी संस्थान कहते हैं। पेशियाँ त्वचा के नीचे होती हैं। सम्पूर्ण मानव शरीर में 500 से अधिक पेशियाँ होती हैं। ये दो प्रकार की होती हैं। ऐच्छिक एवं अनैच्छिक। ऐच्छिक पेशियाँ मनुष्य के इच्छानुसार संकुचित हो जाती हैं। अनैच्छिक पेशियों का संकुचन मनुष्य की इच्छा द्वारा नियंत्रित नहीं होता है।

पेशीय त्वचा के नीचे अस्थि के गड्ढ़ों आदि को भरकर एवं ढ़ककर शरीर को सुंदर एवं सुडौल बनाती है। इन मांस के टुकड़ों को पेशियां कहते हैं। शरीर की अस्थियों के ऊपर और त्वचा के नीचे मांस–पेशीयां पायी जाती है। पेशियां शरीर को गति एवं आकृति प्रदान करती है।

शरीर की विभिन्न क्रियाएं विभिन्न प्रकार की पेशियों द्वारा संपन्न होता है। जैसे–भोजन लेना, उन्हें मुंह में डालकर चबाना, निगलना इत्यादि क्रियाये कई लम्बे, चौड़े, छोटे, गोल स्नायुओं द्वारा संपन्न होती है। यदि हम शान्त ही बैठे रहें, तब भी शरीर में कुछ हलचल होती रहती है। उदाहरणार्थ श्वाच्छोवास के लिए वक्षस्थल का आकार स्वयं ही फैलता–सिकुड़ता है। सारी हलचलें शरीर की स्नायुओं के द्वारा होती रहती है। यही मांसपेशियां शरीर को सुन्दर, सुडौल तथा मजबूत बनाती हैं।

शरीर के वजन का लगभग 2/3 अंश स्नायुओं से मिलकर बना है, अनुमानतः शरीर में लगभग 639 पेशियां पाई जाती है।

पेशियाँ त्वचा के नीचे होती हैं। सम्पूर्ण मानव शरीर में 500 से अधिक पेशियाँ होती हैं। ये दो प्रकार की होती हैं। ऐच्छिक पेशियाँ मनुष्य के इच्छानुसार संकुचित हो जाती हैं। अनैच्छिक पेशियों का संकुचन मनुष्य की इच्छा द्वारा नियंत्रित नहीं होता है।

ऐच्छिक पेशियाँ, अस्थियों पर संलग्न होती हैं तथा संधियों पर गति प्रदान करती है। पेशियाँ नाना प्रकार की होती हैं। तंत्रिका तंत्र के द्वारा ये कार्य के लिए प्रेरित की जाती हैं। पेशियों का पोषण रुधिरवाहिकाओं के द्वारा होता है। इनका गुण संकुचन एवं प्रसार करना है। कार्यों के अनुसार इनके नामकरण किए गए हैं। कुछ पेशी समूह एक दूसरे के विरुद्ध भी कार्य करते हैं जैसे एक पेशी समूह हाथ को ऊपर उठाता है, तो दूसरा पेशी समूह हाथ को नीचे करता है, अर्थात् एक समूह संकुचित होता है, तो दूसरा विस्तृत होता है।

पेशियाँ सदैव स्फूर्तिमय (toned) रहती हैं। मृत व्यक्ति में पेशी रस के जमने से पेशियाँ कड़ी हो जाती हैं। पोषक पदार्थ खाने से, उचित व्यायाम से, ये शक्तिशाली होती हैं। कार्यरत होने पर इनमें थकावट आती है तथा आराम एवं पोषण से पुनः सामान्य हो जाती हैं।

**पेशीय तंत्र के रोग**

**14.4.1 झिनझिनियां**

यह भी एक पेशीय संबंधी रोग है जिसका उद्गम स्थान शरीर का कोष्ठ प्रदेश है। इस रोग से वही व्यक्ति पीड़ित होता है जिसको पुराने कब्ज की शिकायत होती है और जिसकी पाचन शक्ति बहुत दिनों से क्षीण होती चली आ रही है। फल यह होता है कि वह जो कुछ खाता है उसका रस न बनकर पेट में सड़ने लगता है, जिससे एक प्रकार की विषैली गैस उत्पन्न होती है, जो उर्ध्वगामी होकर ऊपर की ओर चढ़ने लगती है। मस्तिष्क तो स्नायु मण्डल का केन्द्र ठहरा, वह गैस वहां पहुंचकर उपद्रव आरम्भ करती है और उसके बाद वह स्नायुओं द्वारा शरीर के रग–रग में व्याप्त होकर गड़बड़ी पैदा कर देती है, और पैर के अंगूठे से लेकर सिर तक के सारे स्नायु रोगग्रस्त होकर उत्तेजित हो उठते हैं। यही झिनझिनियां रोग की उत्पत्ति का रहस्य हैं।

**कारण :–**

1. कब्ज का बना रहना।
2. अपच।
3. अनियमित खान–पान।
4. अनियमित दिनचर्या
5. शारीरिक परिश्रम की कमी।

**लक्षण :–**

1. पैरों का सुन हो जाना।
2. चीटीं काटने जैसा अनुभव होना।
3. कप–कपि होना।
4. कमजोरी रहना।
5. एक स्थिति में ज्यादा देर तक न बैठ पाना।

**सामान्य चिकित्सा :–**

1. पंक–स्नान करना चाहिये जब तक शरीर भलीभाँति ठण्डा न हो जाये।
2. रज–स्नान के द्वारा शरीर को अच्छी तरह साफ करना चाहिये।

3. स्नायु संबंधी रोगों की प्राथमिक चिकित्सा के नियमों का पालन करते हुए उपर्युक्त चिकित्सा चलानी चहिये।

**आहारः–** चोकर समेत आटे की रोटी, ताजे मौसमी फल, ताजी साग–सब्जियां, गाढ़ी मूँग या उड़द की छिलके समेत दाल, नये चावल का मांड समेत भात तथा धरोष्ण दूध आहार में लेना चाहिये।

**निषेधः–** मशाला, नसे की चीजें, अधिक नमक, अधिक चिकनाई, सफेद चीनी, खटाई, सिरका, आचार, वनस्पति घी तथा तली–भुनी चीजों से बचें।

**रक्त परिसंचरण तंत्र एवं पेशीय तंत्र के रोगों की पृथ्वी चिकित्सा**

## 14.5 मिट्टी त्तत्व चिकित्सा सिद्वान्त एवं विधियाँ

पृथ्वी में एक चुम्बकीय शक्ति है जो सम्पर्क में जाने पर मनुष्य को प्राणवान एवं ऊर्जावान बना देती है। जंगल के पशु मिट्टी के साहचर्य के कारण अनेक रोगों से मुक्त रहते है। स्वच्छ मिट्टी, धूप, घास पर नंगे पांव चले, बैठने एवं लेटने के अपने लाभ है। मिट्टी में अमृत मिला है।

**क्षिति जल पावक गगन समीरा। पंच तत्व रचित यह अधम शरीरा।**

पंच महाभूत तत्वों में मिट्टी एक आधरभूत तत्व है। कहा जाता है कि यह शरीर मिट्टी से ही बना है और मिट्टी में मिल जाता है। सभी जड़–चेतन वस्तुओं को धारण करने से इसे धरती धरित्री, धरा कहते है। इसके गर्भ में कई रत्न और खनिज पदार्थ भरे रहने से इसे रत्नरग्रर्भा, वसुधा, वसुमती, रत्न प्रसविनी कहते है। सभी रस पृथ्वी में मौजूद है। इसके गर्भ से खाद्य पदार्थ पोषक तत्व ग्रहण करते है जिन्हें खाकर हम स्वस्थ बनते है इसलिये इसे रसा भी कहते है। विष के प्रभाव को नष्ट करने के कारण इसे अमृता भी कहते है। प्रसिद्ध चिकित्सक एडल्फ जस्ट के अनुसार मछली जल का जीव है वह जल में रह एवं जी सकती है । पक्षी का निर्दिष्ट स्थान वायु है, वह आकाश का पक्षी है लेकिन मनुष्य धरती पर चलता है उन्होंने पृथ्वी तत्व को धरती माता की संज्ञा दी जिसकी गोद में सिर रखकर मनुष्य अपने अनेक रोग, शोक एवं कष्ट से मुक्ति पा सकता है।

इससे शरीर की जीवनी शक्ति बढ़ती है, स्नायु मण्डल सबल होता है, नेत्र–ज्योति ठीक रहती है और मस्तिष्क पर गरमी नहीं चढ़ती, नींद ठीक से आती है।

1. **मिट्टी की गरम पट्टी–** इसके लिये बलुई मिट्टी अच्छी होती है और नदी के कछार की ताजी गीली मिट्टी बहुत ही अच्छी होती है। शुद्ध सूखी मिट्टी को कूट पीसकर कपड़े से छान लेते है। फिर किसी लकड़ी के टुकड़े है चलाते हुये उसे ठंडा पानी डालकर गीला करते है। गीली मिट्टी में विद्युत चुम्बकीय गुण होता है हाथ लगाने या लोहे की छड़ डालने पर इसका गुण कम हो जाता है।

गीली मिट्टी को एक मोटे कपड़े पर आधा इंच की मोटाई में फैलाये फिर उस मिट्टी को ऊनी कपड़ा रखकर किसी अन्य कपड़े से बाँध देते है। उसके बाद रोगी को आराम से लिटा देते है। 20–30 मिनट या इससे भी अधिक देर तक यह यहीं लगायी जा सकती है। समय हो जाने पर पट्टी को हटाकर उस जगह को भीगे कपड़े से पोंछ देना चाहिये और उस स्थान को 2–3 मिनट तक सूखी मालिश देनी चाहिये ताकि उसमें थोडी गर्माहट आ जाये। इसी को रोगों में मिट्टी की गरम पट्टी देना कहा जाता है ।

जो मिट्टी एक बार प्रयोग में आ चुकी हो उसका दोबारा उपयोग भुल से भी नहीं करना चाहिए। क्योकि उसमें रोग के जहरीले पदार्थ व्याप्त हो जाते हैं।

**लाभ–** पुराने कोष्ठबद्धता, अपच, दस्त तथा पेट के रोगों में और ज्वरादि मे, शरीर की बढ़ी हुई अनावश्यक उष्णता को दूर करने के लिये। यह रोग को जलन और दर्द दोनों को एक साथ शीघ्र दूर करती है।

2. **गरम मिट्टी की पट्टी–** इसके लिए किसी बर्तन में थोडी मिट्टी डालकर उसमें उबलता पानी धीरे– धीरे मिलाते है अथवा मिट्टी को धीमी आंच पर धीरे–धीरे गर्म करते है फिर इसे रोगी के तकलीफ वाले स्थान पर लगाते है। इसे गरम मिट्टी की पट्टी कहते है। मिट्टी की गर्मी रोगी की सहन शक्ति के अनुसार होनी चाहिये, इसका प्रयोग बेंत जैसी वस्तुओं के घावों तथा मोचादि में, स्त्रियों मे गर्भाशय सम्बन्धी रोगों मे, गठिया स्नन्धिवात के रोगियों के लिये, पेट दर्द, स्थानिक दर्द, महिलाओं के मासिक दर्द, श्वेत प्रदर तथा उदर अंगो की सूजन के लिये परम उपयोगी है। इस गरम मिट्टी की पट्टी को लगाने के खाद ऊपर से फलालेन या ऊनी कपड़ा बांधना जरूरी है।

3. **रज स्नान–**शुद्ध साफ मिट्टी को छानकर अंग–प्रत्यंग को रगड़ना, जब सारा बदन मिट्टी से रगड़ जाये तो 10–20 मिनट तक धूप में बैठकर फिर ठंडे पानी से स्नान करना, यही सूखी मिट्टी का स्नान है इससे त्वचा नरम, लचीली एवं कोमल और रोम छिद्रों के खुलने से शरीर के विजातीय द्रव्य पसीने के रूप में बाहर हो जाते है। इससे फोड़े–फुंसिया दूर हो जाती है।

अखाड़े की मिट्टी में बार–बार गिर कर शरीर को मिट्टी से घिसना, व्यायाम द्वारा पसीना निकालना और रोम कूपों को खोलकर मिट्टी से निकली हुई एक प्रकार की गैस की कूपों द्वारा शरीर के अन्दर खींचकर माँस, अस्थि तथा त्वचा को सुराठित करना भी रज स्नान है।

4. **पंक स्नान–** महीन पिसी हुई और कपड़े से छनी हुई मिट्टी को जब पानी के साथ घोलकर उसे कीचड़ सदृश बना लेते हैं तब इस प्रकार की गीली मिट्टी से किया हुआ स्नान गीली मिटूटी का स्नान कहलाता है।

बालों में मलने के लिये एक खास किस्म की काली मिट्टी काम में लायी जाती है जिससे बाल मुलायम और चमकीले हो जाते है। यह स्नान बहने वाले फोड़े–फुंसियां वाले शरीर के लिये, त्वचा की गंदगी और सफेदी के लिये लाभप्रद है। जब तक गीली मिट्टी थोडी सूख न जाये, जल से स्नान न करना चाहिये।

4. **बालू – भक्षण–** कबीर दास जी ने कहा है कि मनुष्य थलचर प्राणी है अर्थात पृथ्वी पर विचरने वाला जीव है। उसे सदा–सर्वदा पृथ्वी से ही संसर्ग रखना चाहिये वह मिट्टी को शरीर पर धारण करके, मिट्टी के ही बिस्तर अर्थात पृथ्वी पर सोये ठोक उसी प्रकार जिस प्रकार वह मिट्टी से उपजे फल– अन्नादि का भोजन करके जीवित रहता है।

5. **मिट्टी की ठंडी पट्टी – पेट की**

जब मिट्टी की पट्टी को रोगाक्रान्त स्थान पर रखने के खाद उसको गर्म करने हेतु ऊपर फुलालेन या ऊनी कपड़ा नहीं बांधते बल्कि उसे खुला ही रखते है जिसे मिट्टी की ठंडी पट्टी दिया जाना कहा जाता है।

इसका सबसे अधिक प्रयोग पेडू की पट्टी के रूप में होता है। पेट की विभिन्न बीमारियों में यह अत्यन्त लाभदायक है। आयुर्वेद में कहा क्या है कि–

**कर्मौ दाहः पिन्तार्ति शोथहनः शीतलः सरः।**

अर्थात् पानी से सनी मिट्टी ठंडक देने वली एवं फलन पित्त की पीड़ा और सूजन दूर करती है। यह पट्टी शांतिकर प्रभाव डालती है आंतों की लहरदार गति को बढ़ाती है और जीवाणुओं की वृद्धि को रोकती है। गाँधी जी ने इस पट्टी की बहुत प्रशंसा की है।

**उपकरण**–एक लकड़ी की ट्रे, साफ मिट्टी, एक कमल का टुकड़ा, आवश्यकतानुसार पानी।

**विधि**– सर्वप्रथम किसी भी साफ स्थान से 2–3 फुट गहरी मिट्टी को खोदकर मिट्टी की पट्टी के लिए प्रयोग करते है। मिट्टी को दिन भर धूप में सुखाया जाता है फिर रात में अच्छी तरह पानी मिलाकर छोड़ देते हैं, फिर मिट्टी को अच्छी तरह गूंथकर मिट्टी को ट्रे में मिट्टी को बिछाकर एक सा कर देते है। रोगी को पीठ के बल लिटाकर मिट्टी को नाभि प्रदेश से नीचे की ओर तथा कुछ 2–4 इंच ऊपर की तरफ मिट्टी का प्रयोग करते है। उसके बाद मिट्टी के ऊपर एक कम्बल ढ़क देते है। यदि रोगी को ठंड लग रही है तो उसके चारों और कम्बल लपेट देते है। अवधि लगभग 20–30 मिनट तक होती है। समय पूरा होने पर मिट्टी को उदर क्षेत्र से हटा देते है ।

क्रिया – प्रतिक्रिया

मिट्टी शीतल होती है अतः यह पेट को ठंडक प्रदान करती है। इससे शरीर की गर्मी शान्त होती है। किसी भी स्थान पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग करते है तो वहां की Blood Capallories में संकुचन होता है जिससे ऊपरी त्वचा का रक्त जो गर्मी उत्पन्न करता है वह अन्दर चला जाता है। इससे रक्त परिसंचरण सीमा और गर्मी शान्त होती है । यहाँ पर जो विजातीय द्रव्य है उनको मिट्टी अपने अंदर अवशोषित कर लेती है। शरीर के अंदर रक्त परिसंचरण तेज होता है जिससे आंतरिक अंग–अवयव भी विजातीय द्रव्यों से मुक्त होते है और दूषित पदार्थ रक्त के साथ मिलकर उत्सर्जन अंगों के माध्यम से बाहर निकल जाते है।

**लाभ**– यह पट्टी पुराने जटिल कब्ज की अचूक चिकित्सा है। यह अजीर्ण, तेज ज्वर, टाइफाइड, पेचिस अति अम्लता, पेट में अल्सर, महिलाओं के मासिक दोष, श्वेत प्रदर, आँव, अपच, नाक से खून आना, लिवर में सूजन, शरीर में जलन, जुकाम, त्वचा पर कील, मुँहासे, हैजा, नये एवं पुराने में उपयोगी, मोटापा एवं पेट कम होने के अलावा जीवनी शक्ति और सुंदस्ता की वृद्धि तथा रोगों से बचाव तथा पुरानी बीमारियों से मुक्ति मिलती है ।

**सावधानियॉ**– यदि बुखार में कंपकपी लग रही हो, अस्थमा के आने की सम्भावना हो, साइटिका के दर्द में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। मिट्टी में कॉँच या कोई रासायनिक पदार्थ नहीं होनी चाहिये, इसे खाली पेट लेना चाहिये अर्थात भोजन से 1–2 घंटा पहले या 3–4 घंटा बाद में। ठंड में यदि रोगी कमजोर है तो उसके चारों ओर कम्बल लपेट देना चाहिये। पेट के पट्टी के अतिरिक्त आंखों, माथे सिर पर लेप जिनको पाइल्स की शिकायत हो एनस पर मिट्टी की पट्टी लगायी जा सकती है।

6. **सिर की पट्टी**– यह सिर दर्द, हाई बी.पी., अनिद्रा, मस्तिष्क की नाड़ियों में शिथिलता, बालों में रूसी, बलों का झड़ना एवं गंजापन आदि में लाभदायक है ।

7. **आँखो की पट्टी**– यह आखों में जलन, थकान, सिर दर्द, आंख आना, रक्त स्त्राव में उपयोगी है। ऑखों पर कपड़े की गीली पट्टी 10 से 15 मिनट के लिए रखते है।

8. **घाव एवं विषाक्त प्रदेश की पट्टी**– यह बवासीर, गुदाद्वार में सूजन तथा कहीं फोड़े फुंसी होने पर लाभकारी है इसे सांप, बिच्छू, ततैया के काटने पर उस प्रदेश में प्रयोग करते है ।

**9.संपूर्ण शरीर की मिट्टी लेप–** सम्पूर्ण शरीर पर मिट्टी लगाने के पश्चात् सुखी मिट्टी पूरे शरीर को लगातार ठंडा और शीतल बनाती है और त्वचा को संकुचित करती है। जिससे रक्त में जो विकार उपस्थित होते है वे शरीर के आन्तरिक अंग अवयवों तक पहुँच जाते है और फिर वह विजातीय द्रव उत्सर्जन अंगों के माध्यम से शरीर से बाहर निकल जाता है। इसके आंतरिक त्वचा की उपरी सतह पर जो विजातीय द्रव होते हैं उन्हें मिट्टी अवशोषित कर लेती है ।

मिट्टी में विष को खींचने को अदभुत शक्ति है। गीली मिट्टी को शरीर के किसी रोग युक्त अंग पर बाँध दिया जाय और फिर थोड़े समय बाद उसे खोला जाय तो उस मिट्टी में मनुष्य शरीर का विष बहुत अधिक मात्रा में मिलेगा। इसके अतिरिक्त पोषक तत्व देने की भी पृथ्वी में आश्चर्य जनक क्षमता है। प्रायः सभी पदार्थ में से एक प्रकार की गन्ध युक्त वाष्प निकलती रहती है, फल और पुष्यों की अपनी महक अलग ही होती है, जीव जन्तुओं के शरीरों से भी गन्ध युक्त वायु निकलती है इसी प्रकार पृथ्वी में से भी सदैव एक प्रकार की वाष्प निकलती है। यह वाष्प बड़े अद्भुत गुणो से सम्पन्न होती है। पृथ्वी में बड़े अमूल रासायनिक तत्व भी पड़े है। वनस्पतियां औषधियाँ तथा अन्य अनेक खाद्य वस्तुऐं पृथ्वी से ही निकलती है पृथ्वी के रासायनिक द्रव्य ही रूपान्तर करते हुए उपयोगी पेड़ पौधों का रूप धारण करते है। यह महत्वपूर्ण तत्व पृथ्वी से निकलती रहने वाली वर्षा के साथ बाहर आते रहते है। पृथ्वी के समीप शरीर रखने से वह शरीर को प्राप्त होती रहती है जिसका स्वास्थ्य पर बड़ा अच्छा असर पड़ता है।

अन्य प्रयोग फुन्सी, जखम, गाँठ, गिल्टी, नासूर, सूजन, खुजली, दाद, दर्द आदि के लिए उस स्थान पर बांधनी चाहिए जहॉ तकलीफ हो। तकलीफ तुरन्त ही बन्द होती है और रोग से पीछा छुड़ाने में देर नहीं लगती। दुखती हुई आँखों पर छोटी आँख के बराबर की टिकियॉ बनाकर पलकों पर बांध देना चाहिये। मसूड़े के दर्द में गले के पास मिट्टी बॉधनी चाहिए।

बर्र, ततैया, मधुमक्खी, कान खजूरां, चूहा, मेंढक, छिपकली, मकडी, कुत्ता, आदि के काट लेने पर उस स्थान पर मिट्टी की टिकिया बांध देनी चाहिए, दर्द शीघ्र ही बन्द हो जाता है और जहर नहीं चड़ेगा।

इस प्रकार हम मिट्टी चिकित्सा के मूल सिद्धान्तो तथा विधियों को समझ कर विभिन्न रोगों को बिना कोई नकारात्मक प्रभाव के आरोग्य लाभ दे सकते है।

**अभ्यास प्रश्न**

1. .......................... रक्त को हृदय से शरीर में ले जाती हैं
2. .......................... रक्त को वापस हृदय तक लाती है।
3. .......................... को विषम ज्वर, मौसमी या ऋतु ज्वर, मच्छरों से पैदा होने वाला ज्वर, जाड़े का बुखार , बरसाती ज्वर, फसली बुखार, जुड़ी या जडैया भी कहते हैं।
4. .......................... को मियादी ज्वर, सान्निपातिक ज्वर, मथर ज्वर तथा मोतीझरा आदि भी कहते हैं।
4. .......................... एक छूत का रोग माना जाता है।

## 14.6 सारांश

मिट्टी चिकित्सा एक उपयोगी एवं सर्वसुलभ उपचार पद्धति है। इसके उपयोग से जहॉ हम निरोगी काया प्राप्त कर सकते है वहीं यह आसानी से उपलब्ध भी हो जाती है। आपने सुना ही होगा – अखाड़े की मिट्टी में बल होता है। इससे खाल में कोमलता आती है। तो अखाड़े की न भी हो, कहीं की भी हो लाभ तो मिट्टी का ही है। इसकी शक्ति महान है।

शरीर के अंदर विष हो, ज्वर भी साथ में हो, फोड़े–फुंसी हों, तब मिट्टी की पट्टी अत्यंत लाभकारी सिद्ध होती है। प्रकृति की महानता अनन्त है। रक्त परिसंचरण तंत्र हो या पेशीय तंत्र समस्त रोगों में यदि हम उसकी उपयोगिता समझ सकें और फिर उससे इलाज द्वारा लाभ उठा सके तो जहॉ डाक्टर वैद्य प्राप्त नहीं है या धनाभाव है, वहां बिना खर्च के ही हम अपना इलाज कर सकते है।

## 14.7 पारिभाषिक शब्दावली

| | | |
|---|---|---|
| अप्रत्याशित | – | अचानक |
| अपशिष्ट | – | बेकार |
| विनिमय | – | आदान – प्रदान |
| संकुचन | – | सिकुड़ना |
| उर्ध्वगामी | – | ऊपर की ओर |

## 14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. धमनियॉं 2. शिराएँ 3. मलेरिया ज्वर 4. टायफायड 5. इन्फ्लोइंजा

## 14.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

चौहान जहान सिंह, (2011) क्लीनिकल डायग्नोसिस एण्ड ट्रीटमेण्ट्स, सुमित प्रकाशन, आगरा, उत्तरप्रदेश

आचार्य पं. श्रीराम शर्मा, पुनरावृत्ति (2011) पंच तत्वों द्वारा संपूर्ण रोगों का निवारण, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, उत्तरप्रदेश

दूरस्थ शिक्षा केन्द्र, (2008), वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियॉ, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड

मुखर्जी कुलरंजन, (2007), दैनन्दिन रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा, सादार्न ऑफसेट प्रिन्टर्स, कलकत्ता, पं. बंगाल

जिन्दल राकेश, (2005) प्राकृतिक आर्युविज्ञान, आरोग्य सेवा प्रकाश, मोदीनगर, उत्तरप्रदेश

## 14.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

जीवेम शरदः शतम् – पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

सरल प्राकृतिक चिकित्सा – सक्सैना ओम प्रकाश

## 14.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. टायफायड रोग क्या है, कैसे होता है एवं इसकी पृथ्वी चिकित्सा बताइये।
2. रक्त परिसंचरण तंत्र के रोगों को पृथ्वी चिकित्सा के संदर्भ में समझाइये।
3. रक्त परिसंचरण तंत्र के किन्ही दो रोगो की विस्तार पूर्वक चर्चा कीजिए ।
4. पेशीय तंत्र के किन्ही दो रोगों की पृथ्वी चिकित्सा का वर्णन करें।

# इकाई 15 तंत्रिका तंत्र एवं मानसिक रोगों संबंधित रागों की पृथ्वी चिकित्सा


15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 तंत्रिका तंत्र का सामान्य परिचय

15.3.1 तंत्रिका तंत्र के रोग – सिजोफ्रेनिया

15.3.2 अल्जीमर्स रोग

15.4 मानसिक रोग का सामान्य परिचय

15.4.1 मानसिक दबाव

15.4.2 तनाव

15.4.3 पागलपन

15.4.4 अनिद्रा

15.4.5 मूर्च्छा

15.5 तंत्रिका तंत्र एवं मानसिक रोगों की पृथ्वी चिकित्सा पद्धतियाँ

15.6 सारांश

15.7 पारिभाषिक शब्दावली

15.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

15.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

15.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

15.11 निबंधात्मक प्रश्न


## 15.1 प्रस्तावना

सम्पूर्ण शरीर की तथा उसके विभिन्न अंगों की क्रियाओं को नियमित नियंत्रित और समन्वित करने वाला संस्थान तंत्रिका तंत्र होता है। इस तंत्र में अवरोध के कारण कई प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते है। इसी प्रकार आज के उन्नत एवं विकसित युग में अधिकांश लोग एक अथवा अनेक प्रकार के मानसिक रोगों से पीड़ित है।

मिट्टी जिसमें पृथ्वी तत्व की प्रधानता है जो कि शरीर में विकार उत्पन्न करने वाले तथा विजातीय पदार्थो को निकाल बाहर करती है। यह कीटाणु नाशक है जिसे हम एक महानतम औषधि कह सकते है। पृथ्वी चिकित्सा क्या होती है? कौन–कौन से रोग में उसकी उपयोगिता है? तथा इसका प्रयोग कैसे किया जाता ह? प्रस्तुत इकाई में विस्तार से इसका वर्णन किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप तंत्रिका तंत्र एवं मानसिक रोगों से संबंधित विभिन्न रोगों की पृथ्वी चिकित्सा के महत्व को समझ सकेगें।

## 15.2 उद्देश्य

**प्रस्तुत इकाई द्वारा आप जान पायेंगें:–**

1. तंत्रिका तंत्र का सामान्य परिचय आसानी से समझ सकेगें।
2. मानसिक रोग से संबंधित जानकारी प्राप्त करेगें।
3. तंत्रिका तंत्र से संबंधित रोगो की जानकारी प्राप्त करेगें।
4. तंत्रिका तंत्र एवं मानसिक रोगो के लक्षण एवं कारण जान सकेगें और
5. पृथ्वी चिकित्सा द्वारा इन रोगों का निदान कर सकेगें।

## 15.3 तंत्रिका तंत्र का सामान्य परिचय

जिस तन्त्र के द्वारा शरीर के विभिन्न अंगों का नियंत्रण एवं अंगों का वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित होता है उसे तन्त्रिका तन्त्र (Nervous System) कहते हैं। तंत्रिकातंत्र में मस्तिष्क, मेरूरज्जु और इनसे निकलनेवाली तंत्रिकाओं का अध्ययन किया जाता हैं। तन्त्रिका कोशिका, तन्त्रिका तन्त्र की रचनात्मक एवं क्रियात्मक इकाई है। तंत्रिका कोशिका एवं इसकी सहायक अन्य कोशिकाएँ मिलकर तन्त्रिका तन्त्र के कार्यों को सम्पन्न करती हैं। इससे प्राणी को वातावरण में होने वाले परिवर्तनों की जानकारी प्राप्त होती है। पौधों तथा एककोशिकीय प्राणियों जैसे अमीबा इत्यादि में तन्त्रिका तन्त्र नहीं पाया जाता है। हाइड्रा, प्लेनेरिया, तिलचट्टा आदि बहुकोशिकीय प्राणियों में तन्त्रिका तन्त्र पाया जाता है। मनुष्य में सुविकसित तन्त्रिका तन्त्र पाया जाता है।

तंत्रिका तंत्र हमारे शरीर का एक महत्वपूर्ण घटक है। शरीर की सभी ऐच्छिक व अनैच्छिक क्रियाओं पर नियंत्रण कर प्राप्त संवेदनों को ग्रहण कर मस्तिष्क तक पहुँचाना इस तन्त्र का कार्य है। तन्त्रिका तन्त्र तन्त्रिकीय ऊतकों से बना होता है। तंत्रिकीय उतक में तंत्रिका कोशिकाओं का तथा उन्हें बांधने तथा उन्हें स्थिर रखने वाले एक विशिष्ठ प्रकार के संयोजी ऊतक का समावेश होता है, जिसे तंत्रिका बंध कहा जाता है।

न्यूरॉन स्नायुकोशिकाओं तथा इनसें संबंधित स्नायु तंतु का समन्वित रूप है। स्नायु कोशिकाएं मस्तिष्क एवं स्पाइनल कार्ड का भूरा पदार्थ बनाती है। कोशिका में कई उभार रहते है जिन्हें डेन्ड्राइट्स कहा जाता है। ये छोटे शाखामय उभार होते है जिनके द्वारा स्नायुविक आवेग कोशिका में एवं तन्तु मस्तिष्क एवं स्पाइनल कॉर्ड में सफेद पदार्थ बनाते है।

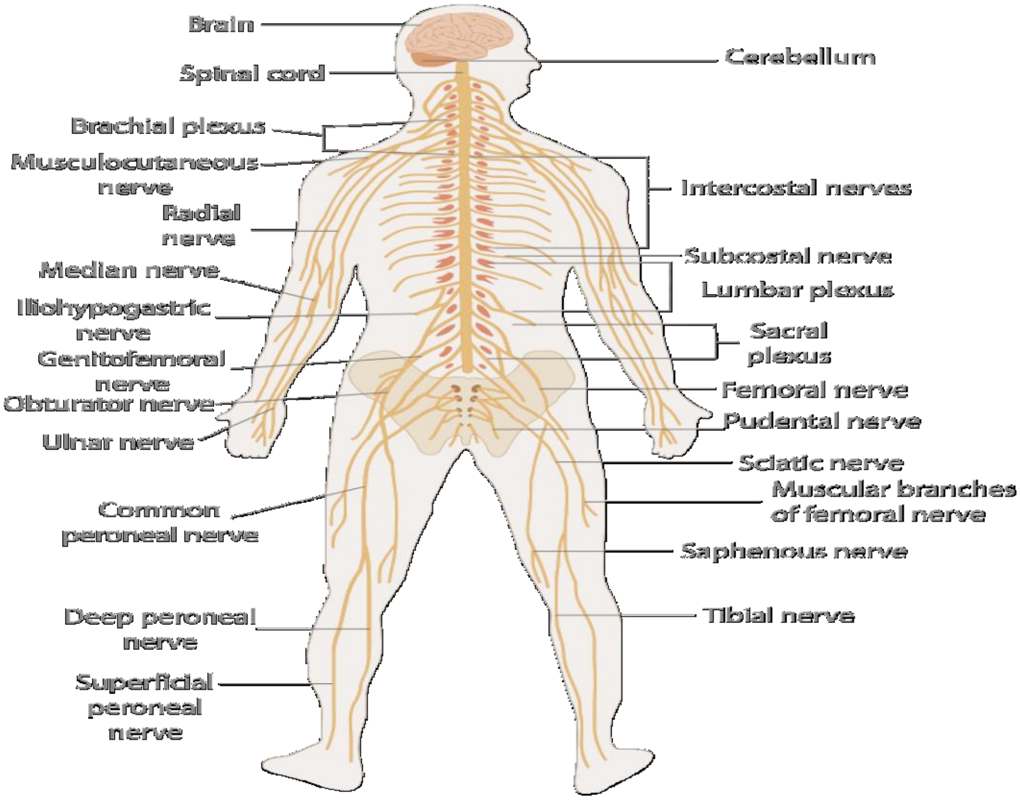


## मानव का तंत्रिका तंत्र

### 15.3.1 तंत्रिका तंत्र के रोग – शिजोफ्रेनिया

शिजोफ्रेनिया एक दीर्घकालिक, गंभीर एवं अक्षम कर देने वाली मस्तिष्क की एक बीमारी है। किसी भी जनसंख्या का लगभग 1 प्रतिशत लोग अपने जीवन काल में इस बीमारी से ग्रसित होते है। उस हिसाब से भारत की 130 करोड़ की जनसंख्या का लगभग 1 प्रतिशत व्यक्ति इस बीमारी से ग्रसीत हो सकने का अनुमान है। उस हिसाब से भारत की जनसंख्या अन्य देशों की तुलना में इस रोग से कही अधिक ग्रसित है। शिजोफ्रेनिया से ग्रसित लोगों को अक्सर दिल दहला देने वाले लक्षणों का अनुभव होता है। इसे विखंडित मनोविक्षिप्ति के नाम से भी जाना जाता है। शिजोफ्रेनिया पुरूष और महिलाओं दोनों को समान दर से ग्रसित करता है। आँकड़े बताते है कि यह बिमारी पुरूषों में जल्दी उभरती है 15 से 25 वर्ष में और औरतों की तुलना में 20 से 35 वर्ष।

**लक्षण :**

शिजोफ्रेनिया से ग्रसित रोगों में निम्न लक्षण दिखाई देते है जैसे–

1. शिजोफ्रेनिया का प्रमुख लक्षण सोचने एवं बातचीत में आई गड़बड़ी है। मरीज की बात में कोई तारतम्य नहीं रहता। उसकी बातचीत में शब्दों एवं वाक्यों में परस्पर कोई संधि नहीं रह जाता। हर शब्द स्वतंत्र हो जाता है। रोगी की बातचीत अनर्गल होती है।

2. कुछ रोगी परिस्थिति एवं समय से परे लगातार असंबद्ध एवं निरर्थक बात करते रहते हैं, जिसने कभी–कभी बिलकुल नए शब्दों का समावेश हो सकता हैं। इसके विपरीत कुछ रोगी बोलते ही नहीं, किसी बात का उत्तर ही नहीं देते। बस, एकदम भावविहीन नेत्रों से टकटकी लगाए देखते हैं या रोगी बात करते–करते बिना किसी कारण के एकाएक चुप हो

जाते है। पूछने पर वह यह कहते है कि उसका मस्तिष्क एकाएक शून्य हो गया, जैसे कि उसके मस्तिष्क से सारी बाते ही किसी ने गायब कर दी हो आदि।

3. तरह–तरह की आवाजें सुनाई पड़ना, जो केवल उसी व्यक्ति को सुनाई देती है किसी अन्य को नही। ये आवाजें उसकी इच्छा के विरूद्ध उसको सुनाई देती है। कभी–कभी ये आवाजें एक दो व्यक्तियों की न होकर कई व्यक्तियों की हो सकती हैं, जो आपस में ही बातें करती हैं, रोगी से बातें करती है। रोगी के बारे में व्यंगात्मक या आदेशात्मक टिप्पणियाँ करती रहती है।

4. कभी–कभी रोगी को ऐसा लगने लगता है जैसे अन्य व्यक्ति उसके दिमाग को किसी खुली किताब की तरह आसानी से पढ़कर उसके हर विचार को जान लेते हैं।

5. कुछ रोगियों को यह लग सकता है कि अन्य बाहरी शक्तियाँ या यंत्र उनके दिमाग, विचारों, भावनाओं एवं शारीरिक हरकतों को किसी कठपुतली की तरह नियंत्रित कर रहे है।

6. कुछ व्यक्तियों में अनेक प्रकार के गलत भ्रम पैदा हो जाते हैं, जैसे कि अन्य व्यक्ति उनके विरूद्ध षडयंत्र कर रहे हैं और उनको मारना चाहते है।

7. कुछ एक मरीज तो बिल्कुल मूक एवं मूर्तिवत् हो जाते हैं और अक्सर एक ही अवस्था में घंटों खड़े, बैठे, लेटे रहते हैं। इन अनुभवों से रोगी अति भयभीत, बेचैन हो जाते है। उनकी भाषा, बोलचाल, रहन–सहन और व्यवहार इतना अस्त–व्यस्त हो जाता है कि अन्य लोगों को यह समझ से परे अथवा भयभीत कर देता है।

8. रोगी की संवेग अनुभूति एवं अभिव्यक्ति की क्षमता में अत्यधिक परिवर्तन आ जाता है। ऐसा संवेग एवं सोचने में परस्पर तारतम्य के लोप होने से होता है। कुछ रोगियों में यह क्षमता भी समाप्त हो जाती है। न तो खुशी का अनुभव कर पाते हैं और न ही दुःख का।

9. चेहरा भाव शून्य हो जाता है। चेहरे का सामान्य तेज एवं चमक गायब हो जाती है। मरीज चुपचाप अपने वातावरण से विरक्त टकटकी लगाए देखता रह जाता है। किसी भी बात का उसकी भावनाओं पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

10. कुछ मरीज बिना किसी बात के हँसते या रोते दिखायी पड़ते हैं। पूछने पर वे अपने हँसने या रोने का सही कारण नहीं बता पाते।

**कारण :**

शिजोफ्रेनिया क्यों हो जाता है, इसकी उत्पत्ति के कारण अभी स्पष्ट नहीं हैं। अभी तक प्राप्त जानकारी के अनुसार इस बीमारी में वंशानुगत जीनों के प्रभाव, मस्तिष्क के विकास संबंधी खराबियाँ, परिस्थितियाँ तथा तनाव की भूमिका अति महत्त्वपूर्ण समझी जाती है।

**1. वंशानुगत–** यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि शिजोफ्रेनिया अक्सर परिवारों में पीढ़ी दर पीढ़ी पाया जाता है। किंतु यह आवश्यक नहीं कि वंशानुक्रम के अभाव में यह बीमारी नहीं हो सकती। जिन लोगों के परिवार में किसी करीबी संबंधी को यह रोग है उस परिवार के अन्य सदस्यों में यह रोग होने की संभावना आम जनता से अधिक होती है। उदाहरण के तौर पर यदि माता या पिता में यह बीमारी है, तो उनके बच्चो में यह रोग होने की संभावना 10 प्रतिशत होती है तथा यदि हमशक्ल जुड़वा बच्चों में से किसी एक को यह बीमारी है, तो दूसरे को होने की संभावना 40 से 50 प्रतिशत तक है जबकि जनसाधारण में इसके होने की संभावना 1 प्रतिशत है।

**2. मस्तिष्क के विकास संबंधी खराबियाँ से–** हमारे मस्तिष्क में कई रसायन कार्य करते हैं। इनमें से कुछ रसायनों सेरीटोनिन, डोपोमिन एवं ग्लूटामेट का असंतुलन इस रोग के लिए उत्तरदायी होता है। इस क्षेत्र में निरंतर नए शोध हो रहे है।

**3. मस्तिष्क में किसी संरचनात्मक खराबी से–** वर्तमान में जीवित व्यक्तियों के मस्तिष्क की संरचना एवं कार्यप्रणाली को जानने के लिए व्यापक प्रयास हो रहे हैं। शिजोफ्रेनिया मस्तिष्क के विकास में हुयी गड़बड़ी के फलस्वरूप होने वाला रोग है, जिसमें भ्रुण की विकास अवस्था के दौरान मस्तिष्क की कोशिकाएँ असामान्य संपर्क स्थापित कर लेती हैं। ये गड़बड़ियां किशोरावस्था तक छुपी रहती हैं। उसके बाद मस्तिष्क की परिपक्वता एवं विकास के दौरान हुए बदलाव, इन असामान्य कोशिकीय संबंधों के साथ मिलकर बीमारी के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं।

कुछ दीर्घकालिक रोगियों में मस्तिष्क के भीतर स्थित तरल पदार्थ से भरी हुई जगहों, जिन्हें वेंट्रिकिल कहते हैं उनका आकार बढ़ जाता है एवं कुछ अन्य मस्तिष्क के क्षेत्रों का आकार घट जाता है। ये सी. टी. स्कैंन एवं एम. आर. आई. नामक जाँचों से ज्ञात किया जा सकता है, परंतु यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि मस्तिष्क की संरचना में यह गड़बडियां सारे शिजौफ्रेनिक रोगियों की विशेषता नहीं होती और न ही ये गड़बडियाँ केवल शिजोफ्रेनिया से ग्रसित लोगों में ही पायी जाती है। इसलिए नियमित तौर पर शिजोफ्रेनिया के मरीजों में इन जांचों का एवं खून की अन्य जांचों का कोई विशेष औचित्य नहीं होता।

**इस रोग के कुछ अन्य संभावित कारण –**

1. चिरकालीक संताप या तीव्र मानसिक दबाव सहन करने में असमर्थ रहना है, जिसकी परिणति हम इस रोग के रूप में देखते हैं।
2. कभी–कभी किसी शारीरिक बीमारी या कमजोरी के कारण भी इस रोग की संभावनाएं बढ़ जाती हैं।
3. इस प्रकार बहुत से रोगीयों में यह रोग ज्वर, प्रसूति या अन्य शारीरिक बीमारियों के कारण आयी मानसिक दुर्बलता के कारण भी होता है।

### 15.3.2 अल्जीमर्स रोग – बुढापे में याददाश्त की कमी

यह एक ऐसी बीमारी है जिसमें मस्तिष्क की कार्यक्षमता का क्रमशः क्षय होता है। फलस्वरूप भ्रम, सुस्ती, दौर्बल्यता, फिर वाणी और देखने की क्षमता में भी कमी होने लगती है। वृद्धावस्था में होने वाले रोगों में अल्जीमर्स रोग लाइलाज और खतरनाक है। यह रोग खतरनाक इसलिए है क्योकि एक बार मस्तिष्क कोशिकाओं का जो विनाश होना शुरू होता है तो वह रोगी की जान लेकर ही खत्म होता है। इस रोग का निदान ही नहीं उपचार भी, चिकित्सा विज्ञान के लिए आज भी गंभीर चुनौती है। कैंसर, एड्स, हृदय रोग एवं अनेक आपात रोगों के सामने अल्जीमर्स रोग के प्रति ज्यादा ध्यान नहीं दिया जा रहा है जबकि यह भयावह रोग भी उनके मुकाबले कम नही हैं।

**लक्षण :**

**रोग की पहली अवस्था–**

1. बीमारी की प्रारंभिक अवस्था में दिमागी अवस्था कुछ गड़बड़ा जाती है, जिसके परिणाम–स्वरूप कार्य क्षमता में कमी आने लगती है।
2. रोगी नए कार्य, तकनीक सीखने में सफल नहीं हो पाता।
3. मरीज की याददाश्त धीरे–धीरे कम होने लगती है। वर्तमान में घटित घटनाक्रम को याद नहीं रख पाते, पर उनकी पुरानी स्मरण शक्ति बरकरार रहती है।

4. मरीज अपने बचपन एवं युवावस्था में घटित घटनाओं तथा हादसों को विस्तार से बार–बार बताते है। पर उसी दिन या कुछ समय पहले हुई बात याद नहीं रहती।
5. स्मरण शक्ति कम होने के कारण रोगी समय, तारीख, स्थान को याद नहीं रख पाते, वे अवसर भूल जाते हैं कि खाना खाया है अथवा नहीं।
6. यदि रोगी को काम करना है या कहीं जाना है, तो भूल जाते है। हिसाब–किताब नहीं कर पाते, इस कारण खरीदारी में दिक्कत होती है।
7. वे सोचकर निर्णय लेने में असमर्थ होते हैं। अनिर्णय की स्थिति में बने रहने के कारण वे अपने कार्य को सही ढंग से अंजाम नहीं दे पाते।
8. स्मरण शक्ति कम होने के कारण अल्जीमर्स ग्रसित अपने काम या कही बात को भूल जाते हैं, जिससे एक ही कार्य या बात को बार–बार दोहराते हैं। अक्सर रोगी जानकार लोगों को पहचानने में भूल कर सकते हैं।

**रोग की दूसरी अवस्था में–**

1. बीमारी तेजी से बढ़कर बुद्धिमता और स्मरण शक्ति को कम कर देती है।
2. व्यक्तित्व में परिवर्तन होने लगते हैं।
3. मरीज को खाने पीने, बोलते यहाँ तक कि हाथ पैर चलाने में भी परेशानी होती है।
4. रोगी सही समय पर सही शब्द का प्रयोग करने में असमर्थ होता है।
5. प्रायः शुरुआत में किसी विषय पर अपने विचार बहुत घुमा फिरा कर कहने की कोशिश करते हैं, खुद बनाये नए अर्थहीन शब्दों से अपने विचार प्रकट करने की कोशिश करते हैं।
6. वाक्य पूरे नहीं बोल पाते और विचार प्रकट करने में परेशानी अनुभव करते हैं और अंत में बोलना ही बंद कर देते हैं।
7. व्यक्तित्व एवं मानसिक स्थिति में बदलाव के कारण मरीज का कार्य के प्रति रुझान भी कम हो जाता है, जहाँ तक कि वे स्वयं की देखभाल में भी लापरवाही करने लगता है।
8. समाज से सामान्जस्य स्थापित नहीं कर पाता तथा एकाकी जीवन व्यतीत करने लगता है।
9. रोगी दैनिक कार्य एवं नित्य क्रिया में जैसे ब्रश करना, शेव करना, नहाना, कपड़े पहनना, भोजन इत्यादि करने में कोताही बरतने लगता है और अंत में उसकी देखभाल की जिम्मेदारी घरवालों को ही करनी पड़ती है।
10. रोगी में आवाज सुनकर व्यक्ति को या अन्य वस्तुओं को पहचानने की क्षमता कम हो जाती है। यदि उसको दर्द हो रहा है तो दर्द कहाँ हो रहा है बताने में मरीज असमर्थ रहता है।
11. साथ ही हाथों में कंपन, कड़ापन, खड़ें होने में परेशानी या शरीर में ऐठन हो सकती है।
12. अल्जीमर्स के मरीज में छोटे बच्चों वाली हरकतें फिर लौट आती है जैसे किसी वस्तु को पकड़ने में मुट्ठी बंद हो जाना मुँह में कुछ रखते ही मुँह चलाना या अपने आप मुँह चलाना, आँखों की पुतलियों की अस्थिरता आदि।

**रोग की तीसरी और अंतिम अवस्था –**

1. इस अवस्था में रोगी हिलना–डुलना बंद कर देता है, किसी बात का उत्तर नहीं देता, स्वयं बात भी शुरु नहीं करता।

2. बिस्तर पर ही मलमूत्र कर सकता है, खाना स्वयं नहीं खाता, दूसरों को हाथ से खिलाना पड़ता है या नाक से पेट में नली डालकर खिलाया जाता है। झटके आ सकते है।

3. न्यूमोनिया या लेटे रहने के कारण बड़े संक्रमण या कुपोषण के कारण मृत्यु हो जाती है।

4. मर्ज शुरू होने से अंत तक का अंतराल औसतन समय 5 से 8 वर्ष होता है।

4. अल्जीमर्स बीमारी से ग्रसित मरीज को तो कष्ट होता है साथ ही परिवार के सदस्यों की आर्थिक तथा मानसिक दशा को भी प्रभावित करता है।

**कारण :**

1. वैज्ञानिकों का मानना है कि एक जटिल प्रक्रिया के द्वारा वातावरण के अनेक अवयव कई गुणसूत्रों (मुख्यतः गुण सूत्र नं. 1, 14, 21) को प्रभावित कर उनमें बदलाव लाकर रोग पैदा कर सकते हैं।

2. जिन व्यक्तियों में गुणसूत्रों (क्रोमोसोम्स) में बदलाव हो गया है उनमें मस्तिष्क की मामूली–सी बीमारी, शारीरिक बीमारी, चोट, मानसिक रोग, बेहोशी की दवा या मानसिक तनाव, अल्जीमर्स रोग को शुरू कर सकते हैं।

3. अक्सर पाया जाता है कि वृद्धावस्था में जीवन साथी की मृत्यु के उपरांत इस रोग होने की संभावना बढ़ जाती है।

4. वैसे अल्जीमर्स रोग में मस्तिष्क के वेसल गैगलीयन एवं अन्य भागों में एसीटायल कोलिन रसायन स्त्रावित नहीं होता है।

5. यह रोग मस्तिष्क में गंभीर और अपरिवर्तनीय जैवरासायनिक परिवर्तनों के कारण होता है।

6. 'बीटा एमिलोइड' नामक प्रोटीन की असामान्य और अधिक वृद्धि से मस्तिष्क कोशिका क्षत–विक्षत होकर मृत होने लगती हैं।

7. रक्त–धमनी सख्त होने से मस्तिष्क के रोग उत्पन्न होते है।

8. अल्जीमर्स रोगी की मृत्यु के बाद हुए अंग विच्छेदन की जाँच पड़ताल में यह रहस्य हाथ आया – 'वीटा एमिलाइड' प्रोटिन की काफी मात्रा बढ़ी होना।

9. यह प्रोटीन मस्तिष्क की कोशिकाओं का जानी दुश्मन है।

10. खानदानी अल्जीमर्स के लिए उत्तरदायी डी.एन.ए. प्रकाश में आ चुका है।

**रोग का विकास –**

वृद्धावस्था में बुद्धि और दिमागी कार्य क्षमता कम हो जाना तो आम समस्या है, इस दशा को 'डिमेन्शिया' कहते है। बुद्धि और याददाश्त कम होने के कारण अनेक हो सकते हैं, पर सबसे प्रमुख कारण है 'अलजीमर्स रोग'।

औसत आयु बढ़ने तथा आबादी में वृद्धों का प्रतिशत बढ़ने के कारण विश्व भर में अल्जीमर्स बीमारी से ग्रसित रोगियों की संख्या लगातार बढ़ रही है। रोग बढ़ जाने पर रोगी परिवार तथा समाज पर बोझ बन जाते हैं। प्रायः इन रोगियों को लोग सनकी या पागल करार कर इनकी उपेक्षा करते है और इनकी देखभाल में कोताही करते हैं। अनुमान है कि भारत की कुल जनसंख्या की 06 से 1.6 प्रतिशत अल्जीमर्स रोगग्रसित है तथा प्रतिवर्ष 60 वर्ष से अधिक आयु के एक प्रतिशत, 65 से 70 वर्ष आयु के 2 प्रतिशत तथा 80 वर्ष से अधिक उम्र के लगभग 20 प्रतिशत इस रोग से ग्रसित हो जाते हैं।

अलजीमर्स रोग की शुरुआत अत्यंत धीमी गति से होती है, जिसका ज्यादातर एहसास न मरीज को और न ही परिवार के सदस्यों को हो पाता है। रोग का प्रारंभ 40 से

90 वर्ष की आयु में कभी भी हो सकता है, पर रोग ग्रसित होने की आशंका 65 वर्ष की आयु के बाद ज्यादा होती है।

आधुनिक युग की एक असाध्य बीमारी है– अल्जाइमर्स डिजीज। आज सिर्फ ब्रिटेन में ही 6 लाख से ज्यादा लोग इस बीमारी से पीड़ित हैं। वहाँ यह चौथी बड़ी असाध्य बीमारी मानी जाती है आखिर यह अद्‌भुत बीमारी जिसने विश्व में तहलका मचा रखा है, भारत में भी बीमारी से पीड़ित लोगों संख्या दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

**उपचार –**

1. मरीज की सहायता के लिए परिवार, पड़ोसी, दोस्त, डाक्टर, हैल्थ वर्कर सभी की सहायता एवं समझदारी की आवश्यकता होती है।
2. रोगी की समस्या समझकर उससे सदभावनापूर्ण व्यवहार करना चाहिए न कि पागल सनकी समझकर उपेक्षित या निरादर।
3. रोगी की दिनचर्या निर्धारित करें, ध्यान रखें कि मरीज दैनिक क्रिया में दांत साफ करना, शेव करना, नहाना, कपडे बदलना, बाल संवारना, कुल्ला करना इत्यादि कर रहा है।
4. मरीज के भोजन का विशेष ध्यान रखना चाहिए।
5. रोगी बच्चों की तरह व्यवहार करता है, माता पिता जैसे बच्चों की हर तरह से देखभाल करते हैं वैसे ही परिवार के सदस्यों का कर्तव्य है कि अल्जीमर्स ग्रसित रोगी की देखभाल करें।

## 15.4 मानसिक रोग का सामान्य परिचय

मानसिक रोग (Mental disorder) किसी व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य की वह स्थिति है जिसे किसी स्वस्थ व्यक्ति से तुलना करने पर 'सामान्य' नहीं कहा जाता। स्वस्थ व्यक्तियों की तुलना में मानसिक रोगों से ग्रस्त व्यक्तियों का व्यवहार असामान्य अथवा दुरनुकूली (मैल एडेप्टिव) निर्धारित किया जाता है, जिसमें महत्वपूर्ण व्यथा अथवा असमर्थता अन्तर्ग्रस्त होती है। इन्हें मनोरोग, मनोविकार, मानसिक बीमारी अथवा मानसिक विकार भी कहते हैं।

**कारण :**

मानसिक रोग के अनेक कारण होते हैं। इनमें से मुख्य प्रकार निम्नलिखित हैं :–

**1. जैविक कारक–** आनुवंशिक, मनोविक्षिप्ति या साइकोसिस (जैसे स्कीजोफ्रीनिया, उन्माद, अवसाद इत्यादि), व्यक्तित्व रोग, मदिरापान, मंदबुद्धि, मिर्गी इत्यादि रोग उन लोगों में अधिक पाये जाते हैं, जिनके परिवार का कोई सदस्य इनसे पीड़ित हों, तो संतान को इनका खतरा लगभग दोगुना हो जाता है।

**2. शारीरिक गठन–** स्थूल (मोटे) व्यक्तियों में भावात्मक रोग (उन्माद, अवसाद या उदासी इत्यादि), हिस्टीरिया, ह्रदय रोग इत्यादि अधिक होते हैं जबकि लंबे एवं दुबले गठन वाले व्यक्तियों में विखंडित मनस्कता (स्कीजोफ्रीनिया), तनाव, व्यक्तित्व रोग अधिक पाये जाते हैं।

**3. व्यक्तित्व–** अपने में खोये हुए, चुप रहने वाले, कम मित्र रखने वाले, किताबी–कीड़े जैसे गुण वाले, स्कीजायड व्यक्तित्व वाले लोगों में स्कीजोफ्रीनिया अधिक होता है, जबकि अनुशासित तथा सफाई पसंद, समयनिष्ठ, मितव्ययी जैसे गुणों वाले खपती व्यक्तित्व के लोगों में खपत रोग (बाध्य विक्षिप्त) अधिक पाया जाता है।

**4. शरीर वृत्तिक कारण–** किशोरावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था, गर्भ–धारण जैसे शारीरिक परिवर्तन कई मनोरोगों का आधार बन सकते हैं।

**5. वातावरण जनित कारण–** शारीरिक खान–पान संबंधी कारण।

कुछ दवाओं, रासायनिक तत्वों, धातुओं, मदिरा तथा अन्य मादक पदार्थों इत्यादि का सेवन मनोरोगों की उत्पत्ति का कारण बन सकता हैं।

**6. मनोवैज्ञानिक कारण–** आपसी संबंधों में तनाव, किसी प्रिय व्यक्ति की मृत्यु, सम्मान को ठोस, कार्य को खो बैठना, आर्थिक हानि, विवाह, तलाक, शिशु जन्म, कार्य–निवृत्ति, परीक्षा या प्यार में असफलता इत्यादि भी मनोरोगों को उत्पन्न करने या बढ़ाने में योगदान देते हैं।

**7. सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारण–** सामाजिक एवं मनोरंजक गतिविधियों से दुराव, अकेलापन, राजनीतिक, प्राकृतिक या सामाजिक दुर्घटनाएं (जैसे कि लूटमार, आतंक, भूकंप, अकाल, बाढ़, सामाजिक बोध एवं अवरोध, महंगाई, बेरोजगारी इत्यादि) मनोरोग उत्पन्न कर सकते हैं।

**15.4.1 मानसिक रोग – अवसाद–**अवसाद दिमाग की एक ऐसी बीमारी है जो व्यक्ति को उदास रखने के साथ–साथ उसको निष्क्रिय बना देती है। उसके सोचने की क्षमता धुंधली हो जाती है। कोई भी निर्णय लेना उसके लिए काफी कठिन हो जाता है। इसे अवसाद, उदासी, अवनमन आदि नामों से भी जाना जाता है। अवसाद या उदासी जिसे आधुनिक आयुर्विज्ञान में डिप्रेशन कहते हैं, एक दुखद मानसिक अनुभूति है, जो कि प्रायः हर व्यक्ति के जीवन में होती रहती है। अवसाद रोग कोई आधुनिक रोग नहीं है। यह मानव जाति के उद्‌भव के समय से अब तक अन्याय रूपों में विद्यमान है। राम के वियोग में दशरथ का अवसाद उनकी मृत्यु का कारण बना। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में उतार–चढ़ाव आते हैं । व्यक्ति के मस्तिष्क पर भी इन बातों का प्रभाव पड़ता है। अधिकांशतः यह प्रभाव क्षणिक होता है और कुछ समय बाद व्यक्ति सब कुछ भूल कर अपने काम में पुनः लग जाता है। जब यहीं प्रभाव लेश खिंचता है और प्रभावित व्यक्ति एक सप्ताह या दो सप्ताह तक से भी लंबे समय तक उदास रहता है, यहीं मानसिक दबाव है ।

**रोग का विकास –** सामाजिक मान्यताएँ बदल रही हैं। हर व्यक्ति कम से कम समय में अधिक से अधिक सुख सुविधा में लगा है। इस सुविधा को जुटाने के लिए पति–पत्नी दोनों नौकरी करने लगे। सबकी अपनी समस्याएँ हैं जिन्हें समझने के लिए दोनों के पास समय नहीं है। फलस्वरूप उनके जीवन में निराशा बढ़ने लगी और अवसाद के शिकार होते चले गये।

अमेरिका सहित सभी विकसित देशों में डिप्रेशन के रोग में तेजी से वृद्धि हो रही है। हर बीस में से कम से कम एक तो अवश्य ही अवसाद का रोगी है । अवसाद मन की एक अवस्था है। जीवन में कठिन क्षणों, निराशा, दुःख या किसी हादसे के दौरान मन का उदास होना स्वभाविक है । पर जब यही उदासी मन की गहराइयों में उतर जाती है और उस पर इस कदर छा जाती है कि कुछ अच्छा नहीं लगता, चारों तरफ अंधेरा ही अंधेरा दिखता है और जीने की चाह नहीं रहती। इसका शरीर पर भी असर पड़ता है और व्यक्ति मन और शरीर दोनों से रोगी हो जाता है। यह किसी तरह का पागलपन नहीं है और नहीं चरित्र या व्यक्तित्व की कमजोरी, बल्कि यह एक रोग है, जो किसी भी व्यक्ति को हो सकता है ।

यकृत शोथ फेंफड़े का कैंसर आदि या लंबी असाध्य शारीरिक बीमारी के कारण उदास हो सकता है। कुछ औषधियों, विशेषकर रक्तचाप कम करने की औषधियों के कारण भी कुछ रोगियों में अवसाद उत्पन्न हो सकता है । आधुनिक खोजों से इस संभावना को बल मिलता है कि इस प्रकार के अवसाद रोग कुछ वंशगत एवं अंतर्निहित असामान्य रासायनिक प्रक्रियाओं के कारण उत्पन्न होते हैं ।

अवसाद का मरीज शारीरिक स्तर पर असहाय, थका और मानसिक स्तर पर उदास रहता है। यह बीमारी किसी भी उम्र के व्यक्ति को हो सकती है। फिर भी अन्य अवस्था की तुलना में बुढापे में इसका जोर अधिक रहता है। इसी प्रकार स्त्री व पुरुष दोनों में यह समान रूप तो आती जाती है। यह बीमारी मुख्य रूप से मस्तिष्क में रासायनिक स्राव के असंतुलन का कारण होती है। यह केवल मानसिक ही नहीं शारीरिक रोग भी है।

**रोग का प्रारंभ –** इसमें रोगी को स्वयं अपनी आंतरिक दशा ठीक प्रतीत नहीं होती, मांसपेशियाँ सख्त हो उठती हैं और आस–पास के वातावरण से मानो उसका कोई लेन देन ही न हो। रोग की शुरुआत हल्के–फुल्के लक्षणों से होती है। ऐसे रोगी में बैचेनी, अनावश्यक शारीरिक अंगों को हिलाना, कंधे उचकाना, किसी भी बात पर चिंड़चिड़ाना, अकेले हँसना या बोलना, घबराना आदि लक्षण दिखाई देते है।

**रोग के भेद –**

आमतौर पर अवसाद (डिप्रेशन) दो प्रकार का होता है :–

1. इंडोजीनियस डिप्रेशन
2. न्यूरेटिक डिप्रेशन

**1. इंडोजीनियस डिप्रेशन–**

इस प्रकार के डिप्रेशन में उदासी अंदर से होती है। इसके लक्षण निम्न प्रकार हैं–

- रोगी सोचता है कि अब तो अच्छे दिन आयेंगे ही नहीं। यह सोचकर हर वक्त मन उदास रहता है।
- भूख नहीं लगती है, वजन घट जाता है।
- ठीक से नींद नहीं आती है।
- थकान, आलस और सुस्ती, किसी भी काम को करने में स्वयं से व अंदर से उत्साहित नहीं होता।
- बिना किसी स्पष्ट कारण के चिंतित रहना। सोचता रहता है हाय अब क्या होगा ?
- आत्महत्या का बार–बार मन में विचार आता रहता है।
- इस रोग के गंभीर हो जाने पर कान में आवाजें सुनाई देने लगती है।

**2. न्यूरेटिक डिप्रेशन–**

यह डिप्रेशन इंडो–जीनियस डिप्रेशन से भिन्न होता है। इसमें व्यक्ति उदास होते हुए भी अपने आस–पास होती हुई घटनाओं से प्रभावित होता है तथा खुशी महसूस कर सकता है। कार्य करने की क्षमता कम होने हुए भी कार्यरत रहता है। चिड़चिड़ाहट, थकान आदि रहती तो है, किंतु आत्महत्या के विचार काफी कम ही आते है।

गंभीर होने पर न्योरेटिक तथा इंडोजीनियस डिप्रेशन में भेद करना मुश्किल होता है। किंतु न्यूरेटिक डिप्रेशन दो वर्षों से ज्यादा चलता है। कभी–कभी जीवन में हादसों के कारण भी डिप्रेशन होता है और प्रभावित व्यक्ति एकदम गुमसुम हो जाता है। न खाता है, न हँसता है, न ही बोलता है। कुछ बीमारियों में भी डिप्रेशन का रोग हो जाता है। जैसे डायबिटीज, हाइयोथायराइड, किंतु बीमारियों से संबधित डिप्रेशन रोग के ठीक होने के साथ ही ठीक भी हो जाता है ।

अवसाद रोग के प्रमुख लक्षण एक दृष्टि में :–

1. उदासी या अवसाद की भावना।

2. लोगों से मिलने–जुलने का मन न होना।
3. रोगी का प्रायः चुपचाप पड़ा रहना।
4. अपने मित्रों को कोई बहाना बनाकर टाल देना।
5. रोगी यदि संबंधियों या मित्रों से बातचीत भी करता है तो उसकी बातों में पहले जैसी सजीवता नहीं रहती है।
6. धीमी आवाज से बड़े ही नीरस ढंग से बात करता है।
7. उसकी बात में व्यथा का ही फुट रहता है। कामकाज में रोगी का मन न लगना।
8. रोगी के लिए हर काम बोझ–सा होता है।
9. उसके दिमाग में हमेशा यह बात रहती है कि मैं कुछ नहीं कर पाऊँगा यहीं तक कि नित्य कर्म, नहाना, खाना, कपड़े पहनना आदि भी दूर्भर हो जाते हैं।
10. रोगी अपने, आप को अत्यंत तुच्छ, निकम्मा तथा समाज पर बोझ समझने लगता है।

**15.4.2 तनाव–** ''तनाव'' शब्द का प्रयोग चिकित्सा शास्त्र में सन् 1940 कि बाद ही प्रारंभ हुआ। आधुनिक युग में प्रत्येक मनुष्य तनाव ग्रस्त है। इस युग को यदि तनाव का युग कहा जाये तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। अमेरिका में 10 प्रतिशत व्यक्ति मानसिक तनाव ग्रस्त हैं। भारत में वह प्रतिशत तो कम है किन्तु गांवों की अपेक्षा नगर में तनाव खूब पनप रहे हैं। आजकल शहरी जीवन तथा स्पर्द्धा के कारण मन पर परिवेश जनित तनावों का बोझ बढ़ता ही जा रहा है। रोजी–रोटी से लेकर असुरक्षा की भावना, संयुक्त परिवारों की टूटन, सामाजिक संबंधों जैसे शादी आदि की चिंता, महंगाई, संतानोत्पत्ति, गंभीर बीमारी आदि स्थितियां इन रोगों को जन्म देती है। तनाव से निम्न रोगों की उत्पत्ती होती है।
1. मानसिक रोग – स्नायु दौर्बल्यता, अवसाद, पागलपन, अनिद्रा आदि।
2. शारीरिक रोग – सिर दर्द, उच्च रक्तचाप, अल्सर, ह्रदय रोग, चर्म रोग, दमा, कब्ज, कैंसर, मधुमेह आदि रोग बिना बुलाये आ जाते हैं।

**लक्षण :–**
1. जीवन में चिंता ग्रस्त होकर जीना।
2. अकारण क्रोध करना।
3. किसी पर विश्वास न होना।
4. निराशा।
5. भय का वातावरण।
6. समस्याओं को सुलझाने के स्थान पर उसे कल पर छोड़ना।
7. कार्य से डरना।
8. चंचलता।
9. विस्मृति एवं घबराहट।
10. भोजन व विश्राम नियमित समय पर न होना आदि।

**कारण :–**
1. यह रोग मानसिक दौर्बल्यता के कारण।
2. पाचन क्रिया मंद होने के कारण।
3. स्नायु तंत्र प्रभावित होने के कारण।
4. शारीरिक परिश्रम की कमी।
5. परिस्थितियों से तालमेल न बैठा पाना।
6. कार्य की अधिकता एवं कार्य रूचीकर न होना।

7. रोग की अधिकता।
8. रक्त में निकोटिन की मात्रा का बढ़ जाना।

**सामान्य चिकित्सा :**

1. आज के सारे मनोवैज्ञानिक इस बात के लिये सहमत है कि इस रोग की चिकित्सा केवल योगासन, प्राणायाम और ध्यान से ही हो सकती है।
2. प्रतिदिन स्नान से पहले सूत्र नेति तथा जल नेति का अभ्यास।
3. सप्ताह में दो बार कुंजल क्रिया भी करें।
3. सदैव प्रसन्न मुद्रा में रहने का प्रयास कीजिये। तब रोगी तनाव मुक्त रहेंगे।
4. आहार –फल, सलाद का अधिक से अधिक उपयोग करें।
5. फल–सब्जियों का जूस दिन में 2–3 बार लें, संतुलित और सात्विक आहार अपनायें। गाय का धरोष्ण दूध व फलों का नाश्ता करें।
6. पंक स्नान, सर्वांग मिट्टी लेप, पेडू पर मिट्टी की पट्टी आदि का प्रयोग लाभप्रद होता है।

**15.4.3 पागलपन–**नाड़ी–केन्द्र की विकृति का परिणाम (मस्तिष्क) की विकृति का परिणाम पागलपन, उन्माद या इन्सानिटी होता है। इस रोग के कारण वे ही है जो अन्य स्नायु रोगों के कारण बताये जा चुके हैं फिर भी भयानक कोष्ठबद्धता के कारण आंतों में मल के सड़ने की वजह से दिमाग में गर्मी का चढ़ जाना इस रोग का प्रधान कारण है।

**लक्षण :–**

1. मानसिक नियंत्रण न होना।
2. शारीरिक नियंत्रण न होना।
3. याददाश्त की कमी होना।
4. व्यवहार में असामान्यता।
5. बड़बड़ाते रहना।

**कारण :–**

1. अचानक कोई घटना घट जाना।
2. कोई दुर्घटना हो जाना।
3. प्रियजन की अकाल मृत्यु।
4. मल की सड़न से।
5. सिर पर चोट लगना।
6. निंद की कमी।

**सामान्य चिकित्सा :**

1. उपवास या रसाहार, फलाहार, पेडू की मिट्टी की पट्टी तथा उपयुक्त आहार का आश्रय लेकर सर्व प्रथम कोष्ठ को साफ कर लेना चाहिये।
2. उन्माद के रोगी को ठण्डी मिट्टी की पट्टी देना चाहिये।
3. मिट्टी की गीली पट्टी या कमर की गीली पट्टी तथा सप्ताह में एक–दो बार शरीर पर एक घंटा के लिये गीली चादर की लपेट लगाना बहुत लाभकर है।
4. यदि रोगी को एक घंटे तक गरम पानी के टब में लिटाये रखा जाये तो केवल इतने ही से बहुत लाभ हो सकता है।
5. सवेरे सोकर उठने के तुरन्त बाद और रात में सोने से तुरन्त पहले ठण्डे जल से भिगोई हुई तौलिया से रोगी का पूरा शरीर पोछना चहिये।

6. दिन में दो–तीन बार सिर के ऊपर गीली मिट्टी की पट्टी रखना भी लाभकर है। सिर पर ठण्डी पट्टी रखते समय पांवों को गरम रखना चाहिये।

**15.4.4 अनिद्रा–** अनिद्रा अर्थात् नींद का न आना एक कठिन और कष्टदायक रोग है। इससे आदमी पागल तक हो जाता है। इस रोग के अनेक कारण हैं।

**लक्षण :**

1. निंद न आना।
2. बैचेनी होना।
3. सिर दर्द।
4. सिर में भारीपन लगना।
5. आखों का दर्द करना।
6. तरह तरह के विचार आना।
7. किसी काम में मन न लगना।

**कारण :**

1. कब्ज आदि रोगों के कारण रक्त का विषाक्त होना।
2. मस्तिष्क में रक्ताधिक्य।
3. सोने जाने से पहले अधिक भोजन अथवा आधिक दिमागी काम करना।
4. शारीरिक श्रम कम या बिल्कुल न करना।
5. रोगी होना।
6. नये स्थान में सोना।
7. कमरे में प्रकाश और शुद्ध वायु का उचित प्रबन्ध न होना।
8. एक ही कमरे में बहुत से आदमियों का सोना।
9. चारपाई और बिछौने आदि का गंदे और खटमलों से युक्त होना।
10. चाय–काफी का सेवन।
11. मुंह ढ़ककर सोना।
12. शारीरिक व मानसिक उत्तेजना।
13. शोरगुल वाला वातावरण।
14. अधिक चिंता करना।
15. उत्तेजना पूर्ण तथा आत्मग्लानि आदि।

**सामान्य चिकित्सा :**

सर्व प्रथम जिन कारणों से अनिद्रा रोग उत्पन्न होता है उन्हें हटाने की भरपूर कोशिश करें।

1. सोने से पूर्व किसी कठिन विषय पर लिखी गयी कोई पुस्तक पढ़ने से शीघ्र ही निंद आने लगती है।
2. भोजन में नमक की मात्रा कम कर देने से भी नींद आना आसान हो जाता है।
3. शयन पूर्व मस्तिष्क को सभी प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त करें।
4. प्रतिदिन ठीक समय पर सोने का नियम बना लें।
5. रक्त को शुद्ध बनाने वाला सात्विक और प्राकृतिक भोजन करना चाहिये।
6. सोने से पहले कमर और गर्दन पर कपड़े की गीली पट्टी बांधें।
7. शयन पूर्व स्नान और गर्म जल सेवन दोनो नींद लाने में सहायक है।
8. शयन पूर्व 15–30 मिनट तक मामूली गरम पानी से भरे टब में लेटना या रीढ़ स्नान करना अनिद्रा रोग मे कारगर उपचार है।

9. एनिमा, कटि–स्नान तथा पेडू की मिट्टी पट्टी आदि द्वारा पेट को साफ कर लें।
10. नींबू का रस मिला पानी रोगी को प्रचुर मात्रा में प्रतिदिन पिलायें।
11. सुबह के वक्त भीगी घास पर टहलें।
12. नींद लाने हेतु, नींद लाने वाली कृत्रिम दवा का प्रयोग बिल्कुल नहीं करना चाहिये।

**15.4.5 मुर्छा–** जब किसी कारण से मस्तिष्क में अचानक रक्त का अभाव हो जाता है तब मनुष्य मुर्च्छित हो जाता है।

**लक्षण :**

1. मुख पीला पड़ जाता है,
2. माथे से ठण्डा पसीना छूटने लगता है,
3. आंखों के सामने अंधेरा छा जाता है,
4. मनुष्य अचेत होकर गिर जाता है।

**कारण :**

1. मस्तिष्क में रक्त का अभाव,
2. लम्बा उपवास,
3. अचानक अधिक रक्त शरीर से निकल जाना,
4. तीव्र वेदना या चोट,
5. दूषित गैस का श्वास के साथ भीतर चला जाना आदि।

**सामान्य चिकित्सा :**

1. मूर्च्छा होते ही रोगी को आराम से उसके सिर को थोड़ा नीचा रखते हुए किसी हवादार स्थान में लिटा दें।
2. छाती पर कपड़े की भीगी पट्टी देकर चेहरे पर ठण्डे पानी का छींटा मारें।
3. पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी देने से अच्छा लाभ होता है।
4. रीढ़ को भीगी तौलिया से पोछना या उस पर गरम ठण्डी सेंक देना भी उपकारी होता है।
5. गुनगुने पानी का एनिमा देना ।
6. पंक–स्नान, रज–स्नान करना भी बहुत लाभदायक है।

**तंत्रिका तंत्र एवं मानसिक रोगों की पृथ्वी चिकित्सा पद्धतियाँ**

## 15.5 मिट्टी तत्व चिकित्सा सिद्वान्त एवं विधियाँ

पृथ्वी में एक चुम्बकीय शक्ति है जो सम्पर्क में जाने पर मनुष्य को प्राणवान एवं ऊर्जावान बना देती है। जंगल के पशु मिट्टी के साहचर्य के कारण अनेक रोगों से मुक्त रहते है। मिट्टी में अमृत मिला है। स्वच्छ मिट्टी, धूप, घास पर नंगे पांव चलने, बैठने एवं लेटने के अपने विशेष लाभ है।

पंच महाभूत क्षिति जल पावक गगन समीरा। पंच तत्व रचित यह अधम शरीरा। तत्वों में मिट्टी एक आधारभूत तत्व है। कहा जाता है कि यह शरीर मिट्टी से ही बना है और मिट्टी में मिल जाता है। सभी जड़–चेतन वस्तुओं को धारण करने से इसे धरती धरित्री, धरा कहते है। इसके गर्भ में कईं रत्न और खनिज पदार्थ भरे रहने से इसे रत्नगर्भा, वसुधा, वसुमती, रत्न प्रसविनी कहते है। सभी रस पृथ्वी में मौजूद है। इसके गर्भ से खाद्य पदार्थ पोषक तत्व ग्रहण करते है जिन्हें खाकर हम स्वस्थ बनते है, इसलिये इसे रसा भी कहते है। विष के प्रभाव को नष्ट करने के कारण इसे अमृता भी कहते है। प्रसिद्ध चिकित्सक

एडल्फ जस्ट के अनुसार ''मछली जल का जीव है वह जल में रह एवं जी सकती है। पक्षी का निर्दिष्ट स्थान वायु है, वह आकाश का पक्षी है लेकिन मनुष्य धरती पर चलता है उन्होंने पृथ्वी तत्व को धरती माता की संज्ञा दी जिसकी गोद में सिर रखकर मनुष्य अपने अनेक रोग, शोक एवं कष्ट से मुक्ति पा सकता है।'' इससे शरीर की जीवन शक्ति बढ़ती है, स्नायु मण्डल सबल होता है, नेत्र–ज्योति ठीक रहती है और मस्तिष्क पर गरमी नहीं चढ़ती, नींद ठीक से आती है।

**1.मिट्टी की गरम पट्टी–** इसके लिये बलुई मिट्टी अच्छी होती है और नदी के कछार की ताजी गीली मिट्टी बहुत ही अच्छी होती है। शुद्ध सूखी मिट्टी को कूट पीसकर कपड़े से छान लेते है। फिर किसी लकड़ी के टुकड़े से चलाते हुये उसमें ठंडा पानी डालकर गीला करते है। गीली मिट्टी में विद्युत चुम्बकीय गुण होता है हाथ लगाने या लोहे की छड़ डालने पर इसका गुण कम हो जाता है।

गीली मिट्टी को एक मोटे कपड़े पर आधा इंच की मोटाई में फैलाये फिर उस मिट्टी को ऊनी कपड़ा रखकर किसी अन्य कपड़े से बाँध देते है। उसके बाद रोगी को आराम से लिटा देते है। कम से कम 20 मिनट और अधिक से अधिक 35 तक यह लगायी जा सकती है। समय पूर्ण हो जाने पर पट्टी को हटाकर उस जगह को भीगे कपड़े से पोंछ देना चाहिये और उस स्थान को 2–3 मिनट तक सूखी मालिश देनी चाहिये ताकि उसमें थोडी गर्माहट आ जाये। इसी को रोगों में मिट्टी की गरम पट्टी देना कहा जाता है। जो मिट्टी एक बार प्रयोग में आ चुकी हो उसका दोबारा उपयोग भुल से भी नहीं करना चाहिए। क्योकि उसमें रोग के जहरीले पदार्थ व्याप्त हो जाते हैं।

**लाभ–** पुराने कोष्ठबद्धता, अपच, दस्त तथा पेट के रोगों में और ज्वरादि मे, शरीर की बढ़ी हुई अनावश्यक उष्णता को दूर करने के लिये। यह रोग को जलन और दर्द दोनों को एक साथ शीघ्र दूर करती है।

**2.गरम मिट्टी की पट्टी–** इसके लिए किसी बर्तन में थोडी मिट्टी डालकर उसमें उबलता पानी धीरे–धीरे मिलाते है अथवा मिट्टी को धीमी आंच पर धीरे–धीरे गर्म करते है फिर इसे रोगी के तकलीफ वाले स्थान पर लगाते है। इसे गरम मिट्टी की पट्टी कहते है। मिट्टी की गर्मी रोगी की सहन शक्ति के अनुसार होनी चाहिये, इसका प्रयोग बेंत जैसी वस्तुओं के घावों तथा मोचादि में, स्त्रियों मे गर्भाशय सम्बन्धी रोगों मे, गठिया सन्धिवात के रोगियों के लिये, पेट दर्द, महिलाओं के मासिक दर्द, श्वेत प्रदर तथा उदर अंगो की सूजन के लिये परम उपयोगी है। इस गरम मिट्टी की पट्टी को लगाने के बाद ऊपर से ऊनी कपड़ा बांधना जरूरी है।

**3.रज स्नान–**शुद्ध साफ मिट्टी को छानकर अंग–प्रत्यंग को रगड़ना, जब सारा बदन मिट्टी से रगड़ जाये तो 10–20 मिनट तक धूप में बैठकर फिर ठंडे पानी से स्नान करना, यही सूखी मिट्टी का स्नान है इससे त्वचा नरम, लचीली एवं कोमल और रोम छिद्रों के खुलने से शरीर के विजातीय द्रव्य पसीने के रूप में बाहर हो जाते है। इससे फोड़े–फुंसिया दूर हो जाती है।

अखाड़े की मिट्टी में बार–बार गिरकर शरीर को मिट्टी से घिसना, व्यायाम द्वारा पसीना निकालना और रोम कूपों को खोलकर मिट्टी से निकली हुई एक प्रकार की गैस की कूपों द्वारा शरीर के अन्दर खींचकर माँस, अस्थि तथा त्वचा को सुगठित करना भी रज स्नान है।

**4.पंक स्नान–**महीन पिसी हुई और कपड़े से छनी हुई मिट्टी को जब पानी के साथ घोलकर उसे कीचड़ सदृश बना लेते हैं तब इस प्रकार की गीली मिट्टी से किया हुआ स्नान गीली मिट्टी का स्नान कहलाता है।

बालों में मलने के लिये एक खास किस्म की काली मिट्टी काम में लायी जाती है जिससे बाल मुलायम और चमकीले हो जाते है। यह स्नान बहने वाले फोड़े–फुंसियां वाले शरीर के लिये, त्वचा की गंदगी और सफेदी के लिये लाभप्रद है। जब तक गीली मिट्टी थोडी सूख न जाये, जल से स्नान न करना चाहिये।

**5.बालू – भक्षण–** कबीर दास जी ने कहा है कि मनुष्य थलचर प्राणी है अर्थात् पृथ्वी पर विचरने वाला जीव है। उसे सदा–सर्वदा पृथ्वी से ही संसर्ग रखना चाहिये वह मिट्टी को शरीर पर धारण करके, मिट्टी के ही बिस्तर अर्थात पृथ्वी पर सोये ठोक उसी प्रकार जिस प्रकार वह मिट्टी से उपजे फल–अन्नादि का भोजन करके जीवित रहता है।

**6.पेट पर मिट्टी की ठंडी पट्टी–** जब मिट्टी की पट्टी देने हेतु उसमें सामान्य ताप के जल को मिलाकर तैयार किया जाता है तो उसे ठण्डी पट्टी कहा जाता है। इसका सबसे अधिक प्रयोग पेडू की पट्टी के रूप में होता है। पेट की विभिन्न बीमारियों में यह अत्यन्त लाभदायक है। आयुर्वेद में कहा क्या है कि–

**कर्मौ दाहः पिन्तार्ति शोथहनः शीतलः सरः।**

अर्थात् पानी से सनी मिट्टी ठंडक देने वली एवं फलन पित्त की पीड़ा और सूजन दूर करती है। यह पट्टी शांतिकर प्रभाव डालती है आंतों की लहरदार गति को बढ़ाती है और जीवाणुओं की वृद्धि को रोकती है। गाँधी जी ने इस पट्टी की बहुत प्रशंसा की है।

**उपकरण–**एक लकड़ी की ट्रे, साफ मिट्टी, साफ कपड़ा, एक कमल का टुकड़ा, आवश्यकतानुसार पानी।

**विधि–** सर्वप्रथम किसी भी साफ स्थान से 2–3 फुट गहरी मिट्टी को खोदकर मिट्टी की पट्टी के लिए प्रयोग करते है। मिट्टी को दिन भर धूप में सुखाया जाता है फिर रात में अच्छी तरह पानी मिलाकर छोड़ देते हैं, फिर मिट्टी को अच्छी तरह गूंथकर मिट्टी को ट्रे में मिट्टी को बिछाकर एक सा कर देते है। रोगी को पीठ के बल लिटाकर मिट्टी को नाभि प्रदेश से नीचे की ओर तथा कुछ 2–4 इंच ऊपर की तरफ मिट्टी का प्रयोग करते है। उसके बाद मिट्टी के ऊपर एक साफ कपड़ा ढ़क देते है। यदि रोगी को ठंड लग रही है तो उसके चारों और कम्बल लपेट देते है। अवधि लगभग 20–30 मिनट तक होती है। समय पूरा होने पर मिट्टी को उदर क्षेत्र से हटा देते है ।

**क्रिया – प्रतिक्रिया**

मिट्टी शीतल होती है अतः यह पेट को ठंडक प्रदान करती है। इससे शरीर की गर्मी शान्त होती है। किसी भी स्थान पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग करते है तो वहां की Blood Capallories में संकुचन होता है जिससे ऊपरी त्वचा का रक्त जो गर्मी उत्पन्न करता है वह अन्दर चला जाता है। इससे रक्त परिसंचरण सीमा और गर्मी शान्त होती है । यहाँ पर जो विजातीय द्रव्य है उनको मिट्टी अपने अंदर अवशोषित कर लेती है। शरीर के अंदर रक्त परिसंचरण तेज होता है जिससे आंतरिक अंग–अवयव भी विजातीय द्रव्यों से मुक्त होते है और दूषित पदार्थ रक्त के साथ मिलकर उत्सर्जन अंगों के माध्यम से बाहर निकल जाते है।

**लाभ–**यह पट्टी पुराने जटिल कब्ज की अचूक चिकित्सा है। यह अजीर्ण, तेज ज्वर, टाइफाइड, पेचिस अति अम्लता, पेट में अल्सर, महिलाओं के मासिक दोष, श्वेत प्रदर, आँव,

अपच, नाक से खून आना, लिवर में सूजन, शरीर में जलन, जुकाम, त्वचा पर कील, मुँहासे, हैजा, नये एवं पुराने में उपयोगी, मोटापा एवं पेट कम होने के अलावा जीवनी शक्ति और सुंदरता की वृद्धि एवं रोगों से बचाव तथा पुरानी बीमारियों में उपयोगी है ।

**सावधानियाँ–**यदि बुखार में कंपकपी लग रही हो, अस्थमा के आने की सम्भावना हो, साइटिका के दर्द में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। मिट्टी में काँच या कोई रासायनिक पदार्थ नहीं होनी चाहिये, इसे खाली पेट लेना चाहिये अर्थात भोजन से 1–2 घंटा पहले या 3–4 घंटा बाद में। ठंड में यदि रोगी कमजोर है तो उसके चारों और केबल लपेट देना चाहिये। पेट के पट्टी के अतिरिक्त आंखों, माथे सिर पर लेप जिनको पाइल्स की शिकायत हो एनस पर मिट्टी की पट्टी लगायी जा सकती है।

**7.सिर की पट्टी–** यह सिर दर्द, हाई बी.पी., अनिद्रा, मस्तिष्क की नाड़ियों में शिथिलता, बालों में रूसी, बलों का झड़ना एवं गंजापन आदि में लाभदायक है ।

**8.आँखो की पट्टी–**यह आंखों में जलन, थकान, सिर दर्द, आंख आना, रक्त स्त्राव में उपयोगी है। आंखों पर कपड़े की गीली पट्टी 10 से 15 मिनट के लिए रखते है।

**9.घाव एवं विषाक्त प्रदेश की पट्टी–** यह बवासीर, गुदाद्वार में सूजन तथा कहीं फोड़े फुंसी होने पर लाभकारी है इसे सांप, बिच्छू, ततैचा के काटने पर उस प्रदेश में प्रयोग करते है ।

**10.संपूर्ण शरीर की मिट्टी लेप–** सम्पूर्ण शरीर पर मिट्टी लगाने के पश्चात् सुखी मिट्टी पूरे शरीर को लगातार ठंडा और शीतल बनाती है और त्वचा को संकुचित करती है। जिससे रक्त में जो विकार उपस्थित होते है वे शरीर के आन्तरिक अंग अवयवों तक पहुँच जाते है और फिर वह विजातीय द्रव उत्सर्जन अंगों के माध्यम से शरीर से बाहर निकल जाता है। इसके आंतरिक त्वचा की ऊपरी सतह पर जो विजातीय द्रव होते हैं उन्हें मिट्टी अवशोषित कर लेती है ।

मिट्टी में विष को खींचने को अदभुत शक्ति है। गीली मिट्टी को शरीर के किसी रोग युक्त अंग पर बाँध दिया जाय और फिर थोड़े समय बाद उसे खोला जाय तो उस मिट्टी में मनुष्य शरीर का विष बहुत अधिक मात्रा में मिलेगा। इसके अतिरिक्त पोषक तत्व देने की भी पृथ्वी में आश्चर्य जनक क्षमता है। प्रायः सभी पदार्थ में से एक प्रकार की गन्ध युक्त वाष्प निकलती रहती है, फल और पुष्पों की अपनी महक अलग ही होती है, जीव जन्तुओं के शरीरों से भी गन्ध युक्त वायु निकलती है इसी प्रकार पृथ्वी में से भी सदैव एक प्रकार की वाष्प निकलती है। यह वाष्प बड़े अद्भुत गुणो से सम्पन्न होती है। पृथ्वी में बड़े अमूल रासायनिक तत्व उपस्थित होते है। वनस्पतियां औषधियाँ तथा अन्य अनेक खाद्य वस्तुऐं पृथ्वी से ही निकलती है पृथ्वी के रासायनिक द्रव्य ही रूपान्तर करते हुए उपयोगी पेड़ पौधों का रूप धारण करते है। यह महत्वपूर्ण तत्व पृथ्वी से निकलती रहने वली वर्षा के साथ बाहर आते रहते है। पृथ्वी के समीप शरीर रखने से वह शरीर को प्राप्त होती रहती है जिसका स्वास्थ्य पर बड़ा अच्छा असर पड़ता है।

**अन्य प्रयोग–** फुन्सी, जख्म, गाँठ, गिल्टी, नासूर, सूजन, खुजली, दाद, दर्द आदि के लिए मिट्टी लेप करनी चाहिए जहाँ तकलीफ हो। दुखती हुई आँखों पर छोटी आँख के बराबर की टिकियॉ बनाकर पलकों पर बांध देना चाहिये। मसूड़े के दर्द में गले के पास मिट्टी बाँधनी चाहिए। बर्र, ततैया, मधुमक्खी, कान खजूरां, चूहा, मेंढक, छिपकली, मकड़ी, कुत्ता, आदि के काट लेने पर उस स्थान पर मिट्टी की टिकिया बांध देनी चाहिए, दर्द शीघ्र ही बन्द हो जाता है और जहर नहीं चड़ेता है। इस प्रकार हम मिट्टी चिकित्सा के मूल

सिद्धान्तो तथा विधियों को समझ कर विभिन्न रोगों को बिना कोई नकारात्मक प्रभाव के आरोग्य लाभ प्राप्त कर सकते है।

## 15.6 सारांश

प्राणी जगत में मनुष्य का मस्तिष्क सर्वाधिक विकसित होता है। मस्तिष्क का निर्माण तन्त्रिका कोशिकाओं तथा न्यूरोग्लियल कोशिकाओं के द्वारा होता है। तंत्रिका तंत्र शरीर के समस्त अंगों की क्रियाओं को नियमित नियंत्रित और समन्वित करता है। आदेशों एवं निर्देशों को नियंत्रित करता है।

इसके पश्चात् आपने मानसिक रोगों के बारे में भी जानकरी प्राप्त की। मानसिक रोग का कारण चिंता, तनाव एवं मानसिक दबाव, परिस्थितिजन्य अन्य कारण भी प्रकट होते है। इन रोगों के चलते रोगी की मानसिक स्थिति खराब होती जाती है। उनकी सोचने समझने व प्रकट करने की क्षमता धीरे–धीरे क्षीण होते जाती है।

इस प्रकार आपने जाना कि तंत्रिका तंत्र एवं मानसिक स्वास्थ्य का हमारे जीवन में कितना अधिक महत्वपूर्ण स्थान है। तंत्रिका तंत्र एवं मानसिक रोग के प्रमुख रोगों की सामान्य जानकारी से आप अवगत हुए एवं आपने इन रोगों की पृथ्वी चिकित्सा के संबंध में भी जानकारी प्राप्त की। पृथ्वी चिकित्सा के द्वारा इन रोगों का सफलतापूर्वक निदान किया जा सकता है।

**अभ्यास प्रश्न**

1. तंत्रिका तंत्र का मुख्य कार्य क्या है?

अ. उत्सर्जनब. पाचन स. श्वसन द. नियंत्रण एवं सामन्जस्य

2. अलजामर्स रोग होता है –

अ. बचपन में याददाश्त की कमी ब. महिलाओं में याददाश्त की कमी

स. बुढ़ापे याददाश्त की कमी द. इनमें से कोई नहीं

3. जब व्यक्ति अंदर से उदास होता है तो उस स्थिति को क्या कहते है?

अ. इंडोजीनियस डिप्रेशन ब. न्यूरेटिक डिप्रेशन

स. क्रोनिक डिप्रेशन द. सीवियर डिप्रेशन

4. अनिंद्रा के कारण है–

अ. रक्त का विषाक्त होना, ब. मस्तिष्क में रक्ताधिक्य,

द. शारीरिक श्रम की कमी द. उपरोक्त सभी

5. पृथ्वी चिकित्सा करते समय कौन सी सावधानी रखनी चाहिए?

अ. मिट्टी साफ हो ब. अच्छी तरह पीसी हो

स. मुलायम हो द. उपरोक्त सभी।

## 15.7 पारिभाषिक शब्दावली

| | | |
|---|---|---|
| सीमांत | – | अंतिम छोर तक |
| औटाकर | – | अधिक समय तक उबालना |
| समन्वय | – | मिलाना |
| वंशानुगत | – | पीढ़ी दर पीढ़ी |
| संयोजी | – | जोड़ना |

## 15.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | द | 2. | स | 3. | अ | 4. | द | 5. |

## 15.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

चौहान जहान सिंह, (2011) क्लीनिकल डायग्नोसिस एण्ड ट्रीटमेण्ट्स, सुमित प्रकाशन, आगरा, उत्तरप्रदेश

आचार्य पं. श्रीराम शर्मा, पुनरावृत्ति (2011) पंच तत्वों द्वारा संपूर्ण रोगों का निवारण, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, उत्तरप्रदेश

दूरस्थ शिक्षा केन्द्र, (2008), वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियॉ, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड

मुखर्जी कुलरंजन, (2007), दैनन्दिन रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा, सादार्न ऑफसेट प्रिन्टर्स, कलकत्ता, पं. बंगाल

जिन्दल राकेश, (2005) प्राकृतिक आर्युविज्ञान, आरोग्य सेवा प्रकाश, मोदीनगर, उत्तरप्रदेश

## 15.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सक्सैना ओम प्रकाश, (2009) सरल प्राकृतिक चिकित्सा, हिन्दी सेवासदन, मथुरा
2. शर्मा राम गोपाल, (2007) प्राकृतिक चिकित्सा, ग्रंथ अकादमी नई दिल्ली

## 15.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. तंत्रिका तंत्र का सामान्य परिचय का वर्णन करे।
2. मानसिक रोगों की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए ।
3. तंत्रिका तंत्र से संबंधित रोगों की पृथ्वी चिकित्सा पर प्रकाश डालिए।
4. तंत्रिका तंत्र एवं मानसिक रोगो के लक्षण एवं कारण बताइए।
5. पृथ्वी चिकित्सा द्वारा मानसिक रोगों का निदान किस प्रकार किया जाता है।